भूमिका

वालकों और किशोरों का मन मक्खन-सा मुलायम होता है। उस पर जो छाप पड़ जाती है, जो भाव अंकित हो जाते हैं, जो संस्कार- जम जाते हैं, वे कभी नहीं मिटते। इसी कारण वालकों के सामने अच्छे उदाहरण रक्खे जाते हैं, उनको बुरी और हानिकारक गन्दी वातें नहीं सुनाई जातीं, उन्हे अच्छी शिक्षा दी जाती है, कुसग से वचाया जाता है। वालकों के चरित्रगठन की यह पहली सीढ़ी है।

वालकों मे कथा-कहानी सुनने की रुचि स्वाभाविक होती है। घर की बूढी औरते अक्सर वच्चों को कल्पित कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरञ्जन किया करती हैं। हमारी सम्मति मे इन वेसिर पैर की कहानियों की अपेक्षा अगर उनको पौराणिक कथाएँ, ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र सुनाये या पढ़ाये जायँ तो उनका वड़ा उपकार हो सकता है। वालकों को "ऐसा करो, ऐसा न करो" इस प्रकार की शिक्षा देने की अपेक्षा अपने पूर्वजों के महान् उदात्त चरित्र उनके सामने रख देना वहुत अधिक फलदायक होगा।

सुनते हैं, छत्रपति शिवाजी अपनी माता के मुख से राम और कृष्ण की कथाएँ सुना करते थे। उसीका फल यह हुआ कि उन्होंने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा मे जान लडा दी—वह ऐसे निर्भीक, उदार और धर्मात्मा हुए। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस समय हमारे वालकों मे अनेक सद्गुणों का अभाव देख पड़ता है। उन सद्गुणों की शिक्षा न तो घर मे मिलती है और न स्कूल-कालेजों मे।

इसीलिए हमने यह कृष्ण चरित्र का सक्षिप्त सार—वाल भागवत—लिखी है। हिन्दुओं के दो ही आदर्श महापुरुष हुए हैं। एक श्रीरामचन्द्र और दूसरे श्रीकृष्णचन्द्र। इन दोनो अवतारों के चरित्र सम्पूर्ण शिक्षाओं की खान हैं। इनके चरित्र का आंशिक अनुकरण भी मनुष्य को अलौकिक शक्ति दे सकता है। भगवान् कृष्णचन्द्र तो पूर्ण अवतार थे। उनका चरित्र अलौकिक और अपूर्व है।

आजकल संस्कृत का पठन-पाठन कम होता जा रहा है। शिक्षा प्राय: अंगरेजी की मिलती है। विद्यार्थी शेक्सपियर, मिल्टन, शेली, सुइनवर्न, टाल्सटाय, चेखव, तुर्गनेव आदि विदेशी पण्डितों की रचनाओं को पढ़ते हैं, पर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भारवि आदि से अपरिचित ही रहते हैं। इसलिए अपने संस्कृत के अपूर्व ग्रन्थों का सरल शुद्ध हिन्दी-अनुवाद होने की परम आवश्यकता है। इस पुस्तक की रचना का यही दृष्टिकोण है।

यह पुस्तक वालकों के लिए लिखी जाने पर भी वडों-वूढ़ों के भी वड़े काम की है। इसमे भागवत का सारा कथाभाग आ गया है। भागवत के दार्शनिक अंश को केवल छोड़ दिया गया है। भाषा इसकी वहुत ही सरल रक्खी गई है, जो कि "हिन्दोस्तानी" का एक आदर्श नमूना कही जा सकती है। आशा है, यह पुस्तक लोकप्रिय होगी। अगर यह पुस्तक पसन्द की गई तो हम और पुराणों के भी ऐसे ही वाल-सस्करण निकालने की कोशिश करेंगे।

रानी कटरा-लखनऊ
१-१-१९४०

रूपनारायण पाण्डेय

वक्तव्य

हमारे पुराण अनुपम ज्ञान की खान हैं। उनमें भारतीय सभ्यता का जीता-जागता चित्र अंकित किया गया है। कुछ मनचले अँगरेज़ी पढ़े लोग विना पढ़े ही उनको निरी गप्प मान बैठते हैं। पार्जिटर साहब ने अनेक वर्षों तक पुराणों का अध्ययन करके उनके तत्त्व को समझा है और उनकी बड़ी प्रशंसा की है।

पहले ज़माने में पण्डित लोग पुराणों की कथा बाँचते थे—उनके रहस्यों को सर्वसाधारण को समझाते थे। पर अब संस्कृत का पठन-पाठन दिन-दिन कम होता जा रहा है। ब्राह्मण-जाति विद्वान् होने के बदले अधोगति को प्राप्त हो रही है। अगर ब्राह्मण विद्वान् भी होते हैं तो अँगरेज़ी के। फल यह हुआ कि आज कथाओं का चलन ही कम पड़ गया है। हाँ, हिन्दी का प्रचार अवश्य बढ़ रहा है। ऐसी दशा में पुराणों का अच्छा हिन्दी अनुवाद होने की बड़ी ज़रूरत है।

भागवत, रामायण और महाभारत हिन्दूधर्म के तीन स्तम्भ हैं। इनका अच्छी तरह अध्ययन हरएक हिन्दू-बालक को बचपन से ही करना चाहिए। तभी वह अपनी पुरानी संस्कृति को अपना सकेगा। बालकों के लिए बालभारत और बालरामायण तो लिखी जा चुकी हैं, लेकिन बालभागवत अभी तक हमारे देखने में नहीं आई। इसीलिए हमने इस पुस्तक को लिखाकर प्रकाशित किया है। हम संपूर्ण भागवत का सरल, सुन्दर सर्वांगपूर्ण हिन्दी अनुवाद भी करा चुके हैं और उसका सम्पादन पं० रूपनारायण पाण्डेय ने ही किया है। पाण्डेयजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और हिन्दी सुलेखक हैं।

हमें आशा है, इस बालभागवत का भी हिन्दी-संसार में अच्छा स्वागत होगा। हम चाहते हैं, हर एक हिन्दू गृहस्थ इसकी एक प्रति खरीदकर अपने बालकों के हाथ में दे।

इस बालभागवत में लेखक ने मुख्य रूप से केवल कृष्णचरित्र ही को लिया है। अन्य अंश इसलिए छोड़ दिये गये हैं कि वे छोटे बालकों की समझ में न आवेंगे। लेखक ने इसमें नृसिंहावतार, वाराह-अवतार, वामनअवतार, ध्रुवचरित्र गजेन्द्रमोच, मार्कण्डेयचरित्र, अम्बरीष की कथा आदि जो अलग की कथाएँ हैं, उन्हें भी सरल भाषा में पहले दे दिया है। अगर इस पुस्तक को पाठकों ने पसन्द किया तो हम शीघ्र ही और पुराणों का सारांश भी सरल भाषा में बालकों के लिए उपस्थित करेंगे।

बालभागवत के इस प्रथम संस्करण को यथाशक्ति आकर्षक और सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है। यदि हमारे इस प्रयत्न में किसी महानुभाव को कुछ त्रुटि देख पड़े, तो हमारा विनीत अनुरोध है कि वे हमें अवश्य सूचित करने का कष्ट उठावें। उनके इस अमूल्य सहयोग से अगला संस्करण इससे भी अधिक उत्कृष्ट हो सकेगा।

विनीत

विषय-सूची

चित्र-सूची

(तिरंगे चित्र)

यदायदाहि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
(गीता)

(दोरंगे चित्र)

(एकरंगे चित्र)

एकरंगे (लाइन) चित्र

सुबोध

बाल भागवत

श्रीगणेशाय नमः

मनोहर के बाप बनारसी रोज सवेरे नहा-धोकर ठाकुरजी की पूजा करने के बाद एक बहुत ड़ी पोथी खोलकर उसपर फूल, चंदन चढ़ाने और फिर उसे बाँचते थे। मनोहर रोज यह ब देखा करता था। एक दिन उसने अपने बाप से पूछा—बाबूजी, यह कौन पोथी है?

बनारसी ने कहा—बेटा, यह भागवत है।

मनोहर—इसमें क्या लिखा है?

बनारसी—इसमें बहुत-सी ज्ञान की बातें लिखी हैं, जिन्हें तुम अभी नहीं समझ सकते। यह नेया कैसे पैदा हुई, कब पैदा हुई, इसे किसने पैदा किया, दुनिया के कितने हिस्से हैं, आसमान कौन-कौन तारे हैं, वे हमसे कितनी दूर हैं, स्वर्ग कहाँ है, नरक कहाँ है, दुनिया में कौन-कौन ाड़, समुद्र और नदियाँ हैं, इसी तरह की बहुत-सी बातें लिखी हैं। इनके अलावा भगवान् के

वराह, नरसिंह वगैरह अवतारों का भी हाल लिखा है। खासकर कृष्णजी का हाल बडे विस्तार के साथ इसमें कहा गया है।

मनो०—बाबूजी, अवतार के माने क्या हैं?

बनारसी—भगवान् अवतार लेते हैं, यानी जब-जब दुनिया पर मुसीबत आती है, दुष्ट लोग भगवान् के भक्तों को सताते हैं, धर्म पर चोट करते हैं, तब तब भगवान् इस दुनिया में किसी न किसी रूप से प्रकट होकर भक्तों का भला करते हैं। उसी भगवान् के रूप को अवतार कहते हैं। जैसे हिरण्यकशिपु राक्षस ने अपने बेटे प्रह्लाद को इसलिए मार डालना चाहा कि वह राम का नाम लेता था, भगवान् को भजता था। तब भगवान् ने अपने भक्त को बचाने के लिए नरसिंह अवतार लिया और राक्षस को मार डाला।

मनोहर—कृष्णजी को तो सभी हिंदू पूजते हैं; क्या आप मुझे कृष्णजी की कथा सुनावेंगे? और सब ज्ञान की बातें तो बडे होने पर पढ़ लूँगा, क्योंकि अभी उन्हें मैं समझ नहीं सकता, मगर कृष्णजी का चरित्र तो मैं समझ लूँगा।

बनारसी—मैं तुम पर बहुत खुश हूँ। कृष्णजी का सब हाल मैं तुमको रोज़ थोडा-थोड़ा सुनाऊँगा।

मनोहर—तो बाबूजी, आज आप यह बतलाइए कि इस भागवत को किसने बनाया, कब बनाया? किसने, किसे भागवत को पहलेपहल सुनाया।

बनारसी—भागवत को व्यासजी ने बनाया है। व्यासजी एक बहुत बडे महात्मा हैं। उनको सब लोग भगवान् का एक अवतार मानते हैं। व्यासजी ने भागवत ही नहीं, १८ पुराण बनाये हैं। व्यासजी पराशर ऋषि के बेटे हैं। उन्होंने भागवत बनाकर अपने बेटे शुकदेवजी को पढ़ाई थी और शुकदेवजी ने भागवत की कथा राजा परीक्षित् को सुनाई।

मनोहर—राजा परीक्षित् कौन थे?

बनारसी—शाबास! तुम ऐसे-ऐसे सवाल करते हो कि तबियत खुश हो जाती है। इन सवालों से यह पता चलता है कि तुम बहुत होशियार और तेज हो। अच्छा सुनो। मैं तुमको व्यासजी, शुकदेवजी और राजा परीक्षित्, इन तीनों का पूरा हाल बताता हूँ। व्यास जी की मा सत्यवती थीं। वह एक मल्लाह की लड़की थी। जब वह कुआँरी थी, तब उनकी देह से मछली की गंध आती थी। सत्यवती के बाप की झोपड़ी नदी के किनारे पर थी। जो लोग नदी पार होने के लिए आते थे, उन्हें वह नाव पर बिठाकर उस पार पहुँचा देती थीं। एक दिन बडे

योगी महामुनि पराशरजी नदी पार होने के लिए आये। सत्यवती ने उन्हें भी पार पहुँचा दिया। मुनि ने कहा—उतराई देने के लिए मेरे पास पैसा-कौड़ी कुछ नहीं है। उसके बदले में मैं तुमको यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारी देह से जो मछली की गंध दूर से आती है, उसकी जगह अब कमल के फूलों की सुगंध आवेगी। इसके अलावा मैं तुमको यह भी वरदान देता हूँ कि तुम्हारे इसी कुआँरेपन में एक पुत्र होगा, जो बड़ा प्रतापी, पंडित और ज्ञानी होगा। उस लडके के होने पर भी तुम कुआँरी ही बनी रहोगी और तुम्हारा व्याह एक बहुत बड़े राजा के साथ होगा। बेटा, सत्यवती के पराशर ऋषि के वरदान से कुआँरेपन में जो लड़का हुआ, वही भागवत के बनानेवाले व्यासजी हैं। इन्हीं व्यासजी के लड़के शुकदेव हुए। शुकदेवजी जन्म से ही ज्ञानी हुए और उन्होंने ही राजा परीक्षित् को भागवत की कथा सुनाई।

मनो०—पिताजी, अब राजा परीक्षित का हाल सुनाइए।

बनारसी—हाँ बेटा, सुनो। सत्यवती का व्याह हस्तिनापुर के राजा शन्तनु के साथ हुआ। शन्तनु राजा बड़े प्रतापी थे। उनकी पहली स्त्री गंगाजी थीं। गंगाजी ने इस शर्त पर उनसे व्याह किया था कि मैं जो चाहे करूँ, तुम उसमें दखल न देना। जिस दिन मुझे तुम मनमाना काम करने में टोक दोगे, उसी दिन मै तुमको छोड़कर चली जाऊँगी। गंगाजी से राजा शन्तनु के सात लड़के हुए। गंगा ने सबको नदी में डुबा दिया। जब आठवाँ लड़का हुआ, तब राजा से नहीं रहा गया और उन्होंने गंगा से कहा—तुमने सात लड़के मार डाले, मैं कुछ नहीं बोला। अब इस लड़के को तुम रहने दो। गंगा ने कहा—महाराज, मैं इस लडके को नहीं डुबाऊँगी। मगर आपने जो शर्त की थी, वह टूट गई। अब मैं जाती हूँ। वही लड़का परम प्रतापी भीष्म-पितामह हुए। यह बड़े भारी वीर थे। कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई के समय यह बहुत बुढे हो चुके थे, पर अर्जुन के सिवा कोई जवान भी इनका मुकाबला नहीं कर सकता था। अपनी जवानी में तो इन्होंने अपने गुरु और संसार भर में प्रसिद्ध योद्धा परशुरामजी को भी छका दिया था और उनसे हारी लिखा ली थी। इनका हाल महाभारत में लिखा है। महाभारत की कथा भी मैं तुमको कभी सुनाऊँगा। गंगाजी के चले जाने के बाद राजा शन्तनु एक दिन शिकार करने गये। वहाँ सत्यवती की देह से आ रही कमल के फूलों की सुगंध से खिचकर वह सत्यवती की झोपड़ी में पहुँचे। सत्यवती को देखकर राजा मोहित हो गये। उन्होंने सत्यवती के बाप से कहा, इस लडकी की शादी मुझसे कर दो। सत्यवती का बाप बडा होशियार था। उसने राजा से कहा—अगर आप यह वादा करें कि मेरी बेटी का लड़का ही राजगद्दी पर बैठेगा तो मैं खुशी

से आपको अपनी लडकी दे दूँगा। राजा असमंजस में पड गये। गद्दी का हक़दार बड़ा लड़का ही होता है। राजा के बडे लडके भीष्म पितामह ही गद्दी के अधिकारी थे। फिर वह बडे लायक थे। उनका हक छीनना राजा ने मुनासिब नही समझा। वह चुपचाप मन मारकर लौट आये। उसी दिन से राजा उदास रहने लगे। किसी काम में उनका जी नहीं लगता था। राज-काज में गड़बड़ होने लगी। वह दिन-दिन दुबले होने लगे। भीष्मजी ने बाप का हाल बुरा देखा तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पिता से उनकी उदासी और अनमने रहने का कारण बहुत पूछा, पर राजा बराबर टालते ही रहे। अब भीष्मजी छिपाकर पता लगाने लगे। किसी तरह उनको सब हाल मालूम हो गया। उन्होंने अपने मनमें कहा, पिताजी ने तो अपना फर्ज अदा कर दिया; लेकिन मेरा भी तो कुछ फर्ज है। पिता से बढ़कर और कौन है? पिता की सेवा करना, पिता को प्रसन्न रखना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म है। राज्य का सुख तो कोई चीज नहीं, अगर स्वर्ग का राज्य भी मिलता हो तो पिता को सुखी बनाने के लिए उसे मैं लात मार दूँ। यों सोचकर भीष्मजी सत्यवती के बाप के पास गये और उससे कहा—"मैं महाराज शन्तनु का बड़ा बेटा और गद्दी का अधिकारी हूँ। मैं प्रण करता हूँ कि मैंने गद्दी का हक़ छोड़ दिया। तुम्हारा नाती ही राजा होगा। अब अपनी लडकी को मेरे साथ कर दो; उसे मैं अपने पिताजी की सेवा में ले जाऊँगा। इसपर उस धीवर ने कहा—कुँअरजी, आप तो गद्दी का हक़ छोडे देते हैं; लेकिन अपने बेटे-पोतों का तो जिम्मा आप नहीं ले सकते। आपके बाद अगर वे गद्दी के लिए झगडा करें तो क्या होगा? यह सुनकर भीष्मजी ने कड़ककर कहा—अगर तुमको यह डर है तो लो, मैं ब्याह ही नही करूँगा। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!

भीष्म पितामह की यह कठिन प्रतिज्ञा सुनकर धीवर भी दंग रह गया। आकाश से देवता लोगों ने भीष्म पर फूलों की वर्षा की। यह कठिन प्रतिज्ञा करने के कारण उसी दिन से उनका नाम भीष्म पड गया। पहले उनका नाम सत्यव्रत था। बेटा, ऐसे ही लड़के संसार में अपना नाम अमर कर जाते हैं। आज भी हरएक हिंदू अपने पुरखों का तर्पण करते समय भीष्मजी को भी श्रद्धा के साथ पानी देता है। अच्छा तो भीष्मजी सत्यवती को अपने साथ ले आये। सत्यवती को पाकर राजा शन्तनु की सब सुस्ती जाती रही। वह अपने पुत्र पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भीष्म पितामह को यह वरदान दिया कि तुम जब चाहोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, बीच में नहीं। खैर, शन्तनु के सत्यवती से दो लड़के हुए। उनके नाम थे चित्रांगद और

विचित्रवीर्य। भीष्मजी अपने भाइयों के लिए काशी के राजा की तीन लडकियों को हर लाये। उनका स्वयंवर हो रहा था, वहीं जाकर भीष्म ने उनका हरण किया।

मनो०—पिताजी, स्वयंवर क्या?

बनारसी—पहले जमाने में स्वयंवर हुआ करते थे। लड़की का बाप बहुत से लोगों को न्योता देकर अपने यहाँ बुलाता था। लड़की जयमाला लेकर स्वयंवर की सभा में आती थी। एक आदमी एक-एक का परिचय लड़की को देता जाता था। लड़की जिसे पसन्द करती थी, उसी के गले में माला डाल देती थी। बस, ब्याह हो जाता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि जो जबरदस्त हुआ, वह सबको हराकर लड़की को हर ले जाता था। भीष्म पितामह ने भी ऐसा ही किया। भीष्मजी ने अंबिका का ब्याह चित्रांगद से और अंबालिका का ब्याह विचित्रवीर्य से कर दिया। रह गई बड़ी लड़की अंबा। वह राजा शाल्व को चाहती थी। उसने कहा—आप मुझे हर लाये हैं, इसलिए आप मुझसे ब्याह कीजिए। मैं राजा शाल्व को अपना पति बनाना चाहती थी। पर अब वह भी मुझे अंगीकार नहीं करेंगे। भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा का हाल कहकर इनकार कर दिया। सब तरह से निराश होकर अंबा अन्त को चिता लगाकर जल मरी। वही दूसरे जन्म में राजा द्रुपद का पुत्र शिखंडी हुआ और भीष्म पितामह महाभारत की लड़ाई में उसीके हाथ से मारे गये। इस तरह अंबा ने दूसरे जन्म में अपना बदला चुकाया। इधर चित्रांगद से शिकार में एक गंधर्व से तकरार हो गई। गंधर्व ने उसे मार डाला। रह गया विचित्रवीर्य; वह भी क्षय रोग से मर गया। अब कोई ऐसा न रह गया, जो राज्य करे। भीष्म ने तो राजगद्दी पर न बैठने की प्रतिज्ञा ही कर ली थी। सत्यवती को बड़ी चिन्ता हुई। तब उन्हें याद आया कि उनके पुत्र व्यासजी बड़े महात्मा हैं। उन्होंने माता से कह रक्खा था कि जब कोई संकट पड़े तो मुझे याद करना, मैं आ जाऊँगा। बस, सत्यवती ने उन्हीं को याद किया। व्यासजी ने आकर तुरन्त दर्शन दिये और कहा—माताजी, क्या आज्ञा है?

सत्यवती ने कहा—पुत्र, तुम अपनी तपस्या के बल से सब कुछ कर सकते हो। इस समय हस्तिनापुर के राज्य पर बड़ा संकट आ पड़ा है। मेरे दोनों लड़के नहीं रहे। उनके कोई सन्तान भी नहीं है। भीष्म राज्य न करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। अब राजा कौन हो?

व्यास ने कहा—तो फिर मुझसे क्या करने के लिए आप कहती हैं? मैं अपनी शक्ति भर अवश्य आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

सत्यवती ने कहा—बेटा, ऐसी दशा में तुम्हारा ही एक सहारा है। तुम कुछ ऐसा : कि मेरी पुत्रवधुओं के पुत्र उत्पन्न हो।

व्यासजी ने कुछ देर सोचकर कहा—अच्छी बात है। मैं अपनी तपस्या के बल से ऐ ही करूँगा। चित्रांगद और विचित्रवीर्य की स्त्री बिना कोई वस्त्र धारण किये मेरे सामने से निकल जायँ तो मेरे तपोबल से उनके सन्तान उत्पन्न होगी।

सत्यवती के बहुत कहने-सुनने पर दोनों रानियाँ राज़ी हो गईं। अंबिका ने लज्जा के मार व्यासजी के सामने जाते समय आँखें मूँद ली थीं, इसलिए उसके पुत्र धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे हुए। अंबालिका ने व्यासजी के सामने जाते समय सारी देह में पीली मिट्टी पोत ली थी, इस-लिए उसके पुत्र पाण्डु के भी जन्म से ही पाण्डु रोग हुआ। सत्यवती ने दोनों पुत्र रोगी होंगे, यह जब व्यासजी से सुना तो अंबिका से फिर उसी तरह कपड़े न पहनकर व्यासजी के सामने जाने को कहा। सास से तो उसने हाँ कर ली; पर असल में अब की उसने अपनी दासी को भेज दिया। उसी दासी के पेट से महामति विदुरजी पैदा हुए।

धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिए राजगद्दी पाण्डु को मिली। धृतराष्ट्र की स्त्री गांधारी थीं। न्होंने जब सुना कि धृतराष्ट्र अंधे हैं तो उन्होंने आँखों पर पट्टी बाँध ली और फिर कभी नहीं खोली। धृतराष्ट्र के सौ लड़के हुए। इनमें दुर्योधन और दुःशासन बड़े थे। ये कौरव कहलाये। पाण्डु के दो रानी थीं। कुन्ती और माद्री। कुन्ती से उनके तीन लड़के हुए। युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। माद्री से भी दो लड़के हुए। नकुल और सहदेव। ये पाँचों पाण्डव कहलाये। आगे चलकर कौरवों और पाण्डवों में राज्य के लिए बड़ी भारी लड़ाई हुई, जिसे महाभारत कहते हैं। महाभारत नाम की पोथी में इस लड़ाई का विस्तार के साथ वर्णन है। इस लड़ाई में पाण्डवों की तरफ कृष्ण भगवान् थे। उन्हीं की सलाह और सहायता से ।[illegible] जीत गये और सब कौरव मारे गये। द्रोणाचार्य के लड़के अश्वत्थामा ने लड़ाई के बाद सोते समय पाण्डवों के पाँचों लड़कों के सिर काट लिये। उधर अर्जुन का बेटा अभिमन्यु भी लड़ाई में मारा जा चुका था। इसलिए पाण्डवों के वंश में भी कोई नहीं रहा। कुशल [illegible] हुई कि अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के पेट में बालक था। उसी पर सबकी आशा लगी हुई थी अश्वत्थामा ने, जो अर्जुन के गुरु के लड़के थे, उस बालक को मा के पेट में ही मार[illegible] के लिए ब्रह्मास्त्र का बाण चलाया। ब्रह्मास्त्र कभी खाली नहीं जाता। मगर

ईश्वर कृष्णचंद्र ने अपनी महिमा से उस बालक को बचा लिया। वही बालक राजा परीक्षित् हुए।

मनो०—राजा परीक्षित् को शुकदेवजी ने भागवत कब सुनाई ?

बनारसी—राजा परीक्षित् बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध राजा थे। उन्होंने कलियुग को अपने राज्य से निकाल दिया था। पर उसके शरण माँगने पर उन्होंने उसे यह वचन दे दिया कि

जहाँ बुरे काम जुआँ वगैरह होते हों, वहाँ तू रहना। राजा ने कलियुग को सोने में भी रहने की आज्ञा दे दी। फल यह हुआ कि राजा सोने का मुकुट पहने थे, इसलिए वह उनके ही सिर पर सवार हो गया। उसी दिन राजा शिकार खेलने को जंगल में गये। वहाँ उन्हें बड़ी प्यास लगी। प्यास से व्याकुल होकर वह एक ऋषि की कुटिया में गये। ऋषि भगवान् का ध्यान

कर रहे थे। उन्हें बाहर का कुछ होश ही न था। राजा ने मुनि से पानी माँगा। मुनि न कुछ बोले और न पानी ही दिया। यह देखकर कलियुग के प्रभाव से राजा को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने मुनि को बहुत सी बुरी-भली बातें कहीं और वहाँ एक मरा हुआ साँप पड़ा था, उसे धनुष से उठाकर उनके गले में डाल दिया। इसके बाद अपने घर को चले आये। उधर मुनि का लड़का जिसकी अवस्था १०-१२ बरस की थी, लड़कों के साथ खेलकर अपने आश्रम में आया तो बाप के गले में साँप, उन्हें अचेत देखकर उसने समझा, पिता मर गये। वह ऋषि का लड़का था, इसलिए ध्यान

करते ही उसे सब हाल मालूम हो गया। तब उसने क्रोध करके राजा को यह शाप दिया कि आज के सातवें दिन उनको तक्षक नाम का नाग डस लेगा। लड़के के रोने की आवाज से मुनि का ध्यान उचट गया। उन्होंने आँखें खोलकर लड़के को रोता देखा तो रोने का कारण पूछा। लड़के से सब हाल सुनकर उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। भगवान् के भक्त राजा को तनिक सी भूल के लिए ऐसा कठिन शाप देने के लिए मुनि ने लड़के को डाँटा और उसी समय राजा के पास अपना एक चेला भेजकर यह कहला दिया कि तुमको नासमझ लड़के ने शाप दे दिया है, तुम समय रहते अपने राज्य का प्रबंध कर लेना। ब्राह्मण का शाप टल नहीं सकता, इसलिए मैं लाचार हूँ।

मुनि के चेले ने जब राजा के पास जाकर सब हाल कहा, उस समय राजा के सिर से कलियुग उतर गया था। मुकुट सिर से उतारते ही राजा के होशहवास दुरुस्त हो गये थे और वह अपनी करनी पर पछता रहे थे। जब उन्हें मालूम हो गया कि जिंदगी के सात ही दिन बाकी रह गये हैं तो उन्होंने राजपाट सब छोड़ दिया। अपने बड़े लड़के जनमेजय को राजगद्दी देकर वह गंगाजी के किनारे चले गये। वहाँ गंगातट पर अन्नजल छोड़कर ऋषि-मुनियों के बीच वह भगवान् की चर्चा और भजन करने लगे।

इसी बीच में उन पर कृपा करने के लिए श्रीशुकदेवजी महाराज घूमते-फिरते उसी जगह आ गये। शुकदेवजी ज्ञानी परमहंस थे। वह नंगेधड़ंगे घूमते ही रहते थे। कहीं टिकते नहीं थे। देखने में गूँगे-बहरे, पागल से जान पड़ते थे। जब वह वहाँ आये तो उन्हें देखते ही सब सभा के लोग और राजा उठ खड़े हुए। सिड़ी समझकर जो मूर्ख लड़के उनके पीछे लगे थे—उन पर कंकड़-पत्थर और धूल फेंक रहे थे, वे चुपचाप लौट गये। राजा ने बड़े आदर से उनको अपने पास सिंहासन पर बिठाया और उनकी पूजा की।

श्रीशुकदेवजी की पूजा करने के बाद राजा परीक्षित् ने उनसे कहा—भगवन्, अब मेरे जीवन के कुछ ही दिन बाकी रह गये हैं। मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि मुझे भगवान् की कथाएँ सुनाइए। राजा के यों कहने पर शुकदेवजी ने उनको भागवत की कथा सुनाना शुरू किया। भागवत पुराण में कृष्ण की कथा के अलावा और बहुत-सी सुनने योग्य उत्तम कथाएँ हैं। उनमें से पहले मैं तुमको नारदजी की कथा सुनाता हूँ। नारदजी पहले जन्म में एक दासी के लड़के थे। वह दासी लोगों की सेवा-टहल करके अपना पेट पालती थी। नारदजी जब पाँच बरस के थे, उस समय चौमासे में कुछ ज्ञानी महात्मा उस जगह आकर ठहरे, जहाँ नारद की माता—दासी रहती थी। वह दासी उन महात्मा लोगों की सेवा टहल करने लगी। नारद भी उन लोगों के पास रहते थे और उनका कामकाज कर दिया करते थे। वे महात्मा आपस में जो कुछ ज्ञान की बातें

और भगवान् का भजन करते थे, उसे नारद मन लगाकर सुनते थे। वह और लड़कों की खिलाड़ी या चंचल न थे। इसलिए महात्मा लोग उन पर विशेष कृपा करते थे और खाने से हुआ अन्न उन्हें खाने के लिए दे दिया करते थे। वह साधुओं की जूठन खाने और उनकी बातें सुनने से नारद को भगवान् की शक्ति और ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें इसी अवस्था में संसार से वैराग्य हो गया और भगवान् में मन लग गया। जब महात्मा चले गये तो एक दिन नारद की मा को काले नाग ने डस लिया, वह मर गई। नारद का बंधन छूट गया, वह वन को चल दिये। वहाँ एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर आँखें मूँदकर भगवान् का ध्यान करने लगे। उनको अपने हृदय में भगवान् के स्वरूप की एक झलक दिखाई दे गई। इसके बाद नारद फिर भगवान् के दर्शन पाने की कोशिश करने लगे। तब आकाश-वाणी हुई कि नारद, इस जन्म में अब तुम मुझे नहीं देख पाओगे। यह एकबार जो तुमको अपनी झलक दिखा दी, सो इसलिए कि तुम्हारे मन में मेरे पाने की चाह पक्की हो। दूसरे में तुम मुझे पाओगे। और मेरे श्रेष्ठ भक्त बन जाओगे। समय आने पर नारद का पहला शरीर गया; तब वह ब्रह्मा के पुत्र हुए। नारदजी देवऋषि कहलाते हैं। वह अमर हैं। एक नहीं ठहरते। भगवान् के गुण गाते, वीणा बजाते तीनों लोकों में इच्छा के अनुसार घूमा करते अब अश्वत्थामा का हाल सुनो।

अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के बेटे हैं और अमर हैं। यह महाभारत की लड़ाई में दुर्योधन पक्ष लेकर पांडवों से लड़े थे। जब कौरवों की तरफ के सब वीर मार डाले गये और

ने दुर्योधन की जाँघ गदा की चोट से तोड़ दी, तब इनको बड़ा दुःख हुआ। अश्वत्थामा ने अपने स्वामी का बदला लेने का विचार किया। सामने लड़कर पाण्डवों से पार पाना कठिन , इसलिए रात को छिपकर पाण्डवों की छावनी में घुस गये। उस रात को पाँचो पाण्डव नी में नहीं थे: कृष्ण, जो सब होनेवाली बातों को जानते थे, उनको टालकर कहीं ले थे। छावनी में द्रौपदी के पाँच लड़के सो रहे थे। अश्वत्थामा ने समझा, ये पाँचो पाण्डव रहे हैं। उन्होंने चट उनके सिर काट लिये। द्रौपदी के लड़कों के कटे सिर लेकर जब वह दुर्योधन के पास पहुँचे, तब वह पाण्डवों के बदले उनके लड़कों के मारे जाने से कुछ प्रसन्न नहीं हुआ। उधर द्रौपदी ने जब अपने लड़कों के मारे जाने का हाल सुना तो वह विह्वल होकर रोने लगीं। इतने में अर्जुन के साथ कृष्ण भी लौट आये और द्रौपदी को धीरज देने लगे। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं बालकों की हत्या करनेवाले को अवश्य मारूँगा। अश्वत्थामा अर्जुन के डर से भागे और अर्जुन ने रथ पर बैठकर उनका पीछा किया। अश्वत्थामा को अपने प्राण बचाने का और कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने अर्जुन के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। अश्वत्थामा इस अस्त्र को चलाना तो जानते थे, पर उनके पिता द्रोणाचार्य ने उनको उस अस्त्र का लौटाना नहीं बतलाया था। लेकिन अर्जुन इस अस्त्र को चला भी सकते थे और लौटा भी सकते थे। ब्रह्मास्त्र बड़ा भयंकर था। वह पल भर में प्रलय कर सकता था। उसको कोई भी अस्त्र व्यर्थ नहीं कर सकता था। ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र ही शान्त कर सकता था, इसलिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ा। दोनों ब्रह्मास्त्र के बाण आकाश में जाकर अपने तेज से तीनों लोकों को जलाने लगे। तब कृष्णचन्द्र की सलाह से अर्जुन ने दोनों अस्त्रों को लौटा लिया। अब अश्वत्थामा बेबस हो गये। उनके रथ के घोड़े भी बहुत दूर भागने के कारण गिरकर मर गये और ब्रह्मास्त्र का वार भी खाली गया था। अब वह पैदल भागे। लेकिन अर्जुन ने दौड़कर थोड़ी ही दूर पर उनको पकड़ लिया। पकड़कर रथ के पीछे बाँध लिया। अश्वत्थामा को लेकर अर्जुन द्रौपदी के पास लौट आये। गुरुपुत्र की यह दशा देखकर द्रौपदी को दया आ गई। उन्होंने अर्जुन से कहकर अश्वत्थामा को छुड़ा दिया। तब अर्जुन ने तलवार से अश्वत्थामा का सिर चीरकर वह मणि निकाल ली, जो उन्होंने बालों के नीचे छिपा रक्खी थी। इसका कारण यही था कि शास्त्र में ब्राह्मण की हत्या करना मना है। तिस पर वह गुरु के बेटे भी थे। परन्तु अर्जुन अपने पुत्रों की हत्या करनेवाले को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। उसे पूर्ण करने का यही एक उपाय था कि उनका धन छीन लिया जाय; क्योंकि शास्त्र में धन छीन लेने को भी मार

डालने के समान माना है। तब से अश्वत्थामा गुप्त रूप से सर्वत्र विचरते हैं। वह शिव के परम भक्त हैं। लोग कहते हैं, अश्वत्थामा मुँहअँधेरे ब्रह्मावर्त में एक शिव मंदिर में पूजा कर जाते हैं। पर वह किसी को देख नहीं पड़ते। इसके बाद वराह अवतार की कथा सुनो।

ब्रह्माजी के चार पुत्र हैं, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। ये ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए मानसी सन्तान कहलाते हैं। ये चारो बड़े ज्ञानी और भगवान के भक्त हैं। देखने में ये पाँच वर्ष के बालक जान पड़ते हैं। ये चारो परमहंस बालकों की तरह ही नंगे घूमते रहते हैं। एक समय ये चारो महात्मा भगवान् नारायण के दर्शन करने के लिए भगवान् के लोक वैकुण्ठ धाम को गये। वहाँ भगवान् के महल की ड्योढ़ी पर जय-विजय नाम के द्वारपालों ने इनको बालक समझकर दरवाजे में बेंत अड़ाकर भीतर जाने से रोका। इस पर ऋषियों को क्रोध हो आया और उन्होंने जय-विजय को शाप दिया कि तुम परमधाम वैकुण्ठ में रहने लायक नहीं हो, इसलिए पृथ्वी पर जाकर असुर-

में जन्म लो। भगवान् को जब यह हाल मालूम हुआ तो वह द्वार पर आ गये और उन्होंने ऋषियों को प्रसन्न किया। तब ऋषियों ने कहा—ये जय-विजय पृथ्वी पर तीन

बार जन्म लेंगे और वहाँ भगवान् से वैर-भाव रखकर उनके हाथों मारे जायँगे। अन्त को तीन जन्म के बाद फिर वैकुण्ठ में चले आवेंगे। ये दोनो पार्षद पहले हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नाम के राक्षस हुए। हिरण्याक्ष को भगवान् ने वराह अवतार लेकर मारा। हिरण्यकशिपु नृसिंह अवतार के हाथ से मारा गया। दूसरे जन्म में जय-विजय रावण और कुम्भकर्ण हुए। तब रामअवतार लेकर भगवान् ने उनको मारा। तीसरे जन्म में ये दोनों शिशुपाल और दन्तवक्र नाम के असुरावतार राजा हुए। उनको कृष्ण भगवान् ने मारा।

अब यहाँ पहले वराह अवतार और हिरण्याक्ष के वध की कथा कहते हैं। ब्रह्माजी के पुत्र कश्यप ऋषि के दिति और अदिति नाम की दो स्त्रियाँ थीं। अदिति से सब देवता और दिति से सब दैत्य उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं दिति के गर्भ से कश्यपजी के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु उत्पन्न हुए। हिरण्याक्ष छोटा और हिरण्यकशिपु बड़ा था। दोनो भाई बड़े बली थे। हिरण्याक्ष गदा लेकर दिग्विजय करने के लिए चला। दुनिया के सब वीरों को जीत लेना दिग्विजय कहलाता है। हिरण्याक्ष पहले जल के राजा वरुण देवता के पास युद्ध करने के लिए गया। वरुण ने देखा, वह उस दैत्य से जीत न पावेंगे। इसलिए उन्होंने कहा—तुम भाई,

बराहजी से जाकर युद्ध करो। वह इस समय जल के भीतर से पृथ्वी को निकालकर ले जाने के लिए सागर के भीतर ही हैं।

यहाँ पर बराहजी के जन्म का कुछ हाल सुन लो। ब्रह्माजी ने प्रलय के बाद जब इस सृष्टि को फिर पैदा करना शुरू किया, तब मनुष्यों के राजा स्वायंभुव मनु और उनकी शतरूपा रानी को अपने शरीर के आधे-आधे हिस्से से पैदा करके ब्रह्माजी ने उनको आज्ञा दी कि तुम प्रजा उत्पन्न करके सृष्टि को बढाओ और उसका पालन करो। इस पर मनु ने कहा—पिताजी, मैं मनुष्यों की सृष्टि को तो बढ़ाऊँ, पर सब ओर जल ही जल भरा है ; मेरी प्रजा के रहने के लिए स्थान तो बताइए। जीव जिस पर रहते हैं, वह पृथ्वी तो पानी में डूबी हुई है। इसे ऊपर निकालने का कोई उपाय कीजिए। अब तो ब्रह्माजी बड़े सोच में पड़ गये। क्या करें? पृथ्वी कैसे निकले? ब्रह्माजी सोच-विचार कर ही रहे थे कि इतने में उन्हें एक छींक आई। छींक के साथ ही अँगूठे की पोर के बराबर एक शूकर का बच्चा उनकी नाक से निकल पड़ा। यह बराह भगवान् थे। वह देखते ही देखते हाथी से भी बड़े हो गये। ब्रह्मा ने समझ लिया, पृथ्वी का उद्धार करने के लिए यह भगवान् का ही अवतार हुआ है। ब्रह्मा और उनके बेटे बराह भगवान् की स्तुति करने लगे। तब बराहजी जोर से गरजकर उस महासागर में फाँद पड़े। जल की तह में पहुँचकर भगवान् ने पृथ्वी को खोज लिया और उसे अपने दाँत पर उठाकर ऊपर को चले। इसी समय हिरण्याक्ष से उनकी भेंट हो गई। हिरण्याक्ष बहुत देर तक लड़कर बराहजी के

हाथ से मारा गया। भगवान् वराह ने पृथ्वी को लाकर जल के ऊपर स्थापित किया और उसी के ऊपर सारी सृष्टि बसी। अब भगवान् के अवतार कपिलदेव का चरित्र तुमको सुनाता हूँ।

स्वायंभुव मनु का नाम तुम सुन चुके हो। ब्रह्माजी के पुत्र स्वायंभुव मनु के शतरूपा रानी में प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के लड़के और आकूति, प्रसूति तथा देवहूति नाम की तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। आकूति का व्याह रुचि प्रजापति के साथ हुआ। प्रसूति का व्याह दक्ष-प्रजापति के साथ हुआ। देवहूति का व्याह कर्दम प्रजापति के साथ हुआ। स्वायंभुव मनु के ये तीनों दामाद भी ब्रह्माजी की ही सन्तान थे। कर्दम प्रजापति के साथ देवहूति का व्याह जब हो गया, तब वह सृष्टि उत्पन्न करने के विचार से बहुत दिनों तक तपस्या करते रहे। इस समय देवहूति ने उनकी बड़ी सेवा की। मुनि ने प्रसन्न होकर योगबल से एक बढ़िया विमान उत्पन्न किया और उसी पर बैठकर देवहूति के साथ तीनों लोकों में घूमकर सुख भोगते रहे। देवहूति के गर्भ से कर्दम के कई लड़कियाँ और अन्त में कपिलदेव उत्पन्न हुए। कपिलजी भगवान् का ही अवतार और बड़े ज्ञानी थे। कर्दमजी जब तपस्या करने चले गये, तब कपिलदेव ने अपनी माता देवहूति को ज्ञान का उपदेश किया। देवहूति तर गईं। कपिलदेवजी गंगासागर में तपस्या करने चले गये। कपिलदेवजी सांख्यशास्त्र के आचार्य हैं। इन्हीं की कोप-दृष्टि से राजा सगर के साठ हजार लड़के भस्म हो गये थे। सगर के परपोते भगीरथ राजा ने तपस्या करके गंगाजी को पृथ्वी पर बुलाया और गंगा को सागर तक ले जाकर अपने पुरखों की राख बहाई, जिससे वे मुक्त हो गये। जहाँ भगीरथ के पुरखे तरे थे, वहीं गंगा और सागर का संगम गंगासागर नाम का महातीर्थ है। यहाँ मकर-संक्रांति को अब भी मेला लगता है और कपिलदेव के दर्शन तथा स्नान हजारों यात्री करते हैं। बेटा मनोहर, मन लगाकर सुनना अब सती चरित्र कहता हूँ।

दक्ष प्रजापति का नाम ऊपर आ चुका है। दक्ष ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया। उसमें उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सब देवतों को और सगे-सम्बन्धी दामाद वगैरह को बुलाया, पर शिवजी को, जो उनके दामाद थे, नहीं बुलाया। इसका कारण यह था कि एक दफे एक सभा में दक्ष जब पहुँचे, तब सब लोगों ने उठकर और प्रणाम करके उनका आदर किया; और शिव भगवान् जैसे के तैसे बैठे रहे। दक्ष को बड़ा क्रोध आया उन्होंने शिव भगवान् को बहुत

बुरा-भला कहा। इस पर शंकर तो कुछ बोले नहीं, पर उनके पार्षद नंदीश्वर ने दक्ष को और उनका पक्ष लेनेवालों को बहुत फटकारा। तभी से ससुर-दामाद में मन-मैली चली आ रही

थी। दक्ष ने अपने यज्ञ में न बुलाकर शिव से अपने अपमान का बदला चुकाया शिव के साथ ही अपनी बेटी को भी न्योता नहीं दिया। यज्ञ में सब देवता विमानों पर दक्ष की राजधानी कनखल को जा रहे थे। उनकी बातें सुनकर पार्वतीजी को अपने पिता घर यज्ञ होने का हाल मालूम हुआ। सतीजी ने अपने पति महादेव से आकर प्रार्थना की आप भी मुझे लेकर इस यज्ञ में चलिए। शंकर ने कहा—हमको तुम्हारे पिता ने बुलाया है। वह मुझ से बैर रखते हैं। बिना बुलाये जाना ठीक नहीं। इसका फल अच्छा होगा। पर लड़कियों को मायके का मोह बड़ा होता है। सती ने कहा—बुलावा

आया तो क्या हुआ ? पिता के घर बेबुलाये जाने में कोई अपमान नहीं। अगर आप नहीं जाते तो मैं तो जरूर जाऊँगी। इतना कहकर वह अकेली ही चल दी। तब शंकर ने समझ लिया कि होनी बड़ी प्रबल है। उसे कोई नहीं टाल सकता। जो होना है, सो होकर ही रहेगा। यह सोचकर भगवान् ने नंदी आदि अपने गणों को देवी के साथ भेज दिया। उनका सब सामान भी उनके साथ भेज दिया; क्योंकि शंकर जानते थे कि सती अब वहाँ से जीती नहीं लौटेंगी। सतीजी जब पिता के यज्ञ-मंडप में पहुँचीं तब वहाँ यज्ञ हो रहा था। दक्ष ने उन्हें देखकर भी जैसे नहीं देखा। केवल उनकी माता और बहनों ने उनको आदर के साथ बिठाया। सती ने देखा, यज्ञशाला में सब देवतों के भाग (हिस्से) रक्खे हैं; परन्तु शंकर का भाग कहीं नहीं है। बस, भगवती भवानी को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने अपने पिता को बहुत फटकारा और बोलीं—तुम शंकर के द्रोही हो। यह शरीर तुम से पैदा हुआ है, इसलिए इस अपवित्र शरीर को मैं न रक्खूँगी। इतना कहकर भगवती वहीं पाल्थी मारकर बैठ गईं। समाधि लगाकर उन्होंने योगबल से अपने शरीर में आग पैदा कर ली, और देखते ही
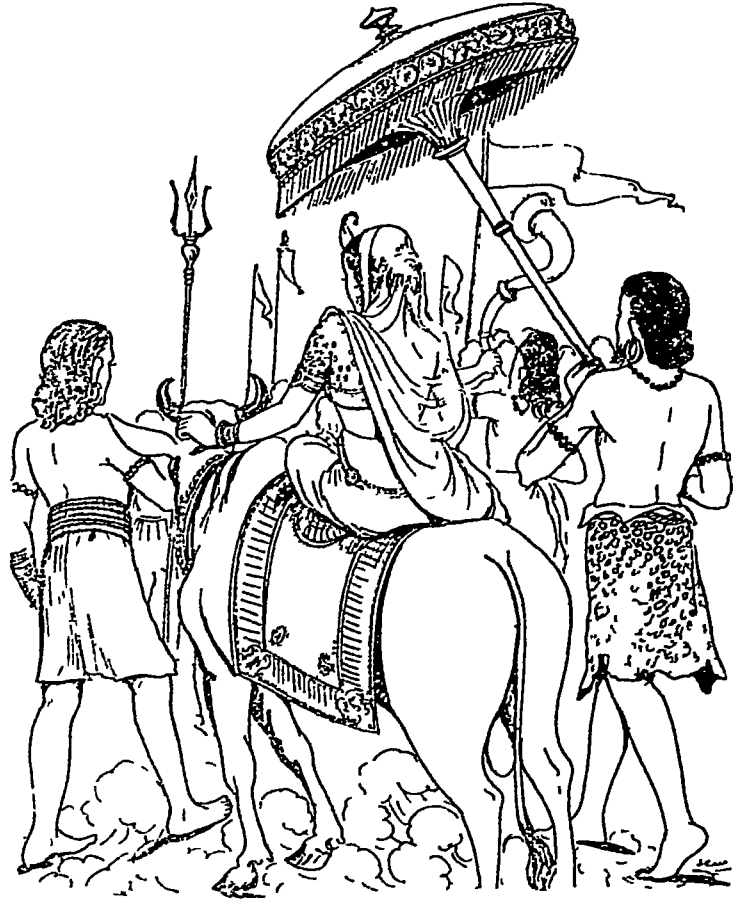
देखते उसी में भस्म हो गईं। यह देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे। यह खबर जब शंकर को मिली, तब वह क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने अपनी जटा की एक लट उखाड़कर धरती पर पटकी, उससे बड़े बलवान् वीरभद्र उत्पन्न हुए। यह शंकर के प्रधान पार्षद और उन्हीं का अवतार थे। वीरभद्र और शिव के गणों के साथ त्रिशूल तानकर धरती को कँपाते हुए तेजी

से दौड़े। उन्होंने जाकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर दिया। होम की आग बुझा दी। जो देवता उस यज्ञ में आये थे, उनमें से किसी के दाँत तोड़ दिये, किसी की आँखें निकाल लीं, किसी की दाढ़ी उखाड़ ली। यजमान दक्ष का सिर धड़ से अलग करके वीरभद्र ने यज्ञकुण्ड में डाल दिया। इस तरह यज्ञ का विध्वंस करके सब शिव के गण लौट गये। इधर ब्रह्माजी सब देवतों को लेकर कैलाश पर्वत पर शंकर को प्रसन्न करने और अपना अपराध क्षमा कराने के लिए पहुँचे भगवान् शंकर भोलानाथ तो हैं ही। देवतों की प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो गये। अब फिर, बकरे का सिर जोड़कर, दक्ष को ब्रह्मा ने जिला दिया। दक्ष ने यज्ञ को पूरा किया। सतीजी फिर हिमाचल

की लड़की पार्वती हुई और फिर शंकर को व्याही गई। इस तरह सती और शंकर का मिलन हुआ मनोहर, मुझे आशा है, यह कथा तुमको बड़ी अच्छी लगी होगी। अब मैं तुमको इससे भी अ ध्रुवजी का चरित्र सुनाऊँगा। उसमें लड़कों के लिए सीखने की बहुत-सी बातें हैं।

मनोहर—पिताजी, ये कथाएँ तो बड़ी अच्छी और रोचक हैं। मेरा मन खूब लगता है। अब आप ध्रुव-चरित्र सुनाइए।

बनारसी—आकाश में उत्तर ओर खटोले के आकार में जो चार तारे देख पड़ते हैं, उनके आगे तीन तारे एक त्रिकोण बनाते हैं। ये ही सात तारे सप्तऋषि हैं। इनकी सीध में एक तारा है, जो हमेशा एक ही जगह पर निकलता है और स्थिर बना रहता है। इसे ध्रुव तारा कहते हैं। प्रसिद्ध है कि यही वह ध्रुव हैं, जिन्होंने भगवान् को प्रसन्न करके यह सबसे ऊँचा ध्रुवपद पाया है। अच्छा सुनो। राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुनीति बड़ी और सुरुचि छोटी थी। सुनीति के बेटे का नाम ध्रुव था और सुरुचि के बेटे का नाम उत्तम। राजा सुरुचि के डर से सुनीति को एक तरह से छोड़े हुए थे। एक दिन राजा सुरुचि के महल में बैठे थे। बालक ध्रुव, जिसकी अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी, खेलता हुआ राजा के पास पहुँचा और सिंहासन पर सुरुचि के साथ बैठे हुए अपने पिता की गोद में चढ़ने लगा। सुरुचि ने उसे झिड़क दिया और कहा, राजा की गोद में बैठने का तेरा हौसला! तू एक अभागिन की कोख से पैदा हुआ है, इसलिए राजसिंहासन पर बैठ नहीं सकता। जा, जा, यह जगह मेरे बेटे उत्तम की है। राजा उत्तानपाद ने सुरुचि के डर से ध्रुव को उतार दिया। ध्रुव रोते हुए अपनी मा के पास गये। माता ने गोद में ले उसके आँसू पोंछे। पूछने से सब हाल मालूम हुआ। तब सुनीति ने कहा—बेटा! तेरी सौतेली मा सच कहती है। मैं सचमुच अभागिन हूँ; क्योंकि राजा मुझे नहीं चाहते। खैर, इसके लिए तू सोच न कर। अपने-अपने भाग्य हैं। तू अगर सचमुच अपनी उन्नति चाहता है तो भगवान् का भजन कर। उनकी कृपा से तू राज्य क्या, बड़े से बड़ा पद पा सकता है। बालक ध्रुव को सौतेली माता का व्यवहार इतना बुरा लगा कि वह उसी समय, उसी बचपन में जब लड़के खेलने खाने के सिवा और कुछ नहीं जानते, वन में जाकर तपस्या करके भगवान् को प्रसन्न करने के लिए तैयार हो गये। माता ने लाख रोका और कहा कि अभी तेरी अवस्था छोटी है; पर ध्रुव ने न माना और चल दिये। राह में नारदजी ने उनको दर्शन दिये। नारद ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया और जंगल में तरह-तरह के कष्ट होने की बात कहकर डराया भी; लेकिन बालक ध्रुव अपने प्रण पर अटल रहे। तब नारद ने उनको मथुरा जाने और वहाँ तपस्या करने का उपदेश देकर आशीर्वाद दिया। ध्रुव तपस्या करने गये और नारद उत्तानपाद राजा के पास पहुँचे। राजा ने सुरुचि के डर से अपने पुत्र ध्रुव को गोद में नहीं लिया था, इसका उन्हें बड़ा दुःख और पछतावा था। ध्रुव के चले जाने से वह बड़े चिन्तित थे। नारद ने उनको बतलाया

कि तुम ध्रुव के लिए चिन्ता न करो। वह बड़ा प्रतापी लड़का है। वह तपस्या से भगवान् को प्रसन्न करके ध्रुवपद को प्राप्त करेगा। उससे तुम्हारा भी यश बढ़ेगा। नारद के मुख से समाचार सुनकर राजा की चिन्ता दूर हुई। उधर ध्रुव जाकर वन में बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। वैसी तपस्या न किसी ने पहले की थी और न कोई कर सकेगा। भगवान् ने उनको दर्शन दिये, और कहा—बेटा, इस लोक में तुम बड़े राजा होगे और परलोक में ध्रुवपद पाओगे। सब नक्षत्र और तारे तुम्हारी प्रदक्षिणा करेंगे।

मनोहर—पिताजी, प्रदक्षिणा क्या?

बनारसी—प्रदक्षिणा चारों ओर घूमने को कहते हैं। हाँ, तो ध्रुव जब अपने घर आये तो नगर में बड़ी खुशी मनाई गई। राजा उत्तानपाद और ध्रुव की दोनों माताएँ

ध्रुव को हरिदर्शन

लेने के लिए नगर के बाहर आई। राजा उत्तानपाद बूढे होने पर ध्रुव को राज्य देकर वन में भगवान् का भजन करने चले गये। ध्रुव का भाई उत्तम एक समय शिकार खेलने वन में गया। वहाँ यक्षों से उसकी लड़ाई हो गई और उसमें वह मारा गया। तब ध्रुव क्रोध करके भाई का बदला लेने के लिए कैलाश पर्वत पर यक्षों की नगरी अलकापुरी को गये। अलका में यक्षों के राजा और शिव के मित्र कुबेर रहते हैं। ध्रुव की चढाई देखकर यक्ष लोग लड़ने आये। ध्रुव ने हजारों यक्षों को मार गिराया। तब ध्रुव के बाबा स्वायंभुव मनु ने आकर समझाया कि यक्षों की वृथा हत्या न करो। क्रोध बुरा है। उसके वश में होना ठीक नहीं। कुछ यक्षों ने या एक यक्ष ने तुम्हारे भाई को युद्ध में मारा है। उसके लिए हजारों निरपराध यक्षों का वध तुम
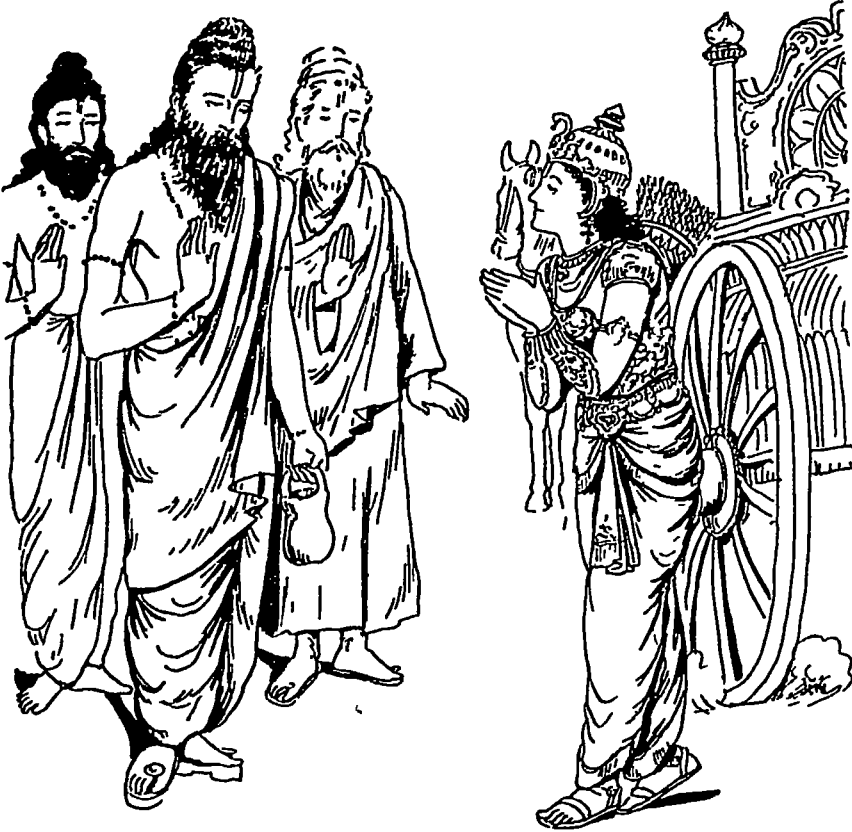
कर चुके। अब शान्त हो। स्वायंभुव मनु के कहने से ध्रुव का क्रोध जब शान्त हुआ, तब कुबेर ने आकर उनकी बड़ी सराहना की और वरदान दिये। ध्रुव अपनी पुरी को लौट आये। जब ध्रुव बूढे हुए, तब राजपाट छोड़कर भगवान् का भजन करने लगे। अन्त समय विष्णु

भगवान् का भेजा हुआ विमान उनको लेने आया। तब ध्रुव ने विष्णु के पार्षदों से कहा—देखिए, मेरी माता को पहले ले चलिए, तब मैं चलूँगा। पार्षदों ने कहा—वह देखिये, माता आपसे पहले ही विमान पर बैठ वैकुण्ठ को जा रही हैं। तब ध्रुव विमान पर बैठकर ध्रुव लोक को गये। ध्रुव कैसे स्वाभिमानी थे कि सौतेली मा के किये हुए अपमान को भी इतनी छोटी उमर में न सह सके और इतनी उन्नति की। भाई और मा-बाप का इतना आदर थे कि जो सब लड़कों के लिए एक आदर्श होना चाहिए। अब आज यहीं तक, कल मैं तुमको राजा पृथु का चरित्र और और भी कथाएँ सुनाऊँगा।

दूसरे दिन ठीक समय पर मनोहर अपने पिता के पास बैठ गया और बोला—पिता जी, राजा पृथु का चरित्र मुझे सुनाइए।

बनारसी ने कहा—पहले समय में वेन नाम का एक बड़ा दुष्ट राजा था। वह न धर्म किसी को करने देता था और न ईश्वर को मानता था। उसने ढिंढोरा पिटवा दिया था कि कोई यज्ञ आदि धर्म-कर्म न करे; न ईश्वर का भजन करे। मैं ही ईश्वर और देवता सब कुछ हूँ मेरा ही पूजन और भजन सब लोग करें। वेन के राज्य में, उसके डरसे सब धर्म-कर्म बंद हो गये। यह देख सब ब्राह्मणों ने मिलकर यह सलाह की कि हमने वेन को दुष्ट जानकर भी राजा इसलिए बनाया था कि विना राजा के प्रजा की रक्षा नहीं होती। जब कोई राजा नहीं रहता, तब चोर-डाकू प्रजा को निर्भय होकर लूटते हैं। पर अब यह वेन तो धर्म को ही मिटाये देता है। इसलिए चलकर पहले इसे समझाना चाहिए। अगर इस पर भी यह बाज न आया तो फिर हम अपने ब्रह्मतेज से इसे भस्म कर देंगे। यों निश्चय करके सब ब्राह्मण राजा वेन के पास गये और बोले—महाराज, धर्म से ही यह संसार थमा है। धर्म से राजा की आयु, बल, लक्ष्मी और तेज बढ़ता है। भगवान् का तुम निरादर करते हो, इसलिए इस लोक या परलोक में तुम्हारा भला नहीं हो सकता। हमारा कहा मानो, और भगवान् तथा धर्म को मानो। दुष्ट वेन ने ऋषियों का कहा नहीं माना और कठोर बचन कहे। तब ऋषियों को क्रोध आ गया। उसी समय कहा—तू मर जा। ऋषियों के इतना कहते ही राजा वेन मर गया। ऋषि लोग अपने-अपने आश्रम को चले गये और वेन की माता सुनीथा मंत्र के प्रभाव से अपने पुत्र लाश की रक्षा करने लगीं, उसे जलाया नहीं। इधर ऋषियों ने एक दिन देखा, डाकू लोग को लूट रहे हैं और त्राहि-त्राहि मची हुई है। तब ऋषियों ने सोचा, विना राजा के तो चल नहीं सकता। वेन मर गया, उसके पुत्र भी नहीं है। तब ऋषियों ने वेन की लाश को

नकी जाँघ को मथा। उस जाँघ से एक बौना, काला कलूटा मनुष्य पैदा हुआ। वह वेन के रीर का पाप था। ऋषियों के मंत्रबल से उत्पन्न वह पुरुष निषाद (मल्लाह) जाति का पूर्व

पुरुष हुआ। इसके बाद ऋषि लोग राजा वेन के शुद्ध शरीर को फिर मथने लगे। तब उसके बाहुओं से एक पुरुष और एक स्त्री पैदा हुई। पुरुष भगवान विष्णु का अंश राजा पृथु कहलाये और स्त्री लक्ष्मी का अवतार रानी अर्चि महाराज पृथु की स्त्री हुई।

पृथु के उत्पन्न होने पर सब देवता और ऋषि उनकी स्तुति करने लगे। स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे और देवता फूल बरसाने लगे। ऋषियों ने राजा पृथु को राजगद्दी पर बिठाया। उस समय वेन राजा के अधर्म के कारण और यज्ञ आदि पुण्य-कर्म न होने के कारण, देवतों के कोप से पृथ्वी अन्न नहीं पैदा करती थी, सारा बीज पृथ्वी में ही रह जाता था। अब राजा पृथु ने पृथ्वी को गऊ बनाकर उससे अन्न, ओषधियाँ आदि सब पदार्थ दुह लिये। पृथु से पहले यह पृथ्वी ऊँची-नीची-ऊबड़-खाबड़ थी, पृथु ने उसे बराबर किया, बसने के लायक बनाया। इसी से पृथ्वी को राजा

पृथु की लड़की कहते हैं। राजा पृथु बड़े प्रतापी राजा हुए। वह समुद्र तक सारी पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा थे। सब छोटे राजा उनकी आज्ञा को मानते थे। उन्होंने बहुत से यज्ञ किये और ब्राह्मणों को मुँह-माँगी दक्षिणा देकर प्रसन्न किया। इस तरह बहुत दिनों तक राज्य करके अन्त को भगवान् के लोक को गये। यह कथा तो यहीं पर समाप्त हुई। अब बेटा, मैं तुमको ऋषभदेव और जड़भरत का हाल सुनाता हूँ। तुम्हारा मन तो लगता है न?

मनोहर—हाँ पिता जी, मेरा मन खूब लगता है। इन कथाओं से बड़ी अच्छी-अच्छी बातें मालूम होती हैं, और पुराने इतिहास का ज्ञान होता है।

बनारसी—अच्छा सुनो, ऋषभदेव भी भगवान् का अवतार हो गये हैं। ऋषभदेव के पिता का नाम नाभि और माता का नाम मेरुदेवी था। ऋषभदेवजी बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने बहुत दिनों तक राज्य किया। अन्त को अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर इस देह और घर की ममता छोड़कर भगवान् का भजन करने लगे। वह इच्छा के अनुसार घूमते फिरते थे। सुख या दुःख की परवा उनको नहीं थी। जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता था, वही खा लेते थे। उनकी नजर में न कोई अपना था, न पराया। होते-होते ऐसा हो गया कि वह पड़े ही पड़े मल-मूत्र भी करने लगे। समय आने पर वन में बाँसों की रगड़ से उत्पन्न दावानल (आग) में शरीर छोड़कर परमधाम को सिधारे। आजकल के जैनी लोग उनको अपना एक तीर्थंकर मानते हैं और देवता की तरह उनकी मूर्ति को पूजते हैं। उस समय के एक राजा ने उनके आचरण की नक़ल करके यह जैनमत चलाया है।

ऋषभदेवजी के बड़े पुत्र का नाम भरत था। वह भी बड़े प्रतापी हुए। भरतजी ने बहुत दिनों तक राज्य किया। उसके बाद ससार का मोह छोड़कर वन में जाकर तपस्या करने लगे। एक दिन वह नदी के किनारे बैठे सन्ध्या कर रहे थे। इसी समय एक मृगी, जिसके पेट में बच्चा था, वहाँपानी पीने के लिए आई। इतने में एक शेर गरज उठा। वह मृगी डरके मारे नदी के उस पार जाने के लिए उछली। उसका गर्भ डर के मारे गिर पड़ा। उसका बच्चा तो नदी की धारा में गिर पड़ा और वह उस पार जाकर गिरी और मर गई। भरतजी को उस बिना मा-बाप के असहाय बच्चे पर दया आ गई और वह उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आये। वह मृग का बच्चा उन्हीं के पास दिन-रात रहने लगा और उनको बहुत हिल गया।

उस मृगी के अनाथ बच्चे की ममता में पड़कर भरतजी के धीरे-धीरे भजन-पूजन सब छूटने

लगे। वह दिन-रात उसी का खेलना-कूदना देखते और उसे दुलराते रहते थे। वह बच्चा जब कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन आश्रम के बाहर निकल गया और मृगों के झुण्ड में मिलकर कहीं जंगल में दूर चला गया। शाम तक जब वह नहीं लौटा, तब भरतजी बहुत दुखी हुए। वह कई दिन तक उसे ढूँढते रहे; पर वह उनको नहीं मिला। कुछ दिन बाद भरतजी की मृत्यु हो गई। मरने के समय भी मृग का ध्यान लगा रहने के कारण भरतजी दूसरे जन्म में मृग ही हुए। इसलिए जन्म के बाद भी उनको यह ध्यान बना रहा कि एक मृग के मोह और ममता में फँस जाने के कारण मुझको मनुष्य से मृग का चोला मिला है। यह सब उनके पहले जन्म की तपस्या का प्रभाव था, नहीं तो पहले जन्म की याद किसे रहती है? मृग के जन्म में भी वह तीर्थ-स्थानों में ही रहते और मन ही मन भगवान् का ध्यान करते थे, इसलिए मृग का चोला छूटने पर वह फिर मनुष्य-योनि में पैदा हुए। अब की वह एक ब्राह्मण के घर पैदा हुए। उनके पिता ने उनको बहुत कुछ पढ़ाया-लिखाया; पर उन्होंने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और सिड़ी-सौदाई

की तरह रहने लगे। इसका कारण यह था कि उनको यह ध्यान था कि एक बार संसार में फँसने के कारण उनकी तपस्या भ्रष्ट हो गई और वह इस संसार से छुटकारा नहीं पा सके। इसीलिए अब वह संसार में फँसना नहीं चाहते थे। बाप के मरने पर इनके भाइयों ने देखा, यह यजमानी का कोई काम तो कर नहीं सकते, मगर खाना इनको देना ही पड़ेगा। इसलिए इनसे कुछ काम लेना चाहिए। तब इनके भाइयों ने कहा, तुम खेत गोड़ो। भरतजी को अब भाई जडभरत कहते थे।

जड़भरत खेत खोदने लगे तो कहीं पर गोड़ा ही नहीं, और कहीं पर एकदम गहरा गढा खोद डाला। तब भाइयों ने इनको खेत की रखवाली करने का काम सौंपा। यह दिन-रात खेत ताकते थे और घर में इनकी भावजें इनको जो कुछ रूखा-सूखा, जला-भुना अन्न खाने को देती थीं, वही बड़े शौक से खा लेते थे। एक रात को यह खेत ताक रहे थे; इतने में उधर से कुछ आदमी निकले। ये लोग डाकू थे। इनके सरदार ने काली के आगे बलि देने के लिए एक आदमी को पकड़ रक्खा था।

मनोहर—पिताजी, बलि क्या है?

बनारसी—काली डाकुओं की देवी हैं। उनको प्रसन्न करने के लिए बकरा, भैंसा या मनुष्य को उनके आगे मारते हैं। इसी को बलिदान कहते हैं। बलिदान केवल काली के ही आगे दिया जाता है और किसी देवता के आगे नहीं। हाँ, तो उस डाकू ने बलिदान के लिए जिस आदमी को पकड़ रक्खा था, वह मौका पाकर भाग गया। अब दूसरे आदमी को पकड़ लाने के लिए सरदार ने अपने आदमियों को भेजा था। उन्होंने जडभरत को मोटा-ताजा और सीधा सादा देखकर पकड़ लिया और ले चले। ज्ञानी जडभरत चुपचाप उनके साथ चले गये। अमावस के दिन

उनको नहला-धुलाकर, लाल कपडे और माला पहनाकर उस डाकू सरदार ने काली की मूर्ति के आगे बिठाया और तलवार लेकर बलिदान के लिए तैयार हुआ। एक ज्ञानी महापुरुष की हत्या देवीजी नहीं देख सकीं। वह उसी मूर्ति से प्रकट हुईं। सरदार के हाथ से तलवार छीनकर देवी ने उसी का सिर काट डाला। उसके सब साथी भाग गये। जड़भरतजी वहाँ से उठकर चल दिये। फिर मनमाना घूमने लगे। उधर से राजा रहूगण पालकी पर बैठा हुआ ज्ञान सीखने के लिए किसी महात्मा की खोज में जा रहा था। रास्ते में पालकी का एक कहार बीमार पड़ गया। तब उन कहारों ने मोटा ताजा देखकर जड़भरत को बेगार-पकड़ लिया। यह कंधे पर पालकी लेकर चलने लगे। राह में जहाँ कोई चींटी वगैरह जीव देख पड़ता था तो उसे बचाने के लिए जड़भरत

अजामिल का अंतकाल

छलाँग मारते थे। इससे पालकी में राजा को धक्का लगता था। कई बार ऐसा होने पर राजा को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने जड़भरत को डाँटा। उसके जवाब में जड़भरत ने ऐसी ज्ञान की बातें की कि राजा दंग रह गया। वह इन्हें कोई महात्मा समझकर पालकी से उतरकर इनके पैरों पर गिर पड़ा। जड़भरत ने राजा को आत्मज्ञान का उपदेश किया। राजा कृतार्थ होकर अपने घर को लौट गया। भरतजी समय आने पर यह शरीर छोड़कर मुक्त हो गये। फिर उनका जन्म नहीं हुआ। बस बेटा, आज यहीं तक। कल तुमको मैं अजामिल की कथा सुनाऊँगा।
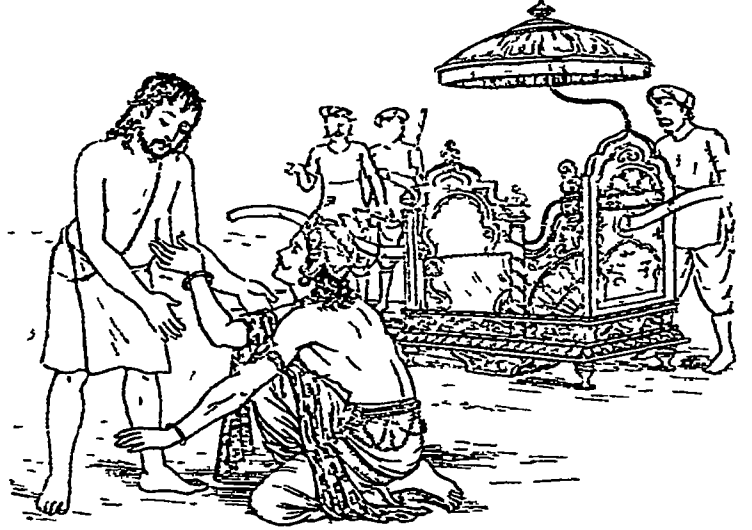
दूसरे दिन मनोहर फिर ठीक समय पर अपने पिता के पास आकर बैठ गया। उसकी लगन देखकर बनारसी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने फिर इस तरह कहना शुरू किया। अजामिल एक ब्राह्मण का लड़का था। उसने सब वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास पढ़े। वह नित्य संध्या-पूजा और होम करता था। वह एक दिन होम के लिए जंगल से लकड़ी लेने जा रहा था। राह में उसने एक वेश्या को देखा। पढ़ा-लिखा होने पर भी वह उस वेश्या के रूप पर मोहित हो गया। अजामिल का ब्याह भी हो चुका था; पर होनी ने उसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया। उस दिन से उसने ब्राह्मणों के सब काम छोड़ दिये और बेधरम होकर उसी वेश्या के साथ रहने लगा। वह शराब पीता, मांस खाता और बुरे-से-बुरा काम करता था। उसके उस वेश्या से कई बाल-बच्चे भी हुए। सबसे छोटे लड़के का नाम उसने नारायण रक्खा। यह लड़का उसे बहुत प्यारा था। अजामिल की सारी उमर इसी तरह बीती। जब उसका मरने का समय आया, तब यमराज के दूत उसके शरीर से प्राण निकालने के लिए आये। उनकी सूरत बड़ी डरावनी थी। उनको देखकर अजामिल ने डरके मारे चिल्लाकर अपने पुत्र नारायण को पुकारा। नारायण का नाम लेते ही उसके सब पाप वैसे ही मिट गये, जैसे सूर्य के निकलने पर अँधेरा मिट जाता है। नारायण कहकर जब अजामिल ने पुकारा, तब भगवान् नारायण के सेवक पार्षद उसी समय वहाँ आ गये। उनके सुन्दर

शान्त स्वरूप को देखकर अजामिल की आत्मा शुद्ध हो गई। विष्णु के दूतों ने यमदूतों से कहा— तुम लोग इस पुण्यात्मा को नहीं ले जा सकते। यह वैकुण्ठ-धाम को जायगा। नारायण का नाम लेते ही इसके पाप मिट गये। हारकर यमराज के दूत लौट गये और अजामिल नारायण की महिमा के प्रभाव से विष्णुलोक को चला गया। अब मैं तुमको वृत्रासुर की कथा सुनाता हूँ।

देवता लोगों के गुरु और पुरोहित बृहस्पति हैं। एक समय इन्द्र के किसी अपराध से बृहस्पति नाराज हो गये। उन्होंने इन्द्र का साथ छोड़ दिया। इधर यह खबर पाकर देवतों के शत्रु दैत्यों और दानवों ने देवतों को दबाना और सताना शुरू किया। अब इन्द्र को ऐसे किसी प्रभावशाली ऋषि की जरूरत पड़ी, जो अपने प्रभाव से उनकी रक्षा कर सके और ऐसा यज्ञ करा सके, जिसके प्रभाव से इन्द्र अपने शत्रु दानवों को हरा दें। इन्द्र को मालूम हुआ कि त्वष्टा ऋषि के लड़के विश्वरूप में ऐसी शक्ति है। विश्वरूप देववंश में पैदा हुए थे; पर उनकी माता दानव वंश की थीं। इन्द्र ने जाकर तपस्वी विश्वरूप से अपना आचार्य बनने और यज्ञ कराने की प्रार्थना की, जिसे विश्वरूप ने मंजूर कर लिया। उन्होंने नारायणकवच नाम का एक स्तोत्र बतलाया। उसका पाठ करने से फिर किसी शत्रु का भय नहीं रहता। अब इन्द्र को दानवों का

भय नहीं रहा। इसके बाद इन्द्र ने यज्ञ किया। यज्ञ में विश्वरूप जोर से देवतों का नाम लेकर उनके नाम से आहुति छोड़ते थे और देवतों से छिपाकर चुपके से माता के पक्ष के दानवों को यज्ञ का भाग देते थे। इन्द्र को जब यह मालूम हुआ, तब उन्होंने क्रोध करके विश्वरूप के सिर काट डाले। विश्वरूप के तीन सिर और मुख थे। जिससे वह सोम पान करते थे उससे चातक, जिससे मदिरा पीते थे उससे गरगैया नाम की चिड़िया और जिससे अन्न भोजन करते थे उससे तीतर पक्षी पैदा हुआ। तब इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इन्द्र ने पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्री-जाति को

वह ब्रह्महत्या का पाप चार हिस्से करके बाँट दिया। इन्द्र ने इसके बदले में पृथ्वी को यह वर दिया कि उसके खोदे हुए गढे आप से भर जायँगे। वृक्षों को यह वर दिया कि काटे जाने पर वे फिर पनप आवेंगे। जल को यह वर दिया कि वह सब पदार्थों में मिल सकेगा। स्त्रियों को यह वर दिया कि उनमें सदा संभोग करने की शक्ति रहेगी। पृथ्वी में ऊसर, वृक्षों में गोंद, जल में फेना और स्त्रियों में मासिकधर्म उसी ब्रह्महत्या का रूप है। विश्वरूप के मारे जाने पर उसके पिता त्वष्टा को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने इन्द्र को मारने के विचार से एक यज्ञ किया। उसमें आहुति डालते ही ब्रह्मकुण्ड से एक महाभयानक और बलवान् असुर पैदा हुआ। उसका नाम वृत्रासुर पड़ा। त्वष्टा ने आहुति छोड़ते समय इन्द्रशत्रु शब्द कहा था; पर उसके दो अर्थ होते हैं—इन्द्र का शत्रु और इन्द्र जिसका शत्रु हो वह। उच्चारण के भेद से उसका दूसरा ही फल हुआ। इन्द्र ने ही उसको मारा, वह इन्द्र को नहीं मार सका।

वृत्रासुर त्रिशूल हाथ में लेकर इन्द्र को मारने के लिए दौड़ा। इन्द्र आदि देवतों ने अपने सब अस्त्र-शस्त्र उसे मारने के लिए छोड़े, पर वृत्रासुर सबको निगल गया। उसका कुछ नहीं बिगड़ा। तब घबराकर सब देवता भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे। भगवान् ने प्रकट होकर कहा—इन्द्र, तुम महात्मा दधीचि ऋषि के पास जाकर उनसे उनकी हड्डियाँ माँगो। वह राजर्षि बड़े परोपकारी और ज्ञानी हैं। नाहीं न करेंगे। अपना शरीर दे देंगे। उन तेजस्वी ऋषि की हड्डियाँ लेकर तुम विश्वकर्मा से उनका वज्र बनवाओ। उसी वज्र से वृत्रासुर मारा जा सकेगा। इन्द्र तुरन्त दधीचि ऋषि के पास गये और अपना मतलब बतलाया। दधीचि ने कहा—यह शरीर तो किसी दिन आपही छूट जायगा, फिर इससे अगर कुछ उपकार किसी का हो जाय तो इससे अच्छी क्या बात होगी? यह कहकर दधीचि ने समाधि लगाई और शरीर छोड़ दिया। इन्द्र ने उनकी हड्डियों का वज्र बनवाया और विष्णु भगवान् के तेज से बलवान् होकर वृत्रासुर पर चढ़ाई की। दोनों में बड़ी करारी लड़ाई
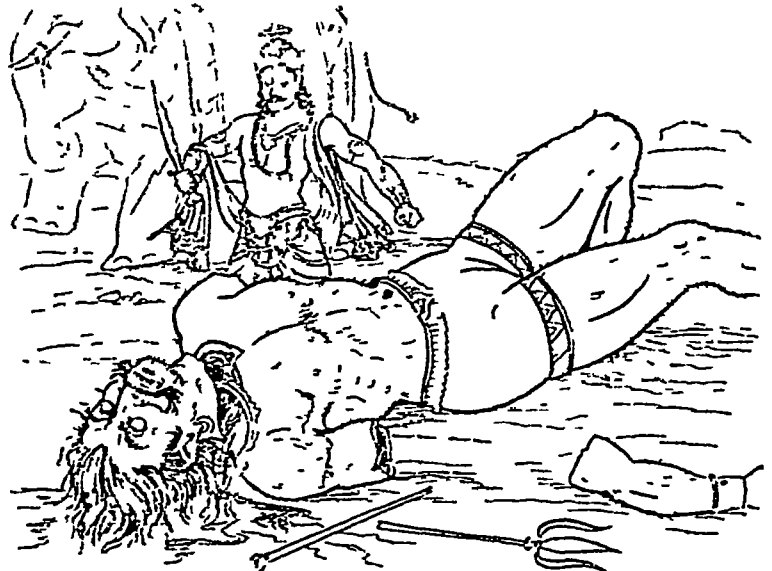
हुई और अन्त को इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा। दानव, राक्षस, दैत्य आदि भगवान् को नहीं भजते; लेकिन वृत्रासुर ज्ञानी और भगवान् का भक्त था। इसका कारण यह था कि वह पहले जन्म में शूरसेन (मथुरा) देश का चित्रकेतु नामक राजा था। उसके हजारों रानियाँ थीं, पर किसी भी रानी के लड़की या लड़का, कोई भी सन्तान नहीं हुई। इससे राजा बड़ा दुखी रहा करता था। एक दिन अंगिरा ऋषि घूमते-फिरते राजमहल में आ पहुँचे। राजाने उनकी बड़ी आवभगत और पूजा की। मुनि ने राजा को उदास देखा तो उनसे इसका कारण पूछा। राजा ने सन्तान न होने की बात कहकर अपना दुःख प्रकट किया और मुनि से प्रार्थना की कि ऐसा कोई उपाय कीजिए कि मेरे सन्तान हो। ब्रह्माजी के बेटे अंगिरा ऋषि ने यज्ञ किया और होम की आहुतियों से बची हुई खीर रानी को खाने के लिए दी। खीर खाने से रानी के कुछ दिनों बाद एक बड़ा सुन्दर लड़का पैदा हुआ। रनिवास में और सारे देश में उत्सव होने लगे। खूब खुशी मनाई जाने लगी। लड़का बड़ी रानी के हुआ था। राजा उसी का आदर-प्यार अधिक करने लगे। इससे और रानियाँ जल उठीं। सौतिया डाह ने उनको अंधा बना दिया। उन्होंने आपस में राजकुमार को मार डालने की सलाह की। एक दिन उन्होंने लड़के को जहर दे दिया। लड़का मर गया। सारे महल में कोहराम मच गया। राजा सिर पीटकर रोने लगे। रानियाँ भी दिखावे के लिए छाती पीट-पीटकर बड़ी रानी के साथ विलाप करने लगीं। इसी समय अंगिरा ऋषि नारद जी के साथ चित्रकेतु के महल में आये। उन्होंने कहा—महाराज, होनी को कोई टाल नहीं सकता। आप शोक न करके धीरज धरिए। तब भी राजा को धीरज नहीं हुआ। तब अंगिरा ने अपने तपोबल के
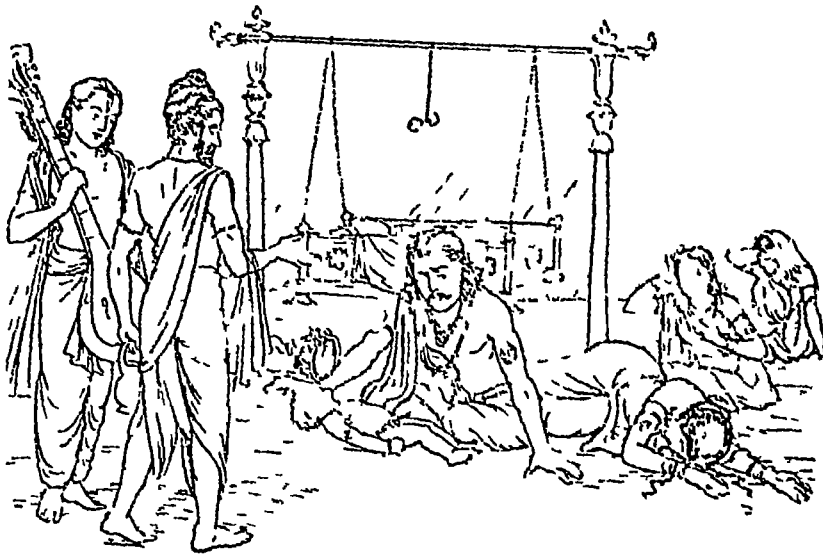
वाराह भगवान् और हिरण्याक्ष

प्रभाव से उस बालक को जिला दिया। बालक उठ बैठा और माता-पिता को रोते देखकर उसने कहा—तुम क्यों रोते हो? कौन किसका बेटा है और कौन किसका बाप? सब अपने कर्मों का फल भोगने के लिए संसार में आते हैं और समय पूरा हो जाने पर मर जाते हैं। जैसे सराय में लोग अलग-अलग जगहों से आकर जमा होते हैं और सवेरा होते ही अपनी-अपनी राह लेते हैं वैसे ही इस दुनिया में जीव आते और चले जाते हैं। सैकड़ों दफे मैं तुम्हारा बाप हो चुका हूँ और सैकड़ों दफे तुम मेरे बाप हो चुके हो। इसलिए मेरे न रहने पर तुम शोक न करो।

इतना कहकर वह लड़का फिर मर गया। अब राजा और रानी को ज्ञान होगया और उन्होंने शोक करना छोड दिया। राजा चित्रकेतु ने सात दिन और रात निर्जल रहकर एक मंत्र का जप किया। यह मंत्र उन्हें नारदजी ने बताया था। तब उन्हें भगवान् शेषनाग के दर्शन हुए। शेषजी ने राजा को ज्ञान का उपदेश किया। मंत्र के जप से राजा विद्याधरों (एक तरह के देवताओं) का राजा हो गया। वह विमान पर बैठकर आकाश के रास्ते सब लोकों में घूमने लगा। घूमते-घूमते वह कैलाश पहाड पर (तिब्बत) पहुँचा। वहाँ भगवान् शंकर देवी पार्वती को अपनी गोद में बिठाये ऋषि-मुनियों को ज्ञान का उपदेश कर रहे थे। चित्रकेतु ने जोर से हँसकर कहा—यह जगत् के गुरु कहलाते हैं, फिर भी निर्लज्ज होकर भरी सभा में स्त्री को गोद में लिये बैठे हैं। चित्रकेतु को विद्याधर हो जाने के कारण अहंकार होगया था। इसीसे उसने भगवान् शंकर का यों अपमान किया। शंकर तो हँसकर चुप रहे, पर पार्वतीजी को क्रोध हो आया। उन्होंने कहा—यह मूर्ख देव-देव महादेव का अपमान करता है, इसलिए राक्षस हो जाय। पार्वती का शाप सुनकर चित्रकेतु उनके पैरों पर गिर पडा। शंकर और पार्वती ने प्रसन्न होकर उसे विदा किया। पर देवी पार्वती का शाप टल नहीं सकता था। वही चित्रकेतु वृत्रासुर हुआ और इन्द्र के हाथ से मरकर मुक्त हो गया।

मनोहर—पिताजी, यह कथा तो आपने बडी विचित्र सुनाई। मुझे बहुत पसंद आई। अब आगे की और कथाएँ भी कहिए।

बनारसी—हाँ बेटा, सुनो। अब मैं तुमको नृसिंह अवतार की कथा सुनाता हूँ, जो इससे भी अच्छी है। पहले कह आये हैं कि सनकादिक ऋषियों के शाप से भगवान् विष्णु के पार्षद जय-विजय हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नाम के राक्षस हुए थे। उनमें से हिरण्याक्ष को भगवान् ने वराह अवतार लेकर मारा। यह कथा भी तुम सुन चुके हो। अब हिरण्यकशिपु के मारे जाने का

हाल सुनो। अपने भाई हिरण्याक्ष के मारे जाने पर हिरण्यकशिपु विष्णु का घोर शत्रु बन गया। उसने विष्णु को जीतने के लिए घोर तपस्या शुरू कर दी। उसकी तपस्या से और बढ़ते हुए तेज से तीनो लोकों के प्राणी घबरा उठे। तब ब्रह्माजी ने प्रकट होकर उससे वरदान माँगने के लिए कहा। हिरण्यकशिपु ने यह वरदान माँगा कि मुझे अमर बना दीजिए, यानी मैं कभी मरूँ ही नहीं। ब्रह्माजीने कहा—अमर तो सिवा देवतों के और कोई हो नहीं सकता; तुम दूसरा कोई वरदान माँगो। तब असुर ने कहा—अच्छा। यह वरदान दीजिए कि आपकी बनाई सृष्टि का कोई जीव मुझे न मार सके। मैं न शस्त्र से मरूँ, न दिन को मरूँ, न रात को मरूँ, न घर के भीतर मरूँ, न बाहर मरूँ,

न पृथ्वी पर मरूँ और न आकाश में। ब्रह्माजी मुँहमाँगा वर देकर चले गये। अब हिरण्यकशिपु निडर होकर देवतों को सताने लगा। देवता उसके डर से स्वर्ग छोड़कर भाग गये। हिरण्यकशिपु के चार लड़के थे। उनमें प्रह्लाद सबसे छोटे थे। प्रह्लाद जन्म से ही भगवान् के भक्त थे। इसका कारण यह था कि हिरण्यकशिपु जब तप करने वन गया, तब मौका पाकर इन्द्र उसके घर आये और हिरण्यकशिपु की रानी को हर ले चले। रानी को जब वह ले चले, तब नारदजी राह में मिले। उन्होंने इन्द्र से कहा—इस औरत ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, इसे छोड़ दो। इन्द्र ने कहा—इसके पेट में बालक है, उसे मैं मार डालूँगा, इस स्त्री से नहीं बोलूँगा। नारद ने कहा—बालक से तुम मत डरो। वह तुम्हारी ही तरह भगवान् का भक्त होगा। तब इन्द्र ने हिरण्यकशिपु की स्त्री को छोड़ दिया। नारद उसे लेकर अपने आश्रम में गये। वहाँ उसे ज्ञान का—भगवान् के भजन का उपदेश करने लगे। गर्भ में उसे सुनकर प्रह्लाद ज्ञानी और भक्त हो गये।

प्रह्लाद जब पाँच वर्ष के हुए, तब पिता ने उनको पढ़ने के लिए पाठशाला भेज दिया।

ह्लाद वहाँ बैठकर राम-राम जपने लगे। कुछ दिन बाद पिता ने उनको बुलाकर पूछा—बेटा, ुमने अब तक क्या पढ़ा? मुझे सुनाओ। प्रह्लाद ने कहा—पिताजी, मैंने तो यही सीखा है कि ंसार में राम-नाम से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है। यह सुनते ही वह असुर आगबबूला हो गया। सने समझा, शुक्राचार्य के बेटे शंडामर्का ेरा अन्न खाते हैं, लेकिन ब्राह्मण होने के ारण देवतों का पक्ष लेकर विष्णु की क्ति पढ़ाते हैं।

हिरण्यकशिपु ने गुरु शुक्राचार्य के ेटों को बुलाकर बहुत डाँटा। तब उन्होंने हा—महाराज, हमतो इसे राजनीति ढ़ाते हैं। मालूम नहीं, यह बालक कहाँ े ये बातें सीख आया है? आपके राज्य ें, हमारी पाठशाला में राम का नाम भी ोई नहीं लेता। हिरण्यकशिपु ने कहा—अच्छी बात है। इसे फिर ले जाओ और अच्छी तरह चौकसी रखकर पढ़ाओ-लिखाओ। यह मेरे शत्रु-पक्ष के किसी आदमी से न मिलने पावे। गुरु-पुत्र फिर प्रह्लाद को लेजाकर पढ़ाने-लिखाने लगे। मगर प्रह्लाद रामभजन के सिवा और कुछ न करते थे। ह अपने साथी बालकों को भी राम-नाम का उपदेश देने लगे। अब तो गुरु-पुत्र और भी बराये। वह प्रह्लाद पर और भी कड़ाई रखने लगे। इसी बीच में हिरण्यकशिपु ने फिर प्रह्लाद ो बुलाकर, गोद में बिठाकर पहले ही की तरह पूछा कि तुमने क्या सीखा है? प्रह्लाद ने फिर ही उत्तर दिया कि मैंने तो यही सीखा है कि राम-नाम के सिवा और सब झूठा है।

अब की हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद से धरती पर पटक दिया और अपने सेवक असुरों से कहा—इस दुष्ट को जिस तरह बने, मार डालो। यह मेरे शत्रु का भक्त है और इससे मुझे अपने प्राणों का खटका है। असुरों ने प्रह्लाद को आग में डाल दिया। आग बुझ गई। मुद्र में डुबाया; लेकिन वह भगवान् की कृपा से डूबे नहीं। पहाड़ पर से नीचे ढकेल दिया;

पर प्रह्लाद का बालबाँका न हुआ। जहर पिलाया; पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ मस्त हाथी के आगे डाल दिया; वह भी पीछे हटकर भाग खड़ा हुआ। विषधर नाग से कटवाया पर प्रह्लाद नहीं मरे। अब तो हिरण्यकशिपु बहुत घबराया और नंगी तलवार लेकर प्रह्लाद का सिर काटने को तैयार हुआ। बोला—ले, अब मैं खुद तेरा सिर धड़ से अलग किये देता हूँ। तेरा राम कहाँ है, आकर बचावे। प्रह्लाद ने कहा—पिताजी, मेरा राम सब में रम रहा है, तुमको देख क्यों नहीं पडता? हिरण्यकशिपु ने सभाभवन का एक खंभा दिखाकर कहा—क्या इसमें भी है? प्रह्लाद ने कहा—अवश्य, इसमें भी है। हिरण्यकशिपु ने बड़े जोर से एक घूँसा खंभे में मारकर कहा—है तो मेरे सामने आवे। घूँसा पड़ने के साथ ही बड़े जोर से गरजते हुए नरसिंह भगवान् अपने भक्त को बचाने के लिए उस खंभे से प्रकट हो गये। उनका ऊपर का आधा हिस्सा सिंह का और नीचे का आधा हिस्सा मनुष्य का शरीर था। उनको देखते ही हिरण्यकशिपु ढाल-तलवार लेकर उन पर वार करने के लिए पैंतरे बदलने लगा। भगवान् ने झपटकर वैसे ही उसको दबोच लिया, जैसे अपने शिकार को शेर दबोच लेता है। नरसिंहजी ने उसे अपनी जाँघों पर लिटाकर तेज़ नाखूनों से उसका पेट फाड डाला। इस तरह वह उत्पाती असुर मारा गया। उस समय संध्याकाल था, जो न दिन में है न रात में।

नाखून कोई शस्त्र नहीं है। देहली पर भगवान् बैठे थे, वह न घरके भीतर है और न बाहर। भगवान् ने उसे जाँघों पर लिटाकर मारा; क्योंकि वह न पृथ्वी है, न आकाश। नरसिंहजी-जैसा कोई जीव भी ब्रह्मा की सृष्टि में नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान को सत्य करके भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की।

मनोहर—पिताजी यह कथा सुनकर मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। अच्छा अब आगे की और कथा कहिए। इन कथाओं में तो ऐसी नई-नई बातें हैं कि मेरा जी ही नहीं भरता।

भगवान् नृसिंह का प्रकट होना

बनारसी—भगवान् अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। इसी विषय की एक और कथा मैं तुमको सुनाता हूँ। इसका नाम गजेंद्र-मोक्ष है। त्रिकूट पहाड़ पर एक बड़ी भारी झील थी। उसका पानी बहुत मीठा और साफ़ व ठंडा था। इसी पहाड़ के घने जंगल में एक गजराज रहता था। गर्मियों के दिन थे। गर्मी से घबराकर वह हाथी अपनी हथनियों और साथी हाथियों के साथ उसी झील के पास आया। वह उसके भीतर घुसकर हथनियों के साथ जल-विहार करने लगा। उस झील के भीतर एक बड़ा भारी और महाबली ग्राह (मगर) रहता था। उसने आकर अचानक गज का पैर पकड़ लिया। अब दोनों में खींचतान होने लगी। गज अपने को बाहर ले जाना चाहता था और ग्राह उसे पानी के भीतर खींच लाना चाहता था। यह युद्ध लगातार बहुत समय तक होता रहा। अन्त को गजराज का बल और उत्साह घट चला। जब गजराज ने अपने

बचने का कोई उपाय न देखा, तब वह भगवान् का स्मरण कर अपने मन में उनकी स्तुति करने लगा। अपने भक्त गजराज की पुकार सुनकर भगवान् उसे उबारने के लिए नंगे पैरों ही दौड़ पड़े। जल्दी से गरुड़ ने आकर भगवान् को अपने कंधे पर बिठा लिया। दूर से भगवान् को आते देखकर गजराज के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसने झील से एक कमल का फूल अपनी सूँड़ में लेकर भगवान् को अर्पण किया। भगवान् अपने भक्त गजराज का कष्ट न देख सके। राह में ही गरुड़ की पीठ से फाँद पड़े और झपटकर झटपट गजराज की सूँड़ पकड़कर उसे सरोवर के बाहर

निकाल लिया। ग्राह ने फिर भी उसका पैर न छोड़ा। तब हरि ने अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का सिर काट डाला। देवता लोग भगवान् पर फूल बरसाने और हर्ष से नगाड़े बजाने लगे।

मनोहर—पिताजी, एक हाथी को इतना ज्ञान कैसे हुआ कि वह भगवान् की स्तुति कर सका?

बनारसी—बेटा, तुम्हारा यह प्रश्न सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। सुनो, वह गजराज और ग्राह, दोनों शाप से इस योनि में पैदा हुए थे। ग्राह तो पहले जन्म में हूहू नाम का गन्धर्व था। देवल ऋषि के शाप से उसे यह योनि मिली थी। चक्र से सिर कटते ही शाप से छुटकारा पाकर वह स्वर्गलोक को चला गया। गज पहले जन्म में पांडयदेश का राजा था। उसका नाम इंद्रद्युम्न था। राजा बड़ा ज्ञानी और भगवान् का भक्त था। वह कुलाचल पहाड़ पर आश्रम बनाकर, उसमें रहकर भगवान् की आराधना करता था। एक दिन मौनव्रत धारण किये राजा समाधि लगाये हरि का ध्यान कर रहा था। इतने में अगस्त्य ऋषि वहाँ आये; पर समाधि लगाये होने के कारण राजा को उनके आने की खबर नहीं हुई। राजा को चुपचाप बैठे देखकर अगस्त्य ने अपना अपमान समझा। तब वह यह शाप देकर चले गये कि हे घमंडी राजा, तू हाथी हो जा। भगवान् की भक्ति के प्रभाव से गजयोनि में भी राजा को ज्ञान बना हुआ था। इसी से वह स्तुति कर सके। साधारण हाथी को इतना ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

मनोहर—पिताजी, भगवान् के किसी और अवतार की कथा सुनाइए। मैं इन कथाओं को याद करता जाता हूँ।

बनारसी—अच्छी बात है। अब वामन अवतार की कथा सुनो। राजा बलि प्रह्लाद के पोते थे। उनके गुरु शुक्राचार्य ने उनसे एक यज्ञ कराया, जिसके प्रभाव से राजा बलि की शक्ति और बल बहुत बढ़ गया। राजा बलि ने देवतों के राजा इंद्र पर चढ़ाई की और उनको हराकर स्वर्ग का राज्य छीन लिया। तब सब देवता हारि भगवान् की शरण में गये। भगवान् ने कहा—देखो, समय बड़ा प्रबल है। आजकल असुरों के अभ्युदय का समय है, इसीलिए तुम लोग उनसे हार गये। अब तुम एक काम करो। जब तक तुम्हारे अच्छे दिन नहीं आते, तबतक के लिए जाकर असुरों से संधि (मेल) कर लो। यह भी राजनीति की एक चालाकी है। इस समय असुर जिन शर्तों पर सुलह करना चाहें, उन सबको तुम मान लेना। तुम जाकर असुरों से समुद्र को मथने का प्रस्ताव करो। समुद्र के मथने से अमृत निकलेगा। अमृत पीने से मृत्यु नहीं होती। वह अमृत तुमको ही मिलेगा। मैं ऐसा उपाय करूँगा कि असुर अमृत की एक बूँद भी

न पा सकेंगे। तुम अमर होकर असुरों को हरा दोगे और जब गुरु शुक्राचार्य असुरों से नाराज हो जायेंगे, तब तुम उनसे स्वर्ग भी छीन लोगे।

भगवान् की आज्ञा के अनुसार सब देवता राजा बलि की सभा में गये। सब निहत्थे थे, इसलिए असुरों ने समझ लिया कि ये लड़ने नहीं आये हैं। इन्द्र ने जाकर राजा बलि से कहा—देखो, हम तुम भाई-भाई हैं, इसलिए आपस में लड़ना ठीक नहीं बल्कि आओ। हम तुम मिलकर क्षीर-सागर को मथें। उससे अमृत निकलेगा। वह अमृत पीकर हम-तुम दोनों अमर हो जायेंगे। सब दैत्य इन्द्र की बातों में आ गये। उन्होंने अमृत निकालने की सलाह को बहुत पसन्द किया। देवता और दैत्य, दोनों ने मथानी बनाने के लिए मंदराचल पहाड़ को उठाया और उसे क्षीर-सागर के किनारे ले चले। लेकिन उस भारी पहाड़ को वहाँ तक न ले जा सके। पहाड़ रास्ते में ही गिर पड़ा और उससे कुचलकर कई दैत्य मर गये। तब विष्णु भगवान् ने प्रकट होकर उस
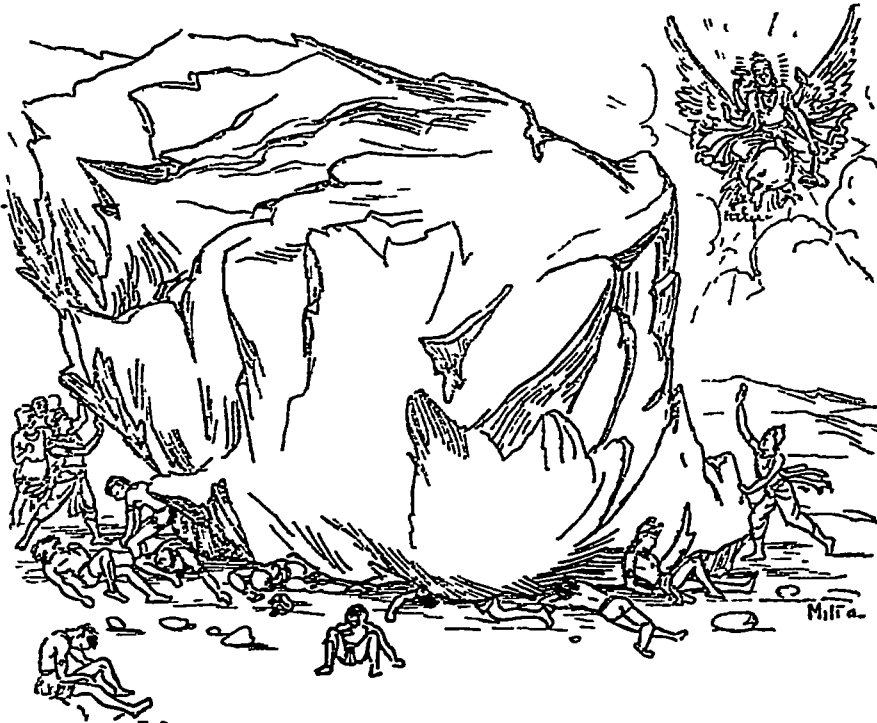
पहाड़ को गरुड़ की पीठ पर रख लिया और समुद्र के किनारे तक पहुँचा दिया। इसके बाद मथानी में लपेटने की रस्सी बनने के लिए उन्होंने नागराज वासुकि को राजी किया। उसे भी अमृत पिलाने का वादा किया। समुद्र में मंदराचल को डालकर देवता-दैत्य वासुकि के शरीर को दोनो ओर से पकड़कर समुद्र को मथने लगे। लेकिन नीचे कोई आधार न रहने के कारण

वह पहाड़ नीचे धँसने लगा। तब भगवान् विष्णु ने गुप्त रूप से कछुए का रूप रखकर पहाड़ को अपनी पीठ के सहारे रोक लिया। तब भी काम ठीक न हुआ। पहाड़ ऊपर दबाव न होने के कारण डगमगाने लगा। तब भगवान् ने बहुत बड़ा रूप रखकर ऊपर से पहाड़ को दबाया। अब समुद्र मथा जाने लगा। फिर भी कुछ फल न हुआ। भगवान् ने देखा, देवतों और दत्यों में इतना बल नहीं है कि वे समुद्र को अच्छी तरह मथ सकें। तब भगवान् नारायण ने सबको हटा दिया। वह आप ही वासुकि के मुख और पूँछ को दोनों हाथों से पकड़कर जोर से समुद्र को मथने लगे।

सब से पहले समुद्र के भीतर से हलाहल नाम का विष निकला। वह विष बड़ा भयानक था। उससे तीनों लोक जलने लगे। तब भगवान् की सलाह से देवतों ने शंकर से उसके पीने की प्रार्थना की। भोलानाथ ने परोपकार के लिए वह विष हथेली में लेकर पी लिया। वह विष भगवान् शंकर ने अपने गले में ही रोक लिया, जिससे वह नीलकंठ हो गये। शंकर की उँगलियों की सन्धियों से जो विष गिर पड़ा, उसे साँप, बिच्छू आदि ने ले लिया। फिर समुद्र को मथने से कामधेनु निकली। उसे ऋषियों ने ले लिया। फिर समुद्र से सफेद रंग का उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा

निकला। इसके बाद समुद्र से चार दाँतोंवाला, सफेद रंग का ऐरावत हाथी निकला। ऐरावत के साथ ही सात और दिग्गज और उनकी हथिनियाँ निकलीं। उच्चैःश्रवा घोड़ा और ऐरावत हाथी पीछे इन्द्र को मिला। फिर समुद्र से कौस्तुभ नाम की मणि निकली। उसे भगवान् विष्णु ने ले लिया। फिर महासागर से कल्पवृक्ष निकला। कल्पवृक्ष स्वर्ग में है। उससे जो कुछ माँगा जाय, वही पदार्थ मिलता है। इसके बाद अप्सराएँ प्रकट हुईं। ये सब स्वर्ग में रहती हैं। इन सब रत्नों के बाद भगवती लक्ष्मी निकलीं। उन्होंने विष्णु भगवान् को अपना पति बनाया। फिर जब

समुद्र मथा गया तो उससे भगवान् के अवतार धन्वन्तरि हाथ में अमृत का कलश लिये निकले। उनको देखते ही लोभी असुर दौड़ पडे और उन्होंने अमृत का कलश धन्वन्तरि के हाथ से छीन लिया। अब सुर और असुर आपस में ही झगडने लगे, क्योंकि उनमें से हर एक पहले अमृत पीना चाहता था।

भगवान ने देखा, काम बिगड़ा जा रहा है। देवता यों ही रह जायेंगे और दुष्ट असुर अमृत पीकर अमर हो जायेंगे। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए कि असुर अमृत न पी सकें। यह सोचकर भगवान् एक परम सुन्दरी स्त्री का रूप रखकर वहीं प्रकट हुए। उस मोहिनी रूप को देखकर सब असुर मोहित हो गये। उन्होंने आकर मोहिनी को घेर लिया और बोले—सुन्दरी, हम लोगों में अमृत के लिए झगडा हो रहा है। तुम अमृत हम लोगों में बाँट दो। भगवान् तो यह चाहते ही थे। उन्होंने कहा—मैं अमृत बाँट दूँगी। लेकिन मेरी शर्त यह है कि मैं जो कुछ करूँगी, वह तुम को मानना पड़ेगा। असुर इस पर राजी हो गये। भगवान् ने सब असुरों और देवतों को अलग-अलग बिठलाया। फिर उनके बीच में असुरों की ओर मुख और देवतों की ओर पीठ करके खड़े हो गये। फिर पिछले पैरों हटते-हटते देवतों के पास पहुँच गये और उनको अमृत पिलाने लगे। राहु नाम का असुर देवतों के बीच में भेस बदलकर बैठ गया था। उसको जब भगवान् ने अमृत पिलाया, तो सूर्य और चन्द्रमा ने इशारे से बतला दिया कि यह तो असुर है! भगवान ने उसी समय चक्र से उसका सिर काट डाला। लेकिन अमृत गले में उतर

जाने के कारण वह मरा नहीं। सिर राहु नाम का ग्रह और धड़ केतु नाम का ग्रह हुआ। उसी बैर को याद करके ग्रहण के दिन राहु, सूर्य और चन्द्रमा को निगलने दौड़ता है।

देवतों को सब अमृत पिलाकर मोहिनी-रूप भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। असुरों ने चकमा खाया। इसलिए वे क्रोधित होकर देवतों से भिड़ गये। उस समय देवासुर नाम का बड़ा घोर संग्राम हुआ। अमृत पीकर इन्द्र की शक्ति और उत्साह बढ़ गया था। उन्होंने वज्र से राजा बलि का सिर काट डाला। असुरों की सेना में हाहाकार मच गया। शुक्राचार्य मृतसंजीवनी विद्या जानते हैं। मुर्दे को जिला सकते हैं। उन्होंने बलि को फिर जिला दिया। इसके बाद शुक्राचार्य ने आशीर्वाद देकर राजा बलि को इन्द्र पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। अब की राजा बलि ने फिर इन्द्र को जीत लिया। सब देवता स्वर्ग से भागकर इधर-उधर छिपकर रहने लगे। देवतों की माता अदिति से अपने पुत्रों की यह दुर्दशा नहीं देखी गई। उन्होंने अपने पति कश्यप से कहा—भगवन्, मेरी सौत दिति की सन्तान असुरों ने मेरे पुत्रों का राज्य छीन लिया है। ऐसा उपाय बताइए, जिससे मेरे पुत्र देवता फिर अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकें। कश्यप बड़े असमंजस में पड़ गये। देवता और दैत्य दोनों ही उनकी सन्तान थे। वह किसी का अनिष्ट नहीं चाहते थे, फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी पतिव्रता अदिति की प्रसन्नता के लिए उनको पयोव्रत नाम का व्रत बतलाया। अदिति ने बारह दिन तक वह कठिन व्रत किया। उस व्रत के प्रभाव से भगवान् उनके गर्भ से उत्पन्न हुए। भगवान् का शरीर बहुत छोटा था, इसी से वामन कहलाये। वामनजी का जनेऊ खुद कश्यपजी ने किया। जनेऊ में बालक भिक्षा माँगता है। भगवान् वामन अपना मतलब पूरा करने के विचार से भिक्षा माँगने के लिए राजा बलि के पास गये।

नर्मदा नदी के उत्तर तट पर राजा बलि उस समय यज्ञ कर रहे थे। वामनजी जब उनके पास पहुँचे तो उनके तेज से सबकी आँखें चौंधिया गईं। राजा बलि ने उनको आदर से बिठाया और पूजा की। फिर कहा—ब्रह्मचारी जी, कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? वामनजी ने कहा—मैं कुछ माँगने आया हूँ। अगर तुम देने का वचन दो तो माँगूँ। बलि ने हँसकर कहा—मैं तीन लोक का मालिक हूँ। मुझसे वचन लेने की क्या जरूरत है? आप जो माँगेंगे, वही मैं दूँगा। शुक्राचार्य ने बलि को रोका। कहा—इस तरह बिना सोचे-समझे हामी भर लेना मूर्खता है। यह विष्णु हैं, तुम को छलने आये हैं। राजा बलि ने कहा—मैं वचन दे चुका। अगर विष्णु हैं और मुझे छलकर मेरा सारा वैभव ले लेंगे, तो भी कोई हर्ज नहीं। मैं लोकहँसाई से डरता हूँ, गरीबी से नहीं। राजा बलि के वचन सुनकर वामनजी ने उसकी तीन पीढ़ियों का बखान करके उनकी

बड़ी तारीफ की। फिर अन्त में अपने पैरों की नाप से तीन पग पृथ्वी उससे माँगी। बलि ने हँस-कर कहा—आप बातें तो बड़े बूढ़ों की सी करते हैं, पर जान पड़ता है, आपकी बुद्धि भी शरीर के ही समान छोटी है। आप मुझसे पृथ्वी का एक द्वीप माँगें तो मैं खुशी से दे सकता हूँ। लेकिन आप मुझ त्रिलोकीनाथ को प्रसन्न करके अपने पैरों की नाप से केवल तीन पग पृथ्वी माँगते हैं। वामनजी ने कहा—राजन्, हम ब्रह्मचारी जरूरत भर की ही भिक्षा माँगते हैं। जो मैंने माँगा है, वही मुझे चाहिए।

राजा बलि ने तीन पग पृथ्वी देना स्वीकार करके हाथ में जल लेकर संकल्प किया। तब भगवान् ने एकाएक अपने शरीर को बढ़ाना शुरू कर दिया। वह विराट् पुरुष बन गये, जिनके शरीर में तीनों लोक और चौदह भुवन हैं। भगवान् ने एक पग में सारी पृथ्वी नाप ली, दूसरे पग से ऊपर के सब लोक नाप लिये। अब तीसरे पग के लिए कोई स्थान नहीं बचा। तब वामनजी ने बलि से कहा—घमंडी राजा, अब तीसरे पग के लिए स्थान बता। राजा बलि ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभु, तीसरा पग मेरी पीठ नापकर पूरा कीजिए। वामनजी ने कहा—शाबास! राजा बलि, तुम्हारी धर्म में अटल बुद्धि देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ। मैं अपने भक्तों का धन और ऐश्वर्य इसीलिए हर लेता हूँ कि उन का मन मुझमें अच्छी तरह लग जाय; क्योंकि दुःख-कष्ट में ही मनुष्य मुझे भजते हैं। लक्ष्मी और ऐश्वर्य तो मनुष्य को अन्धा बना देता है। तुम अपने साथी असुरों के साथ पृथ्वी के नीचे सुतल लोक को जाओ। वहाँ रह-कर तुम इन्द्र से भी अधिक ऐश्वर्य भोगोगे। मैं स्वयं तुम्हारे द्वार पर रहकर तुम्हारी रक्षा करूँगा। आगे के सावर्णि मन्वन्तर में तुम इन्द्र पद पाकर स्वर्ग का राज्य करोगे।

भगवान् की आज्ञा के अनुसार राजा बलि उनको प्रणाम करके सुतल लोक को चले गये।

वामनजी ने इस तरह त्रिलोकी का राज्य बलि से छीनकर अपने भाई इन्द्र को दिया। अब मत्स्य अवतार की कथा सुनो।

जब पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग, ये तीन लोक जल में डूब जाते हैं, तब छोटा प्रलय होता है। उस समय ब्रह्माजी शयन करते हैं। ऐसे ही पिछले प्रलय में सो रहे ब्रह्मा के मुख से हयग्रीव नाम का दैत्य वेदों को निकाल ले गया था। वह दैत्य समुद्र में रहता था। उसे मारकर वेदों का उद्धार करने के लिए भगवान् ने मच्छ का रूप रक्खा था। इसकी कथा यों है— सत्यव्रत नाम के एक महात्मा राजा प्रलय के कुछ समय पहले कृतमाला नदी के जल में स्नान करके तर्पण कर रहे थे। एकाएक एक छोटी सी मछली उनके हाथ के पानी में देख पड़ी। राजा ने उस मछली को पानी में डाल दिया। मछली ने कहा—राजा, मैं छोटी और निर्बल हूँ। बड़ी मछलियाँ मुझे यहाँ खा जायँगी। मैं शरणागत हूँ; मेरी रक्षा करो। राजा को दया आ गई। वह उस मछली को अपने कमंडल के पानी में डालकर आश्रम में ले आये। एक ही रात में वह मछली बढ़ गई। उसने राजा से कहा—इस

लोटे में मुझे कष्ट हो रहा है, किसी बड़े स्थान में मुझे रक्खो। राजा ने उसे और बड़े बरतन में डाल दिया। दो घड़ी में ही मछली तीन हाथ बढ़ गई। उसने फिर बड़ी जगह के लिए प्रार्थना की। राजा ने उसे ले जाकर सरोवर में डाल दिया। मछली थोड़े ही समय में फिर बढ़ गई। फिर उसके प्रार्थना करने पर राजा ने और बड़ी झील में डाल दिया। वहाँ भी उसने बढ़कर वैसी ही प्रार्थना फिर की। तब राजा को बड़ा अचरज हुआ। राजा ने उसे ले जाकर सागर में डाला। तब वह बोली—यहाँ मुझे मुझसे बली जीव खा जायँगे; यहाँ न डालिए। राजा ने तब कहा—तुम कौन हो? इस तरह मुझे क्यों हैरान कर रहे हो? आप तो मुझे साक्षात् भगवान् का रूप जान पड़ते हैं। साधारण मछली में यह बात नहीं हो सकती। तब मत्स्यरूप भगवान् ने कहा—राजा, तुमने ठीक पहचाना। आज के सातवें दिन तीनों लोक प्रलय के जल में डूब जायँगे। उस समय तुम्हारे पास एक नाव बहती हुई आवेगी। तुम सब अन्न, बीज और सब तरह के प्राणियों के जोड़े लेकर उस पर बैठ जाना। सप्तऋषि उस नाव पर पहले ही से बैठे होंगे। वह नाव प्रलय के सागर में प्रलय के अन्त तक बहती रहेगी। सप्तऋषियों के तेज के उजाले से तुम्हें उस घने अन्धकार में भी कुछ कष्ट न होगा। प्रचण्ड आँधी के थपेड़ों से उस नाव को बचाने के लिए

मै तुम्हारे आगे प्रकट होऊँगा। तुम वासुकि नाग की रस्सी से उस नाव को मेरे सींग में बाँध देना। इतना कहकर मत्स्य भगवान् सागर के जल में गायब हो गए। भगवान् ने राजा से जो कुछ कहा था, वही सब हुआ। सत्यव्रत जब उस नाव पर बैठकर प्रलयसागर में घूमते रहे, तब उसी समय में मत्स्य भगवान् ने उनको तत्त्वज्ञान का उपदेश किया। हयग्रीव दैत्य को मारकर वेदों का उद्धार भी किया।

मनोहर—पिताजी, आज अब देर हो गई है। भोजन का समय आ गया। मुझे स्कूल भी जाना है। कल फिर सुनूँगा।

बनारसी—अच्छी बात है।

दूसरे दिन फिर ठीक समय पर बनारसी ने मनोहर को बुलाकर कथा शुरू की। बनारसी ने कहा—आज मै तुमको राजा अम्बरीप, राजा हरिश्चन्द्र, भगवान् रामचन्द्र और सहस्रबाहु अर्जुन की कथाएँ सुनाऊँगा। पहले अम्बरीप की कथा सुनो। सूर्यवंशी राजा नाभाग के पुत्र अम्बरीप बड़े प्रतापी और भगवान् के भक्त थे। वह ब्राह्मणों और भक्तों को बहुत मानते थे। अम्बरीप ने एक साल, साल भर की एकादशियों को व्रत करने का नियम लिया। कातिक सुदी एकादशी को यह व्रत समाप्त होने को था। राजा ने मथुरा में जाकर निर्जला व्रत किया। द्वादशी के दिन जब राजा कुछ खाकर व्रत का पारण करनेवाले थे, उसी समय महातेजस्वी दुर्वासा ऋषि उनके यहाँ आ पहुँचे। राजा ने उनको प्रणाम किया और भोजन करने के लिए प्रार्थना की। दुर्वासा ने कहा—महाराज, मैं दोपहर की सन्ध्या यमुना के किनारे जाकर कर आऊँ, तब भोजन करूँगा। इतना कहकर दुर्वासा नदी के तट पर गये। वहाँ स्नान-ध्यान और पूजा-पाठ में उनको देर लग गई। इधर राजा से ब्राह्मणों ने कहा—महाराज, आज द्वादशी थोड़ी ही है। अब केवल एक घड़ी द्वादशी बाकी है। इस समय के भीतर ही आपको पारण कर लेना चाहिए; नहीं तो तेरस लग जाने पर पारण करने से व्रत निष्फल हो जायगा। शास्त्र में ऐसा ही लिखा है। राजा बड़े धर्मसंकट में पड़े। अगर पारण नहीं करते और दुर्वासा के आने की राह देखते हैं तो एकादशी का व्रत निष्फल हुआ जाता है, और अगर दुर्वासा के आने से पहले ही, उनको भोजन कराये बिना, कुछ खाकर पारण किये लेते हैं तो स्वभाव से ही क्रोधी दुर्वासा ऋषि आग-बबूला होकर शाप दे देंगे। ब्राह्मणों ने राजा को सलाह दी कि अब शालग्राम की मूर्ति को नहलाकर वह चरणामृत आप पी लीजिए; इससे पारण भी हो जायगा और ब्राह्मण-अतिथि को भोजन कराये बिना खा लेने का पाप भी न लगेगा। वेद में लिखा है कि पानी पीना भोजन करने में

दाखिल भी है और नहीं भी है। राजा अम्बरीप ने यही किया। इतने में दुर्वासाजी लौट आये। उनको तपोबल से यह मालूम हो गया कि राजा ने चरणामृत पीकर पारण कर लिया है। बस फिर क्या था? इतना ही उनके आग-बबूला होने के लिए काफी था। उन्होंने राजा को पहले बहुत फटकारा और फिर उन्हें मारने के लिए चुड़ैल पैदा कर दी। वह चुड़ैल राजा को मारने के लिए जब झपटी, तब सुदर्शन चक्र ने अपने तेज से उसे भस्म कर दिया। भगवान् ने अपने भक्त अम्बरीप की रक्षा करने के लिए चक्र को वहाँ तैनात कर रक्खा था। चक्र चुड़ैल को जलाकर ही शान्त नहीं हुआ। वह राजा को सताने का दण्ड देने के लिए दुर्वासा की ओर झपटा। अब दुर्वासा अपने प्राण बचाने के लिए भागे। वह जहाँ जाते थे, वहीं चक्र उनके पीछे जाता था। महर्षि दुर्वासा इन्द्रलोक, यमलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि सभी लोकों में, सभी देवतों के पास अपनी रक्षा की भीख

माँगने के लिए गये। लेकिन सभी ने उनको कोरा जवाब दे दिया। कहा—हम विष्णु भगवान् का अपराध करनेवाले की रक्षा नहीं कर सकते। अन्त को दुर्वासाजी विष्णुलोक को गये। भगवान् ने कहा—विप्रजी, मैं तो अपने भक्तों के वश में हूँ। इस मामले में मैं कुछ नहीं कर सकता। आप राजा अम्बरीप के ही पास जाइए। विवश होकर दुर्वासा ऋषि अम्बरीप की शरण में आये और कहा—मेरा अपराध क्षमा करके चक्र के तेज से मेरी रक्षा कीजिए। राजा के पैरों पर ऋषि गिर पड़े। राजा ने बीच में ही उनको रोककर कहा—प्रभू, आप मेरे पूज्य ब्राह्मण हैं।

मैं आपके चरणों का दास हूँ। यों कहकर राजा ने सुदर्शन चक्र से प्रार्थना की। राजा के कहने से सुदर्शन चक्र ने अपना तेज समेट लिया। दुर्वासा की जान बची और उनका तपोबल का घमंड चूर होगया। अब हरिश्चन्द्र की कथा सुनो।

राजा हरिश्चन्द्र बड़े सत्यवादी थे। उनकी कथा भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। अम्बरीष के ही वंश में आगे चलकर एक राजा त्रिशंकु हुए। त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्र के कोई औलाद न थी, इसलिए राजा ने नारदजी के उपदेश से वरुण देवता की आराधना की और उनसे एक पुत्र माँगा। साथही यह भी प्रतिज्ञा की कि मैं उसी पुत्र की बलि देकर आपकी पूजा और यज्ञ करूँगा। वरुण ने इसे मंजूर कर लिया। वरुण की कृपा से राजा के एक लड़का हुआ। उसी समय वरुण ने आकर यज्ञ करने के लिए राजा से कहा। राजा ने अपनी गरज से बावले होकर प्रतिज्ञा तो कर ली थी, पर उसे पूरा करना बहुत कठिन था। अपने बच्चे को अपने हाथ से कौन मारेगा? राजा ने यह कहकर वरुण को टाल दिया कि अभी यह बलिदान के लायक़ नहीं है; अपवित्र है। दस दिन का हो जाने पर पवित्र होगा, तब यज्ञ करूँगा। दस दिन बाद वरुण ने आकर फिर तगादा किया। अबकी हरिश्चन्द्र ने यह बहाना किया कि दाँत निकल आने पर बच्चा बलिदान के लायक़ शुद्ध होगा—तब देखा जायगा। दाँत निकल चुकने पर वरुण ने फिर आकर पुत्र की बलि माँगी। राजा ने कहा—कुछ दिन और ठहरिए। दूध के दाँत गिरकर जब अनाज के दाँत निकलेंगे, तब बच्चा शुद्ध होगा। इसी तरह जब-जब वरुण आये, तब-तब राजा ने पुत्रस्नेह के कारण मोह में पड़कर उनको टाल दिया। किसी तरह हरिश्चन्द्र के बेटे रोहित को यह हाल मालूम होगया कि वरुण की प्रसन्नता के लिए किसी दिन उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। रोहित शिकार के बहाने धनुष-बाण लेकर पिता से चुराकर वन को भाग गये। इधर यह हुआ, उधर वरुण ने राजा पर क्रोध किया। उनके क्रोध से राजा के जलंधर का रोग होगया। पिता के रोग का हाल जब रोहित ने सुना, तो वह घर को लौटा। रोहित ने अपने बदले यज्ञ में बलिदान देने के लिए और एक मनुष्य मोल ले जाने का इरादा किया। उसे अजीगर्त ऋषि का मँझला बेटा शुनःशेफ मिल गया। विश्वामित्र ने कृपा करके शुनःशेफ को अपना बेटा बना लिया और उसे दो मंत्र बतलाकर कहा—जब यज्ञ में तुम्हारा बलिदान किया जाने लगे, तब तुम इन मंत्रों को पढ़कर वरुण की स्तुति करना। इससे वरुण प्रसन्न हो जायँगे और तुम्हारे प्राण बच आयँगे। बलिदान के समय शुनःशेफ ने ऐसा ही किया। उसके प्राण बच गये। रोहित भी बच गया। राजा हरिश्चन्द्र का रोग भी जाता रहा।

राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा लेने के लिए विश्वामित्र ऋषि ने उनको अनेक प्रकार के कष्ट दिये और कहा, लेकिन राजा हरिश्चन्द्र अपने वचन से नहीं डिगे। यह वृत्तान्त इस प्रकार है कि एक दिन विश्वामित्र ऋषि ने आकर राजा हरिश्चन्द्र से कहा—महाराज, मैंने सपने में देखा है कि आपने अपना सारा राज्य मुझे दान कर दिया है। आप सत्यवादी हैं तो यह राज्य और ऐश्वर्य देकर अपने उस स्वप्न के दान को सत्य कीजिए। राजा ने कहा—इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य क्या होगा? लीजिए यह तख़्त और ताज। आज से आप राजा हुए। विश्वामित्र ने कहा—यह महादान तो आपने दे दिया। अब इसकी दक्षिणा लाइए। इतने बड़े दान की दक्षिणा कम से कम तीस हजार सोने की मोहरें होनी चाहिए। राजा ने कहा—वह भी मैं अपने ख़जाने से मँगाये देता हूँ। ऋषि ने कहा—ख़जाना तो अब मेरा है, आपका कहाँ रहा? अलग से इतनी मोहरें दीजिए। राजा ने तब मुनि की मोहरें चुकाने के लिए काशीपुरी में आकर बीस हजार मोहरों पर अपने पुत्र रोहित और रानी तारामती को बेच डाला। अन्त को दस हजार मोहरों पर अपने को भी एक भंगी के हाथ बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुका दी। रानी एक सेठ की दासी हुई और चक्रवर्ती राजा हरिश्चन्द्र मुर्दे लानेवालों से मसान का कर वसूल करने लगे। फिर भी राजा ने सत्य और धीरज को न छोड़ा। ऋषि ने और भी कठिन परीक्षा लेने के लिए साँप बनकर बाग में रोहित को डस लिया। रानी रोती-बिलखती कुँअर की लाश को अपनी आधी धोती फाड़कर उसमें लपेटकर मसान में जलाने लाई। राजा ने पुत्र की मृत्यु और रानी की यह दशा देखकर भी धीरज नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने धर्म का पालन करने के लिए रानी से मसान का कर माँगा। रानी रोकर अपनी असमर्थता प्रकट करने लगी। परीक्षा की हद होगई। विश्वामित्र ने आकर राजा को गले से लगा लिया और कहा—शाबास राजा, तुम बड़े धर्मात्मा और सत्यवादी हो। यह अपना राज-पाट लो। मैंने तुम्हारी परीक्षा ली और तुम आग में तपाये गये सोने की तरह खरे निकले। जब तक यह पृथ्वी रहेगी, तब तक संसार में तुम्हारा नाम रहेगा। भगवान् विष्णु ने वहीं प्रकट होकर राजा को दर्शन दिये। रोहित भी जी उठा। वह भंगी, जिसने राजा को मोल लिया था, धर्म थे। धर्म ने प्रकट होकर राजा को गले से लगा लिया। आकाश से देवता फूल बरसाने लगे। बेटा मनोहर, सत्य की ऐसी ही महिमा है।

अच्छा, अब मैं तुमको इसी सिलसिले में राजा सगर और भगीरथ की कथा सुनाता हूँ। इसी सूर्यवंश में आगे चलकर सगर नाम के एक बड़े प्रतापी अयोध्या के राजा हुए। यह चक्रवर्ती सम्राट् कहलाये। उनके समय में तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर आदि जिन बाहरी जातियों

ने आर्यावर्त पर हमला किया, उन सबको उन्होंने परास्त किया। राजा सगर के दो रानियाँ थीं। एक से असमंज नाम का एक पुत्र और दूसरी से साठ हजार लडके पैदा हुए। असमंज पहले जन्म के योगी थे। किसी कारण से उनका योग भ्रष्ट हो गया था, इसीसे उन्हें जन्म लेना पड़ा। असमंज दुनिया को छोड़कर भगवान् का भजन करना चाहते थे, इसलिए लड़कपन में ही वह बड़े बड़े उत्पात करने लगे। प्रजा और सगर के और सब जातिवाले असमंज के उत्पातों से ऊब उठे। वह पुरवासियों के लड़कों को पकड़कर सरयू नदी में डुबा देते थे। राजा सगर उलाहना सुनते-सुनते ऊब गये। उन्होंने असमंज को बहुत समझाया-बुझाया; पर उन्होंने एक न सुनी। लाचार होकर राजा सगर ने असमंज को अपने देश से निकाल दिया। असमंज तो यही चाहते थे। वह चुपचाप चल दिये। जाते समय उन्होंने उन लड़कों को, जिन्हें पानी में डुबा दिया था, अपने योगबल से जीता ही लाकर उनके मा-बापों के पास भेज दिया और आप योगाभ्यास करने तपोवन को चले गये। असमंज का यह प्रभाव जब राजा और प्रजा ने देखा, तब असमंज को देश से निकालने का उनको बड़ा पछतावा हुआ। असमंज का पुत्र अंशुमान् बडा सुशील और वीर था। राजा सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया।

मनोहर—अश्वमेध यज्ञ किसे कहते हैं ?

बनारसी—यह यज्ञ इस तरह होता है कि पहले एक बढ़िया घोड़ा छोडा जाता है। उसके माथे पर सोने के पत्र में यज्ञ करनेवाले का नाम और प्रभाव लिखा रहता है और सब राजों को चुनौती दी जाती है कि या तो वे हमारे घोड़े को पकड़कर हमसे लडें और या चुपचाप अधीनता स्वीकार करलें। घोडे के साथ सेना और बड़े-बडे योद्धा होते हैं। इस तरह जब सारी पृथ्वी में घोड़ा अपने मन से घूम आता है और सब राजा अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, तब उसी घोड़े का बलिदान करके यज्ञ किया जाता है। यही अश्वमेध यज्ञ है। इस यज्ञ को बडा बली चक्रवर्ती राजा ही कर सकता है। और सौ यज्ञ ऐसे करने से इन्द्र का पद प्राप्त होता है। इसीलिए इन्द्र किसी को पूरे सौ अश्वमेध यज्ञ नही करने देते थे। अच्छा, अब आगे की कथा सुनो। राजा सगर ने ९९ यज्ञ तो सकुशल पूरे कर लिये, लेकिन जब आखरी यज्ञ शुरू किया, तब इन्द्र ने विघ्न डाला। वह छिपे रहकर घोड़े को चुरा ले गये। तब राजा सगर के साठ हजार लड़के उस घोड़े का पता लगाने के लिए गये; उन्होंने सारी पृथ्वी पर ढूँढा; पर कहीं घोड़ा नहीं मिला। तब वे राजकुमार चारों ओर से पृथ्वी को खोदने लगे। पूर्व और उत्तर के कोने में खोदते-खोदते उस जगह पहुँचे, जहाँ विष्णु के अवतार कपिलदेव जी समाधि लगाये तपस्या कर रहे थे। छली इन्द्र

घोड़े को वहीं छोड़कर आप चले गये थे। राजकुमारों ने समझा, कपिलदेव जी ही घोड़े को चुरा लाये हैं, और अब प्राण बचाने के लिए तपस्या का ढोंग रचकर बैठ गये हैं। यह समझकर वे मूर्ख हल्ला मचाते हुए कपिल जी को मारने दौड़े। कपिलदेव ने आँख खोलकर क्रोध की दृष्टि से जो देखा तो वे ६०,००० राजकुमार वहीं जलकर राख का ढेर हो गये। देर होने पर राजा सगर ने अपने पोते अंशुमान् को राजकुमारों का और घोड़ों का पता लगाने के लिए भेजा। अंशुमान् उसी खुदी हुई पृथ्वी की राह से कपिलदेव के पास पहुँचे। घोड़े को और राजकुमारों के

शरीरों की राख के ढेर को देखते ही बुद्धिमान् अंशुमान् सब समझ गये। उनसे कपिलदेवजी ने कहा—पुत्र, ये तुम्हारे चाचा गंगाजल से ही तरेंगे। इसलिए इनको तारने के लिए तुम गंगा को पृथ्वी पर लाने का उपाय करो और यह यज्ञ का घोड़ा ले जाओ।

यज्ञ का घोड़ा पाकर राजा सगर ने अपना यज्ञ पूरा किया। उसके बाद राजा सगर अन्त समय आने पर स्वर्गवासी हुए। अंशुमान् को अपने पुरखों को तारने की धुन लगी हुई थी।

कपिल मुनि के नेत्र खोलने पर सगर-पुत्रों का भस्म होना

इसलिए वह अपने पुत्र को राज्य देकर तपस्या करने के लिए वन को चले गये। उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ और बीच ही में उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र दिलीप ने भी गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए घोर तप किया; पर वह भी समर्थ नहीं हुए। उनके बाद उनके पुत्र भगीरथ ने भी तप किया। अब की गंगा ने प्रसन्न होकर आकाश से पृथ्वी पर आना स्वीकार किया। उनके वेग से पृथ्वी फट जाती, इसलिए भगीरथ ने महादेवजी की आराधना की कि वह गंगा के वेग को अपने सिर पर रोक लें। शंकर ने प्रसन्न हो इसे स्वीकार कर लिया। गंगाजी आकाश से शिव के सिर पर गिरीं। वहाँ से उनकी धारा अनेक देशों को पवित्र करती हुई कपिलदेव के आश्रम की ओर चली, आगे-आगे भगीरथ का रथ और पीछे-पीछे गंगा की धारा। गंगा ने जाकर राजा सगर के पुत्रों की राख वहा दी। वे तर गये। जहाँ पर गंगा ने राजकुमारों को तारा, वहीं वह सागर से मिली हैं। उसे गंगासागर कहते हैं। वहाँ अब भी मकर-संक्रान्ति को मेला लगता है। अब मैं तुमसे रामचन्द्रजी का चरित्र कहता हूँ; मन लगाकर सुनो।

इसी सूर्यवंश में राजा दशरथ एक बड़े प्रतापी राजा हुए। उनके कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी नाम की तीन पटरानियाँ थीं। पर पुत्र किसी के नहीं हुआ। राजा ने अपने पुरोहित वशिष्ठजी के कहने से ऋष्यशृंग ऋषि को अपने देश में बुला भेजा। उन्होंने राजा को एक यज्ञ कराया। उस यज्ञ के प्रभाव से राजा के चार पुत्र हुए। कौशल्या से रामचन्द्र, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न, और कैकेयी से भरत। रामचन्द्र बड़े प्रतापी और भगवान् का अवतार थे। विश्वामित्र मुनि अपने यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों को मारने के लिए राम और लक्ष्मण को दशरथ से माँग ले गये। उन्होंने उनको बहुत से अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखलाया। राह में गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, जो अपने पति के शाप से पत्थर की शिला बन गई थीं, रामचन्द्र के पैरों की धूल पड़ने से तर गईं। रामचन्द्र ने ताड़का राक्षसी को मारा; मारीच और सुबाहु राक्षसों को मार भगाया। इस तरह राक्षसों को मारकर विश्वामित्र के यज्ञ को पूर्ण कराया। विश्वामित्रजी दोनों भाइयों को मिथिलापुरी में राजा जनक के घर ले गये। जनक के यहाँ शिव का बड़ा भारी धनुष था। बड़े-बड़े वीर उसे उठा भी नहीं सकते थे। राजा जनक ने अपनी परम सुन्दरी कन्या सीता के व्याह के लिए यह प्रण कर रक्खा था कि जो बली वीर इस धनुष को झुकाकर इस पर डोरी चढ़ा देगा, उसी के साथ वह अपनी कन्या का व्याह कर देंगे। यह खबर पाकर बड़े-बड़े बलवान् वीर आये; पर कोई सीता को न पा सका। रामचन्द्र ने अपने गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर उस धनुष को बायें हाथ से उठा लिया और इतने जोर से झुकाया कि

वह ऊँख की तरह बीच से टूट गया। धनुष के टूटने का भयानक शब्द सुनते ही महावीर परशुराम वहाँ पहुँचे। महादेवजी उनके गुरु थे। गुरु के धनुष के टूटने से उन्हें बड़ा क्रोध चढ़ आया। रामचन्द्र से उन्हों ने कहा—अगर तुम बड़े वीर हो तो यह दूसरा नारायण का धनुष मैं तुमको देता हूँ ; इस पर बाण चढ़ाकर दिखाओ। रामचन्द्र ने उस धनुष को भी लेकर आसानी से उस पर डोरी चढ़ा दी। अब परशुराम को विश्वास हो गया कि यह भगवान् के सिवा और कोई नहीं हैं।

उनका गर्व चूर्ण हो गया। वह अपने स्थान को लौट गये। जनक ने अपनी और अपने भाई की चार कन्याओं के साथ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का ब्याह कर दिया। दशरथजी चारों लड़कों को ब्याहकर अयोध्या लौट आये।

दशरथ बूढ़े हो चले थे, इसलिए उन्होंने रामचन्द्र को राजगद्दी देने का विचार किया। पर अपनी दुष्टा दासी मंथरा के बहकाने से दशरथ की प्यारी छोटी रानी कैकेयी ने उसमें विघ्न डाल दिया। किसी समय राजा ने कैकेयी को दो वरदान दिये थे। कैकेयी ने उस समय कुछ न माँगा था और कहा था, जब चाहूँगी, तब माँग लूँगी। इस समय उसने वही दो वरदान माँगे। एक यह

कि राजगद्दी उसके बेटे भरत को दी जाय और दूसरा यह कि रामचन्द्र चौदह वर्ष बन में जाकर रहें। राजा बेहोश होकर गिर पड़े। राम उनको प्राणों से भी प्रिय थे। राजा ने, वशिष्ठ ने, सबने कैकेयी को बहुत समझाया ; पर वह अपने हठ पर अटल रही। राम को जब यह समाचार मिला, तो वह पिता के पास पहुँचे। कैकेयी ने देखा, दशरथ अपने मुख से राम से वन जाने के लिए कभी नहीं कहेंगे। उसने राम के पूछने पर सब हाल कहा। यह भी कहा कि पिता के सत्य की रक्षा के लिए तुमको वन जाना चाहिए। भगवान् रामचन्द्र बड़ी खुशी से इसके लिए तैयार हो गये। उनको हाथ से राज्य निकल जाने का तनिक भी रंज नहीं हुआ। रामचन्द्र के साथ ही सीताजी और लक्ष्मण भी वन को चले। रामचन्द्र के चले जाने पर पुत्र के शोक से दशरथ के प्राण निकल गये। उनका मुर्दा शरीर तेल में रख दिया गया। इसके बाद भरत और शत्रुघ्न ननिहाल से बुलाये गये। भरत ने आकर जब सब हाल सुना, तो अपनी माता को बहुत भला-बुरा कहा। भरत ने दशरथ का क्रिया-कर्म करने के बाद बड़े भाई रामचन्द्र को लौटा लाने के लिए यात्रा की। उनके साथ सब पुरवासी, गुरु वशिष्ठ और परिवार के लोग थे। राह में रामचन्द्र के मित्र निषाद से उनकी भेंट हुई। निषाद के बतलाये हुए मार्ग से गंगा पार होकर भरत जी चित्रकूट पहुँचे। वहाँ राम से भेंट हुई। राम लौटने को राजी नहीं हुए। भरत लाचार होकर उनकी खड़ाऊँ लेकर अयोध्या को लौट आये। अयोध्या के पास नन्दिग्राम में वह सिंहासन पर भाई की खड़ाऊँएँ रखकर रामचन्द्र के प्रतिनिधिरूप से राजकाज चलाने लगे। तपस्वियों की तरह रहने लगे।

उधर रामचन्द्र दंडकारण्य में पहुँचे। वहाँ रावण राक्षस की बहन सूर्पणखा उनके रूप पर मोहित हो गई। लक्ष्मण ने नाक कान काटकर उसके रूप को बिगाड़ दिया। खर, दूषण और त्रिशिरा नाम के राक्षस चौदह हजार सेना लेकर चढ़ आये। राम ने अकेले ही सबको मार डाला। सूर्पणखा लंका में अपने सगे भाई रावण के पास दौड़ी गई। रावण ने मारीच राक्षस को राम के आश्रम में भेजा। वह सोने और रत्नों का मृग बनकर वहाँ घूमने लगा। सीता ने राम से उस मृग को पकड़ लाने का आग्रह किया। रामचन्द्र सीता की रखवाली के लिए लक्ष्मण को आश्रम में छोड़कर उस मृग के पीछे गये। मारीच उनको बहुत दूर हटा ले गया। राम ने ताककर बाण मारा। मायावी राक्षस ने मरते समय राम की आवाज में लक्ष्मण को पुकारा। सीता धोखे में आ गईं। उन्होंने लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दी। लक्ष्मण के न जाने पर उनको खरी-खोटी सुनाई। लाचार लक्ष्मण भी चले गये। इधर रावण आकर सीता को जबर्दस्ती हर ले गया। राह में जटायु नाम के बली गिद्ध ने रावण का सामना किया। उसे

गी रावण ने मार डाला। राम जब लौटकर आये तो आश्रम में सीता को न पाया। वह रोते-बिलखते सीता को खोजने लगे। जटायु को मरा हुआ राह में देखा। उसका दाहकर्म किया।

ऋष्यमूक पहाड पर सुग्रीव नाम का बंदर रहता था। उसके भाई बली बाली ने उसे मारकर घर से निकाल दिया था और उसकी स्त्री को छीन लिया था। वह बडा दुखी था। सुग्रीव के मंत्री हनुमान् ने रामचन्द्र को ले जाकर सुग्रीव से मिलाया। सुग्रीव और राम में मित्रता हो गई। सुग्रीव के लिए रामचन्द्र ने बाली को मारा। सुग्रीव ने भी सीता की खोज के लिए बंदरों को चारों तरफ भेजा। दक्षिण दिशा में समुद्र के पार जाकर हनुमान् ने लंका पुरी में सीता को देखा। सीता से मिलकर, रावण के बेटे अक्षयकुमार को मारकर, अशोक-वाटिका उजाड़कर, लंका को जलाकर हनुमान् रामचन्द्र के पास लौट आये। खबर पाकर बंदरों, लंगूरों और रीछों की सेना साथ लेकर रामचन्द्र ने रावण पर चढाई कर दी। समुद्र पर पुल बाँधा। रामेश्वर महादेव की स्थापना की। लंका को जाकर रामचन्द्र ने घेर लिया। खूब घमासान लड़ाई हुई।

रामचन्द्र ने रावण के बेटे मेघनाद को, भाई कुम्भकर्ण को और रावण को मारा। रावण का भाई विभीषण रावण की लात खाकर रामचन्द्र से आकर मिल गया था। उसने रामचन्द्र की बड़ी सहायता की। रावण के मारे जाने पर राम ने विभीषण को लंका का राजा बना दिया। सीता बुलाई गई। रामचन्द्र ने उनकी परीक्षा लेने के लिए कुछ ऐसी बातें कहीं, जो दिखावटी थीं। सीता ने चिता बनवाई। उसमें खूब आग धधकने पर वह बैठ गईं। पर वह तो सच्ची पतिव्रता थीं। आग बुझ गई, सीता महारानी का बाल भी बाँका नहीं हुआ। इस अग्निपरीक्षा के बाद रामचन्द्र ने रावण का पुष्पक विमान मँगवाया। उस पर सीता, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान्, सुग्रीव आदि के साथ बैठकर अयोध्या को लौटे।

हनुमान् के मुख से रामचन्द्र के आने का समाचार पाकर भरत और शत्रुघ्न आगे आकर रामचन्द्र से मिले। अयोध्या में घर-घर आनन्द छा गया। रामचन्द्र ने तपस्वी का वेष उतारकर स्नान किया, सुन्दर राजसी वस्त्र पहने। तब वशिष्ठजी ने सिंहासन पर बिठाकर उनका राज्या-

भिषेक किया। रामचन्द्र ने हर तरह से प्रजा को सुख पहुँचाया। सीताजी के गर्भ था, इसी अवसर में लोक-निन्दा के भय से रामचन्द्र ने लक्ष्मण के साथ उनको वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में भिजवा दिया। सती सीता निर्दोष थीं। यह जानकर भी रामचन्द्र ने प्रजारंजन के लिए उनका त्याग कर दिया। तब भी सीता की पतिभक्ति अटल रही। सीता के दो लड़के हुए, लव और कुश। रामचन्द्र ने कई अश्वमेध यज्ञ किये। यज्ञ के अवसर पर वाल्मीकिजी सीता और लव-कुश को लेकर अयोध्या में आये। उन्होंने राम से कहा—सीता परम शुद्ध हैं। सीता ने खुद भरी सभा में आकर कहा—अगर मैं पतिव्रता और शुद्ध हूँ तो धरती माता मुझे जगह दो। सबके देखते ही धरती फट गई। पृथ्वी माता ने प्रकट होकर सीता को अपनी गोद
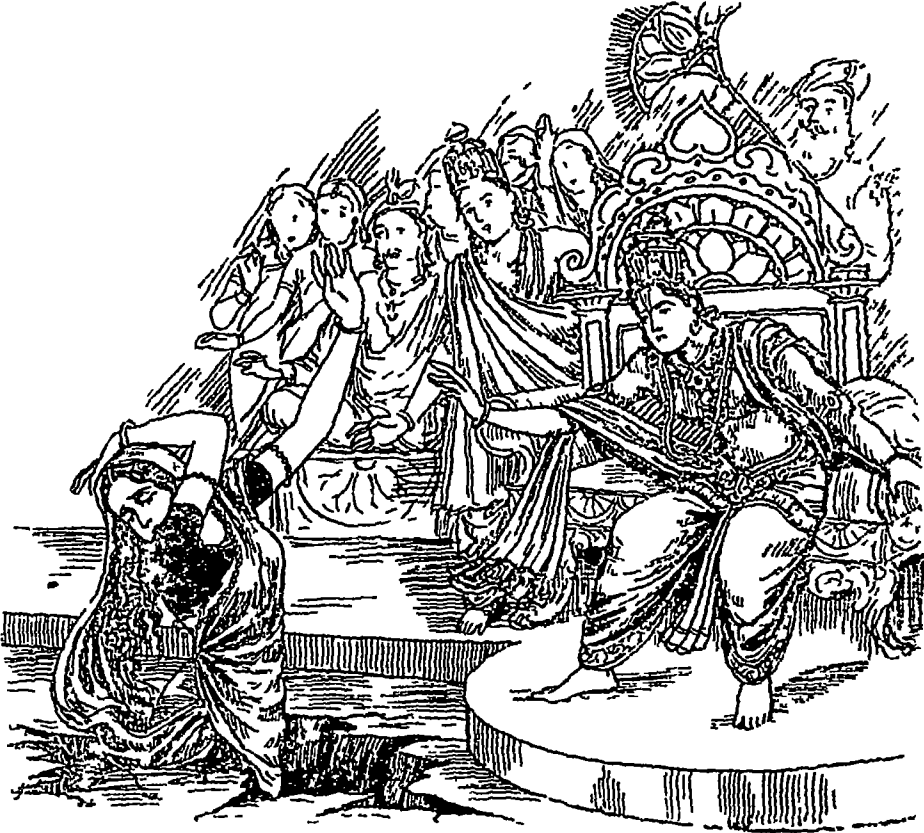
में ले लिया। सीता पृथ्वी से पैदा हुई थीं और उसी में समा गईं। इस घटना से रामचन्द्र को बड़ा शोक हुआ। अन्त को वह भी परमधाम को सिधारे।

अब मैं तुमको परशुराम की कथा सुनाता हूँ। इनका नाम पहले रामचन्द्र की कथा में

आ चुका है। परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि थे। माता का नाम रेणुका था। यह भगवान् के अवतार थे। इन्होंने माहिष्मती पुरी के राजा अर्जुन को मारा। अर्जुन के हजार हाथ थे और वह ऐसा बली था कि राक्षसों के राजा रावण को पकड़कर क़ैद कर लिया था। सहस्रबाहु अर्जुन एक समय शिकार करने के लिए जंगल में गया। वह घूमता-फिरता जमदग्नि ऋषि के आश्रम में पहुँचा। जमदग्नि ऋषि ने राजा का बड़ा आदर-सत्कार किया। जमदग्नि ऋषि के पास कामधेनु गऊ थी। उससे जो सामग्री माँगो, वही वह देती थी। जमदग्नि ने उसी गऊ के बल पर राजा को और उसकी सारी सेना को राजसी सामग्री से खिला-पिलाकर उनका सत्कार किया। यह देखकर सहस्रबाहु ने वह कामधेनु ऋषि से माँगी। ऋषि ने गऊ नहीं दी। तब वह जबरदस्ती गऊ खोलकर ले चला। सहस्रबाहु जब चला गया, तब परशुराम आये। राजा का अन्याय सुनकर शस्त्र लेकर वह दौड़ पड़े। पीछा करके उन्होंने राजा को ललकारा। घमासान लड़ाई हुई। परशुराम ने राजा को मार डाला। राजा के दस हजार पुत्र भय के मारे भाग गये। जमदग्नि ने परशुराम से कहा—तुमने राजा की हत्या करके घोर पाप किया है। इसका प्रायश्चित्त करने के लिए तुम तीर्थ-यात्रा करो। परशुराम पिता के कहने से तीर्थ-यात्रा करने चले गये। साल भर के बाद वह लौटे। एक दिन परशुराम की माता रेणुका मुनि के पूजा-पाठ के लिए गंगाजल लेने गंगा के किनारे गईं। वहाँ एक गंधर्व अपनी स्त्रियों के साथ जल-विहार कर रहा था। देवी रेणुका उस विहार को देखने लगीं। इसमें देर लगी। मुनिवर की पूजा को देर हो गई। इसका जब रेणुका को ध्यान आया तो वह पति के क्रोध से डरती हुई आश्रम को चलीं। आश्रम में आकर जल का कलश मुनि के आगे रख दिया और चुपचाप खड़ी हो गईं। क्रोधी मुनि देर हो जाने के कारण इतने क्रोधित हुए कि उन्होंने अपने लड़कों से माता का सिर काट डालने के लिए कहा। परशुराम के और भाई तो इस काम के लिए तैयार नहीं हुए, पर परशुराम ने पिता की आज्ञा पाते ही फरसे से माता और भाइयों के सिर काट डाले। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने यही वर माँगा कि माता और भाई जी उठें और उन्हें यह स्मरण न रहे कि उनकी हत्या की गई थी। जमदग्नि के तपोबल से सब जी उठे।

एक दिन परशुराम और उनके भाई वन को गये थे। इसी बीच में आश्रम को शून्य पाकर सहस्रबाहु अर्जुन के लड़के आ गये। उन्होंने समाधि लगाये बैठे हुए जमदग्नि ऋषि का सिर काट डाला। रेणुका छाती पीट-पीटकर बड़े जोर से रोने और चिल्लाने लगी। परशुराम

लौटे आ रहे थे। माता का रोना कान में पड़ते ही वह झपटकर आश्रम में पहुँचे। पिता की हत्या का दृश्य देखते ही वह आगबबूला हो गये। फरसा लेकर दौड़ पड़े। उन्होंने माहिष्मती पुरी तक पीछा करके सब राजपुत्रों को मार डाला। तब भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

उन्होंने इक्कीस बार खोज-खोजकर सब क्षत्रियों को मारा। क्षत्रियों के रक्त से उन्होंने पाँच तालाब भर दिये। इनका नाम स्यमन्तपञ्चक पड़ा। इस हत्याकाण्ड का पाप मिटाने के लिए परशुराम ने एक महायज्ञ किया और दक्षिणा में ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी दान कर दी। सब क्षत्रिय राजों का वध कर डालने के कारण सारी पृथ्वी पर उनका अधिकार हो गया था। परशुराम अमर हैं और वह अब भी महेन्द्र पर्वत पर दक्षिण में तपस्या कर रहे हैं। अब आगे रन्तिदेव का चरित्र सुनो।

चन्द्रवंशी राजों में रन्तिदेव बड़े सन्तोषी और दानी थे। राजा रन्तिदेव ने अपनी सारी सम्पत्ति दीन-दुखियों और ब्राह्मणों को बाँट दी थी। उनके पास कुछ भी नहीं रह गया। यहाँ तक कि ४८ दिन तक उनको या उनके परिवार को अन्न का एक दाना भी नहीं नसीब हुआ। उंचासवें दिन प्रातःकाल एक आदमी एक थाली में खीर और एक लोटे में पानी राजा को दे गया। राजा भूख और प्यास से पीड़ित हो रहे थे, उनका शरीर काँप रहा था। राजा ने परिवार

के लोगों को बाँटकर जैसे ही उस खीर को खाना चाहा ; वैसे ही उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्माजी एक ब्राह्मण का रूप रखकर आये और राजा से भोजन माँगा। राजा ने उस खीर में से अपना हिस्सा उस ब्राह्मण को दे दिया। उसे खाकर ब्राह्मण चला गया। बची हुई खीर परिवारवालों को बाँटकर जब राजा ने खाना चाहा, तब विष्णु भगवान् बहुत से कुत्तों को साथ लिये शूद्र का रूप रखकर आये और खाने को माँगा। राजा ने अतिथि जानकर उस खीर का आधा हिस्सा शूद्र को दे दिया। शूद्र अपने कुत्तों के साथ वह अन्न खाकर चला गया। राजा फिर जब केवल जल पीकर प्यास बुझाने को तैयार हुए, तब महादेवजी एक चाण्डाल का रूप रखकर आये और बोले—राजा, मैं बहुत प्यासा हूँ। मुझे पीने को थोड़ा-सा पानी दीजिए। दयालु राजा ने कहा—मैं अपने कष्ट की पर्वा नहीं करता। मैं भले ही भूख-प्यास से मर जाऊँ, पर दूसरों का कष्ट दूर हो, और इससे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। इतना कहकर राजा ने बचा हुआ पानी भी उस चांडाल को दे दिया। राजा के धैर्य और दान को देखकर तीनों देवता अपने असली रूप में प्रकट हुए। उन्होंने राजा से वरदान माँगने के लिए कहा। राजा ने भगवान् की कृपा और भक्ति के सिवा और कुछ नहीं माँगा। रन्तिदेव की कीर्ति का बखान सब लोग करते हैं। अब शरणागत-पालक राजा शिवि की कथा सुनो।

राजा शिवि का प्रण था कि जो उनकी शरण में आवेगा। उसकी रक्षा वह प्राण देकर करेंगे, एक दिन इन्द्र और अग्नि देवता ने राजा की परीक्षा लेनी चाही। अग्नि एक कबूतर का रूप रखकर हाँफते हुए राजा की गोद में आकर गिर पड़े और इन्द्र बाज का रूप रखकर उस कबूतर का पीछा करते हुए राजा के पास आये। राजा सभा में बैठे थे। कबूतर ने राजा से कहा—महाराज, मेरा काल बाज मेरा पीछा किये आ रहा है, उससे मुझे बचाइए। राजा ने कहा—तुम डरो नहीं, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इतने में बाज ने आकर कहा—महाराज, यह कबूतर मेरा शिकार है, इसे मुझे दे दो। राजा ने कहा—तुम्हारा कहना सच है ; लेकिन यह मेरी शरण आया है ; मैं इसे तुमको नहीं दे सकता। बाज ने कहा—आप राजा हैं। आप को सब से एक-सा व्यवहार करना चाहिए। एक का आहार छीनकर दूसरे की रक्षा करना धर्म नहीं है। राजा ने कहा—इस कबूतर के बदले तुम दूसरा आहार ले लो। बाज ने कहा—मैं अपना किया हुआ शिकार ही खाता हूँ। अथवा अपने शरीर का मांस मुझे खाने को दीजिए। राजा इसके लिए राजी हो गये। उन्होंने काँटा मँगाकर लगवा दिया। एक पलड़े पर उस कबूतर को बिठाया और दूसरे पलड़े पर अपने शरीर का मांस काटकर रखा। राजा ने धीरे-धीरे सारे शरीर से

मांस काट-काटकर रक्खा, पर वह कबूतर के बराबर तोल में नहीं हुआ। अन्त को वह आप ही उस तुला पर बैठ गये। राजा की परीक्षा पूरी हुई। उनके प्रण और धीरज को देखकर दोनों देवता बड़े प्रसन्न हुए। इन्द्र और अग्नि ने अपने रूप में प्रकट होकर राजा को वरदान दिया और उनकी बड़ाई करते हुए स्वर्ग को चले गये। राजा शिवि का नाम संसार में प्रसिद्ध हो गया। बेटा, अब मैं तुमको महर्षि मार्कण्डेय की कथा सुनाता हूँ। मन लगाकर सुनो।

मृकंडु ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि की बड़ी उमर है। इसी से बड़े-बूढ़े आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारी मार्कण्डेय की सी आयु हो। इन्होंने प्रलय देखा है और उससे बच गये हैं। वही कथा मैं तुमको सुनाता हूँ। महायोगी मार्कण्डेय जब बहुत दिनों तक घोर तपस्या करते रहे, तब इन्द्र को यह शंका हुई कि कहीं यह मेरे इन्द्रपद को अपनी तपस्या के प्रभाव से न ले लें। इन्द्र ने उनके तप में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं को भेजा। लेकिन वे उनकी तपस्या में विघ्न न डाल सकीं। जितेन्द्रिय मुनि ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। वे हारकर लौट गईं। तब भगवान् नर-नारायण ने प्रसन्न होकर मुनि को दर्शन दिये और उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। मुनि ने प्रणाम और स्तुति करके भगवान् से अपनी अद्भुत माया दिखाने के लिए कहा। भगवान् नारायण ने कहा—जल्दी ही तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी। इतना कहकर भगवान् अपने स्थान बदरिकाश्रम को चले गये।

इसके बाद एक दिन पुष्पा नदी के किनारे बैठे हुए मार्कण्डेयजी भगवान् की आराधना कर रहे थे, इतने में उन्होंने देखा, बड़े जोर की आँधी उठी है। बादल बड़े जोर से गरजते हुए चारो ओर से घिर आये। बड़े जोर से पानी बरसने लगा। समुद्र चारो ओर से उमड़कर पृथ्वी-मण्डल को डुबाने लगा। समुद्र के जल में भयानक भँवर पड़ रहे थे। पृथ्वी के डूबते ही मार्कण्डेयजी उसी महासागर में डूबने-उतराने लगे। मुनि की जटाएँ फैल गईं। वह जड़, अन्धे के समान उस जल में इधर-उधर बहने लगे। एक तो वह भूखे-प्यासे थे, दूसरे मगर आदि जल-जीवों के भय से उनके प्राण निकले जाते थे। इसी तरह हजारों वर्षों तक मार्कण्डेयजी उस अथाह प्रलय के महासागर में बहते और डूबते उतराते रहे। एक समय बहते-बहते मार्कण्डेयजी ने एक छोटा-सा टापू देखा। उस टापू में एक बरगद का पेड़ उनको देख पड़ा। उस बरगद की एक डाल पर पत्तों के बीच में उन्हें एक श्यामवर्ण छोटा-सा बच्चा दिखाई दिया। उसके तेज से वहाँ का अन्धकार दूर हो रहा था। मार्कण्डेयजी को बड़ा विस्मय हुआ। वह बालक लेटा हुआ दोनों हाथों से अपने बायें पैर का अँगूठा चूस रहा था। उसे देखकर मुनि को बड़ी प्रसन्नता हुई।

मार्कण्डेयजी तैरते हुए उस बालक के पास जैसे पहुँचे, वैसे ही उस बालक ने एक साँस ली और उस साँस के साथ ही वे उसके पेट में चले गये। उन्होंने बालक के पेट के भीतर इस सारे जगत् को देखा। मुनि को बड़ा अचरज हुआ। इसके बाद बालक ने एक साँस छोड़ी। उस साँस के साथ ही मुनिवर उसके पेट से बाहर निकल आये। बाहर आते ही इन्होंने देखा तो न कहीं प्रलय का समुद्र था, न वह टापू था, न वह बरगद का पेड था और न वह सुन्दर बालक ही था। भगवान् की अद्भुत माया की यह लीला देखकर उन्हें बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने अपने को उसी पुष्पभद्रा नदी के किनारे अपने आश्रम में बैठा हुआ पाया। मार्कण्डेय ऋषि की कथा तुम सुन चुके। अब मैं तुमको आदि से अन्त तक कृष्ण भगवान् का चरित्र सुनाता हूँ। कृष्ण की कथा ही भागवत की मुख्य कथा और सारांश है। उसे मन लगाकर सुनना।

चन्द्रवंशी क्षत्रियों में राजा यदु बडे प्रतापी थे। उनके वंश के लोग यादव कहलाये। यादवों के कई घराने अलग-अलग नामों से प्रसिद्ध हुए। यादवों के भोज नामक घराने में आहुक का जन्म हुआ। आहुक के देवक और उग्रसेन नाम के दो पुत्र हुए। उग्रसेन शूरसेन देश (मथुरा) के राजा थे। उग्रसेन के नव लडके और पाँच लडकियाँ हुईं। देवक के चार लडके और सात लडकियाँ थीं। उग्रसेन का बड़ा लड़का कंस था और देवक की छोटी लड़की का नाम देवकी था।

इसी यादव वंश की एक शाखा में शूर नाम के एक यादव थे। उनके वसुदेव आदि दस पुत्र हुए। वसुदेव के पाँच बहनें भी थीं। उनमें पृथा नाम की वसुदेव की बहन को उनके पिता शूर ने अपने मित्र राजा कुन्ति को दे दिया था। राजा कुन्ति के कोई सन्तान न थी, इसीलिए उन्होंने पृथा को अपनी कन्या बना लिया। तब से पृथा का नाम कुन्ती पड़ गया। कुन्ती का ब्याह राजा पाण्डु के साथ हुआ। उनके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन, ये बडे प्रतापी लड़के हुए। बेटा, वसुदेव, कंस और देवकी का परिचय पहले तुमको इसलिए दे दिया है कि इनका इस कथा से अधिक सम्बन्ध है।

राजा उग्रसेन के भाई देवक ने अपनी देवकी आदि सातो लड़कियों का ब्याह शूर के बड़े बेटे वसुदेव के साथ कर दिया। देवकी का ब्याह हो जाने के बाद देवकी को विदा कराकर वसुदेव अपने घर को चले। उस समय अपनी चचेरी बहन और बहनोई के प्रति अपना स्नेह दिखाने के लिए कंस उनका रथ खुद हाँकने के लिए तैयार हो गया। कहीं दूर तो जाना ही न था। वर और वधू दोनों मथुरा के ही थे।

यहाँ पर यह बता देना जरूरी है कि कंस का स्वभाव अच्छा न था। वह बड़ा क्रूर और

कुटिल था। बड़ा ढीठ और घमंडी था। वह अपने पिता राजा उग्रसेन को भी कुछ नहीं समझता था। इसका कारण यही था कि वह कालनेमि नाम के असुर का अवतार था। इस असुर को विष्णु भगवान् ने मारा था। वह उग्रसेन के घर पैदा होकर विष्णु का शत्रु बन गया था। वह अपने भाई-बन्धु यादवों का भी हितैषी नहीं था। अपने बल का उसे इतना गर्व था कि वह अपने आगे किसी को कुछ न समझता था। सब उससे डरते थे। वह जो कहता, वही उग्रसेन को करना पड़ता था। वह भगवान् को नहीं मानता था। अपने मतलब के लिए दूसरों को हानि पहुँचाना उसके बाएँ हाथ का खेल था। मथुरा में यज्ञ, दान, व्रत, तप, जप करनेवाले उसकी क्रूर दृष्टि का शिकार होते थे। शराबी, जुआरी, पाखंडी उसके मित्र थे। महादुष्ट और भ्रष्ट कंस गऊ, ब्राह्मण किसी को नहीं मानता था। उसके साथी जरासंध, शिशुपाल वगैरह राक्षसी स्वभाव के राजा थे, उन्होंने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। धरती उनके पाप के बोझ से दबी जा रही थी। पृथ्वी गाय का रूप रखकर देवतों के पास अपना रोना रोने गई। पर देवता कंस वगैरह से हार चुके थे। वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। इसलिए वे पृथ्वी को लेकर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान् से प्रार्थना की। तब विष्णु भगवान् ने कहा—

तुम लोग घबराओ नहीं। मैं वसुदेव के घर में देवकी के पेट से पैदा होकर इन सब दुष्ट राजों को मारकर पृथ्वी का भार उतारूँगा। तब से देवता लोग यही आशा लगाये थे।

अच्छा, तो कंस जब देवकी का रथ हाँकने लगा, तब देवतों ने सोचा, यह तो अच्छा न हुआ। कंस अगर वसुदेव-देवकी को कष्ट न देगा, पाप कर्म न करेगा तो शायद भगवान् इसे मारने के लिए अवतार भी न लें। तब देवतों ने आकाश से यह आकाशवाणी की कि अरे मूर्ख, जिस अपनी बहन देवकी को तू इतना प्यार करता है कि उसका रथ हाँक रहा है, उसी का आठवाँ लड़का तेरा काल होगा। यह सुनते ही

कंस आग-बबूला हो गया और तलवार निकालकर देवकी का सिर काटने को तैयार हुआ। वसुदेव बड़े समझदार थे। उन्होंने देवकी की जान बचाने के लिए कंस से कहा—देवकी को क्यों मारते हो? यह तो तुम्हें मारेगी ही नहीं। डर तो तुमको इसके लड़के से है। सो मैं तुमको इसके जो लड़का पैदा होगा, वही लाकर दे दूँगा। इस पर कंस राजी हो गया और उसने देवकी को छोड़ दिया।

वसुदेव के जिस समय पहला लड़का हुआ, उसी घड़ी वह उसे लेकर कंस के पास दौड़े आये। वह बड़े सत्यवादी थे, इसी से तो कंस जैसे दुष्ट ने भी उन पर विश्वास कर लिया था। कंस को उस बच्चे को देखकर दया आ गई। आखिर वह था तो मनुष्य ही। उसने वसुदेव से कहा—मुझे डर तो देवकी के आठवें लड़के से है। इससे नहीं। इसलिए इसे तुम ले जाओ। आठवाँ लड़का मुझे दे जाना। इधर वसुदेव बच्चे को लेकर लौट गये, उधर देवतों ने विचारा, यह भी ठीक नहीं हुआ। कंस के पाप का घड़ा जब तक भर न जायगा, तब तक भगवान् अवतार नहीं लेंगे। ऐसा करना चाहिए, जिसमें कंस लड़कों की हत्या करे। उन्होंने नारदजी को कंस के पास भेजा। नारद ने आकर कंस को समझाया कि तुम अपने वैरी देवतों की चाल नहीं समझते। तुम्हारा काल देवकी का पहला लड़का भी हो सकता है। उन्होंने जमीन पर आठ लकीरें खींचकर बतलाया कि आदि से गिनने पर जैसे अन्त की लकीर आठवीं होती है, वैसे ही अन्त से गिनने पर आदि की लकीर भी आठवीं होगी। देवतों की चाल चल गई। कंस ने उसी समय देवकी और वसुदेव को पकड़कर कैदखाने में डाल दिया और उस बच्चे को पत्थर पर पटककर मार डाला। इसी तरह उसने देवकी के छः बच्चे मार डाले। जब

सातवाँ लड़का, जो शेषनाग का अवतार था, पेट में आया, तब भगवान् ने अपनी शक्ति योग-माया को इसलिए भेजा कि वह उस बच्चे को देवकी के पेट से निकालकर रोहिणी के पेट में डाल दें और आप नन्द की स्त्री यशोदा के पेट से कन्या के रूप में जन्म लें।

मनोहर—पिताजी, रोहिणी कौन थीं?

बनारसी—बेटा, रोहिणी वसुदेव की ही स्त्री थीं और वसुदेव के मित्र नन्द के यहाँ व्रज में, जो मथुरा से थोड़े ही फासले पर था, रहती थीं। खैर, सातवाँ बालक व्रज में पैदा हुआ और कंस उसे मार नहीं सका। यहाँ वसुदेव ने यह खबर उड़ा दी कि देवकी का सातवाँ गर्भ गिर गया। इसके बाद भादों बदी अष्टमी को आधी रात को क़ैदखाने में ही भगवान् कृष्णचन्द्र ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया। पिता-माता को यह जताने के लिए 'कि तुम अब घबराना नहीं; मैं कंस को मारने के लिए तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ, वह शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए अपने चतुर्भुज विष्णु रूप से देवकी के गर्भ से प्रकट हुए। भगवान् के दर्शन पाकर देवकी और वसुदेव ने अपने को धन्य माना। तब देवकी ने भगवान् से कहा—इसमें सन्देह नही कि कंस आपका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता, फिर भी मेरी प्रार्थना है कि आप अपने इस रूप को छोड़कर साधारण बालक बन जाइए, जिसमें मेरे पतिदेव आपकी आज्ञा के अनुसार आपको जल्दी ही नन्द के घर व्रज में छोड आवें। भगवान् उसी समय माता को निश्चिन्त करने के लिए साधारण बालक बन गये और वसुदेव भगवान् कृष्ण को सूप में लेकर व्रज जाने के लिए तैयार हो गये। उनकी हथकड़ी-बेड़ी आप से आप खुल गईं। क़ैदखाने का लोहे का फाटक भी भगवान् की इच्छा से उसी समय खुल गया। उधर योग-माया व्रज में जन्म ले चुकी थीं। सो उनके प्रभाव से व्रज के और मथुरा के सभी लोग बेहोश होकर सो रहे थे। जेलखाने के पहरेदार भी अचेत हो रहे थे। सूरज के निकलते ही जैसे अँधेरा दूर हो जाता है, वैसे ही वसुदेव के चलते ही क़ैदखाने के सभी दरवाजे, जिनमें मोटे-मोटे ताले पड़े थे, आपसे आप खुल गये। वसुदेव चुपचाप कृष्ण को लेकर चले। उस दिन खूब पानी बरसा था और उस समय भी फुहारें गिर रही थीं। पानी से भगवान् को बचाने के लिए शेषनाग अपने हजारों फन छतरी की तरह ऊपर फैलाये वसुदेव के पीछे-पीछे चलने लगे। मगर वसुदेव को इसकी कुछ खबर न था। व्रज को जाने के लिए यमुना नदी को पार करना था। यमुना उस समय बहुत बढ़ी हुई थीं। उन्हें बिना किसी नाव के पार करना बहुत ही कठिन था। मगर जैसे ही वसुदेव यमुना के किनारे पहुँचे, वैसे ही उस जगह ईश्वर के प्रभाव से यमुना का

यमुना को पार करना

पानी घुटनों-घुटनों तक ही रह गया। जैसे समुद्र ने लंका जाने के लिए रामचंद्र को राह दे दी थी, वैसे ही यमुना ने भी वसुदेव को राह दे दी। वसुदेवजी खुशी-खुशी यमुना पार होकर नंद के व्रज में पहुँच गये। वहाँ भी सब गोप और गोपियाँ बेखबर पड़ी सो रही थीं। वसुदेव के पहुँचते ही नंद के घर का दरवाजा आप से आप खुल गया। वसुदेवजी यशोदा जहाँ सो रही थीं, वहाँ गये। उन्होंने कृष्ण को तो यशोदा के पास लिटा दिया और यशोदा के जो लड़की उसी समय पैदा हुई थी, उसे उठाकर मथुरा के लिए उसी समय लौट पड़े। वसुदेव उसी तरह यमुना को मँझाकर मथुरा लौट आये। उनके कैदखाने में पहुँचते ही सब फाटक फिर वैसे ही बंद हो गये। वसुदेव ने अपने हाथ-पैरों में हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ पहले ही की तरह डाल लीं। फिर वह पहले ही की तरह क़ैदी हो गये। जैसे कहीं गये ही न थे।
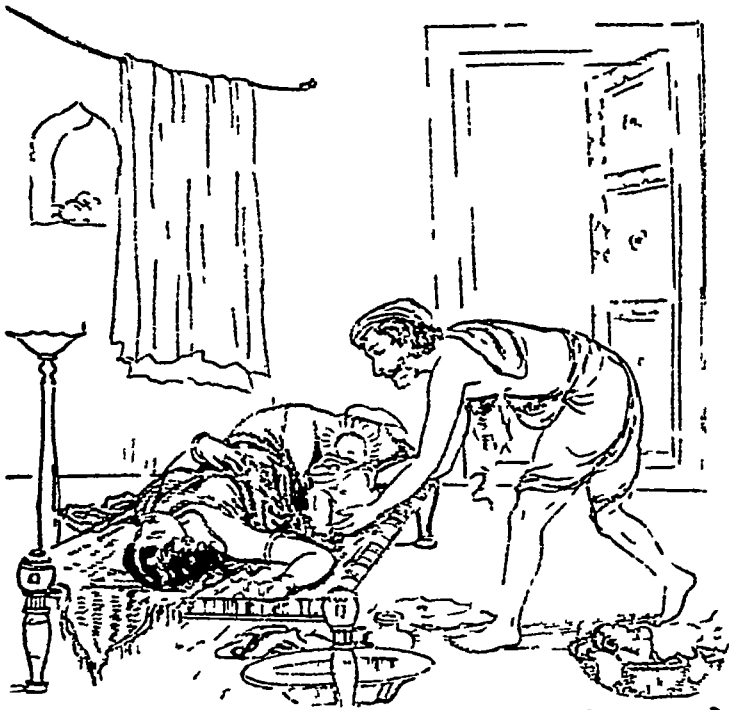
योगमाया ने क़ैदख़ाने में पहुँचते ही जोर से रोना शुरू कर दिया। भगवान् की माया से अचेत पड़े हुए कैदख़ाने के पहरेदार अब भगवान् की इच्छा से जाग पडे। कंस ने कह रक्खा था कि देवकी के आठवाँ बालक पैदा होते ही उसे ख़बर दी जाय; क्योंकि उसे दिन-रात उसीका खटका लगा रहता था। द्वारपाल उसी समय दौड़े हुए गये और उन्होंने जाकर कंस को खबर दी। कंस गिरता-पड़ता उसी समय दौड़ा आया। उसने देवकी के रोने-धोने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया आते ही आव न देखा ताव, उनकी गोद से उस लड़की को खींच लिया और उसके दोनों पैर पकड़कर घुमाकर वहीं पड़े हुए एक बड़े भारी पत्थर पर पटक दिया। लेकिन योगमाया पत्थर पर पहुँचने के पहले ही कंस के हाथ से निकलकर आकाश में चली गईं। वहाँ जाकर अष्टभुजा देवी के रूप में प्रकट होकर योगमाया ने कहा—अरे दुष्ट, मुझको मारने से तुझे क्या लाभ होगा? तुझे मारने-वाला बालक और कहीं पैदा हो चुका है। इसलिए बेगुनाह बालकों को मारकर पाप की गठरी

अपने सिर पर न लाद। इतना कहकर योगमाया गायब हो गई। कंस को बड़ा अचरज हुआ। उसने देवकी और वसुदेव को निर्दोष समझकर उन्हें कैदखाने से छोड़ दिया और उनकी बड़ी खुशामद की, समझाया भी। उसने कहा, मुझे नहीं मालूम था कि देवता भी झूठ बोलते हैं। मैंने मौत के डर से बालकों को मारकर बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करो।

कंस को अब और चिन्ता हो गई। उसने अपने दुष्ट साथियों को जमा करके उनसे कहा—तुम लोग जानते हो कि देवता मेरे शत्रु हैं। उनमें भी विष्णु बड़ा धूर्त और चालाक है। देवता धोखे से मुझे मार डालना चाहते हैं; क्योंकि सामने होकर लड़ने की शक्ति उनमें नहीं है। अब तुम जाओ, कहीं पूजा-पाठ और यज्ञ न होने दो; क्योंकि इन्हीं कामों से देवतों का बल बढ़ता है। ब्राह्मण, गऊ और तुरत पैदा हुए बालक जहाँ मिलें, उन्हें बिना कुछ सोचे-विचारे मार डालो। उसने पूतना नाम की राक्षसी को खास तौर से इसलिए भेजा कि जहाँ कोई दुध-मुहा बच्चा मिले, उसे मार डालो।

सब राक्षस उसी समय अपने स्वामी की आज्ञा पूरी करने के लिए चारों ओर चल दिये।

इधर व्रज में सवेरे ही यह खबर चारों ओर फैल गई कि नन्द के बुढ़ापे में बालक पैदा हुआ है। बस, फिर क्या था, व्रज में चारों ओर खुशी का समुद्र लहरा उठा। गोप सजधज-कर नन्द के घर बधाई देने आने लगे। गोपियाँ सिंगार करके गाती-बजाती हुई यशोदा रानी के यहाँ जमा होने लगीं। खूब उत्सव मनाया गया। गरीबों और ब्राह्मणों को बहुत सा धन, रत्न, कपड़े और भोजन बाँटा गया। उस दिन नन्द के घर जो आया, वह निहाल होकर लौटा। बस, उस दिन से व्रज की शोभा सौगुनी हो गई। इसमें अचरज की कोई बात नहीं। जहाँ साक्षात् भगवान् हों, वहाँ किस बात की कमी हो सकती है?

इसी बीच नन्द ने सब गोपों को जमा करके कहा—आओ, हम लोग सालाना कर (लगान) राजा कंस को दे आवें। साथ ही मैं अपने मित्र वसुदेव से भी भेंट कर आऊँगा। क्योंकि वह मेरे मित्र हैं। जो अपने सुख में सुखी और दुख में दुखी हो, वही सच्चा मित्र है। वसुदेव मेरे ऐसे ही मित्र हैं। उनको यह खुशखबरी सुना आऊँ। नन्द के कहने से सब गोप चलने को तैयार हो गये। राजा को भेंट करने के लिए तरह-तरह के सामान छकड़ों पर लादकर और नगदी लेकर सब सयाने गोप मथुरापुरी को चले गये। व्रज में केवल बुड्ढे, बालक और औरतें ही रह गईं। नन्दजी गोपों के साथ मथुरा पहुँचे। कंस से भेंट करके उसे लगान दिया। कंस ने भी उनकी बड़ी खातिर की। नंद लौटते समय वसुदेव से भी मिले। वसुदेव तो जानते ही थे कि नंद के घर में मेरा ही लड़का है, फिर भी उन्होंने बुढ़ापे में लड़का होने की खुशी में

नंद का साथ दिया। इसके बाद वसुदेव ने नंद से कहा—अब आप जल्दी गोकुल को लौट जाइए। वहाँ कोई सयाना मर्द नहीं है। मुझे डर है, वहाँ कोई उत्पात न हो। नंदजी वसुदेव से गले मिलकर उनसे विदा हुए।

अब इधर व्रज का हाल सुनो। बच्चों को मारती हुई पूतना राक्षसी इसी बीच व्रज में पहुँच गई। वह जहाँ कोई बच्चा होने की खबर पाती थी, वहीं जाकर उसे मार डालती थी। कंस का यही हुक्म था। व्रज में जब वह पहुँची तो उस दिन भी नंद के घर गाना-बजाना हो रहा था। उसने सोचा, राक्षसी के रूप से जाने में अपना काम पूरा नहीं होगा। इसीलिए वह राक्षसी माया से एक बड़ी सुन्दर स्त्री बन गई। उसका पहनावा और सिंगार रानियों-महारानियों का जैसा था। उसके रोब में बड़े-बड़े आ जाते थे। वह उसी रूप से नंद के घर पहुँची और सीधी भीतर घुसती चली गई। उसे रोकने की किसी की हिम्मत ही नहीं

हुई। वह उस समय वैसी ही थी, जैसे मखमली म्यान के भीतर छिपी विष-बुझी कटार हो। वह अपने स्तनों में हलाहल जहर का लेप किये हुए थी। वह सीधे वहीं पहुँची, जहाँ कृष्ण भगवान् लेटे हुए थे। भगवान् ने उसे देखकर अपनी आँखें मूँद लीं; क्योंकि भगवान् के सामने कोई माया ठहर नहीं सकती। पूतना ने जाते ही बेधड़क कृष्ण को उठा लिया और गोद में लेकर अपना दूध पिलाने लगी। यशोदा, रोहिणी और सब गोपियाँ खड़ी तमाशा देखती रहीं। उन्होंने समझा, यह कोई रानी-महरानी है; हमारे यहाँ बालक को देखने आई है।

भगवान् कृष्ण ने उस दुष्टा राक्षसी को मार डालने का निश्चय कर लिया। भगवान् ने सोचा, यह जीती बचेगी तो और हजारों बालकों की हत्या करेगी, इसलिए इसे मार डालना ही ठीक है। भगवान् ने दोनो हाथों से उसका स्तन पकड़कर दूध के साथ ही उसके प्राण भी खींचना शुरू किया। विष का असर तो भगवान् पर क्या होता, उलटे पूतना को ही लेने के देने पड गये। वह हाय-हाय करके "छोड़दे-छोड़दे" कहती हुई कृष्ण से अपने छुड़ाने की कोशिश करने लगी। पर बच कहाँ सकती थी! उसकी आँखें बाहर निकल आईं और वह कृष्ण को लिये हुए ही बाहर भागी। कुछ दूर पर ब्रज के बाहर जाकर वह गिर पडी और पीडा के मारे हाथ-पैर पटकने लगी। पर जब तक उसके शरीर में प्राण रहे, कृष्ण ने उसे नहीं छोड़ा। अन्त को वह मर ही गई। पीछे से गोपियाँ भी दौड़ी हुई आईं और कृष्ण को क्षेम-कुशल से राक्षसी की छाती पर खेलते देखकर उनके जी में जी आया। राक्षसी ने मरते समय अपना राक्षसी रूप प्रकट कर दिया था। उस रूप को देखकर सब गोप और गोपियाँ सहम गईं। सबने कहा—भगवान् ने ही आज बालक को इसके हाथ से बचाया! नंदजी लौटकर आये तो यह हाल देख-सुनकर दंग रह गये। उन्होंने कुल्हाड़ियों से पूतना की देह के टुकडे-टुकडे करके उसे जला दिया। भगवान् को दूध पिलाने के कारण पूतना तर गई।

एक दिन कृष्णचंद्र की सालगिरह थी। यशोदा ने उन्हें उबटन लगाकर नहला-धुलाकर नये कपडे और गहने पहनाये, आँखों में काजल लगाया और पालने में लिटा दिया। सालगिरह के उत्सव में सब गोपियाँ मिलकर गाने-बजाने लगीं। भगवान् भूखे हुए तो रोने लगे। पर गाने-बजाने और आनेवाली गोपियों के आदर-सत्कार में लगी हुई यशोदा या रोहिणी ने सुन न पाया। भगवान् ने रोते-रोते पैर जो उछाले तो पालने के ऊपर रक्खा हुआ भारी छकड़ा

पूतना-वध

गया। उसके गिरने की आवाज से चौंककर सब गोपियाँ वहीं दौड़ी आईं। कृष्ण को कुशल से देखकर सबके जी में जी आया। पूछने पर वहीं खेल रहे बालकों ने बतलाया कि कृष्णचंद्र के ही पैरों की ठोकर से यह छकड़ा उलट गया है। पर बालकों की बात पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। यह कौन विश्वास कर सकता था कि एक साल का बच्चा इतने भारी छकड़े को पैर की ठोकर से उलट सकता है। नंद ने इसे भी उत्पात समझा और शान्ति के लिए ब्राह्मणों को बुलाकर होम और पूजा-पाठ कराया।
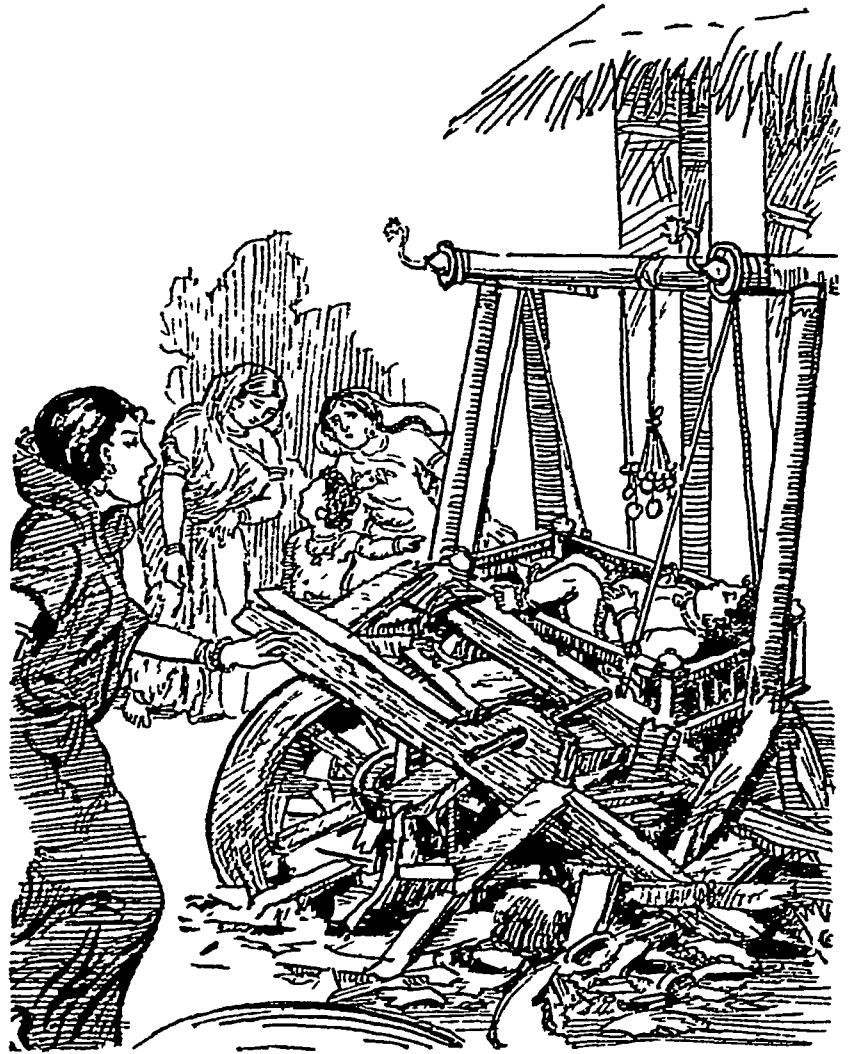
एक दिन यशोदाजी बैठी कृष्ण को दूध पिला रही थीं। एकाएक कृष्ण ने अपने शरीर को पहाड़ से भी भारी कर लिया। यशोदा को बड़ा अचरज हुआ। वह कृष्ण को जमीन पर बिठाकर घर का काम-काज करने चली गई। इसी बीच में कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नाम का असुर आँधी-बवंडर का रूप रखकर ब्रज में आया। आँधी के कारण सब तरफ अँधेरा-सा छा गया। धूल और कंकड़ियों की बौछार से सबकी आँखें बंद हो गईं। तृणावर्त ने आते ही आँगन में बैठे हुए कृष्ण को उठा लिया और आकाश में उड़ गया। उसका मतलब यह था कि बहुत ऊँचे पर जाकर वह कृष्ण को नीचे पटक देगा और उसका काम सिद्ध हो जायगा। मगर कृष्ण भगवान् से उसकी चालाकी क्या चल सकती थी? भगवान् ने ऊपर जाकर दोनों हाथों से उसका गला पकड़ लिया और जोर से दबाने लगे। अब तो असुर का दम घुटने लगा।

उसने अपना गला छुड़ाने की बड़ी-बड़ी कोशिशें कीं ; मगर सब बेकार हुआ। भगवान् ने अन्त को गला दबाकर उसे मार ही डाला। वह आकाश से पृथ्वी पर गिरा और उसके सब अंग चूर-चूर हो गये। भगवान् उसकी देह के ऊपर आनन्द से खेल रहे थे। आँधी का जोर कम हो गया। गोप-गोपियाँ कृष्ण की खोज में व्याकुल होकर वहीं दौड़े आये और कृष्ण को सही-सलामत पाकर सबने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

जब कृष्णचंद्र और कुछ बड़े हुए तब वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्ग ऋषि को नंद के घर लड़कों (कृष्ण और बलभद्र—बलभद्र रोहिणी के लड़के थे) का नामकरण संस्कार करने के लिए भेजा। नामकरण के माने हैं नाम रखना। गर्ग ऋषि जब नंद के घर पहुँचे, तो नंद ने उनका बड़ा आदर किया। इसके बाद नंद ने आप ही गर्ग ऋषि से यह प्रार्थना की कि आप मेरे लड़कों का नाम रख दीजिए। गर्ग ऋषि ज्योतिष के बड़े भारी पंडित थे, इसीलिए नंद ने उन्हें घर-बैठे पाकर इस मौक़े से लाभ उठाना चाहा। पहले तो गर्ग ऋषि ने असली बात छिपाने के लिए नाहीं-नूहीं की, कहा—मैं यादवों का पुरोहित हूँ ; अगर तुम्हारे लड़कों का नामकरण संस्कार करूँगा और कंस को कहीं खबर लग गई तो अनर्थ हो जायगा। उसे शक हो जायगा कि ये लड़के वसुदेव के तो नहीं हैं। फिर तुम वसुदेव के मित्र हो, इसलिए भी संदेह करने की गुञ्जाइश है। उस हालत में वह तुम्हारे लड़कों का अनिष्ट भी कर सकता है।

इस पर नंद ने कहा—मुझे भी इसका खटका है। मगर आप ऐसी एकान्त जगह में यह काम करेंगे, जहाँ मेरे और आपके सिवा और कोई होगा ही नहीं। फिर कंस को खबर कैसे होगी ?

गर्गजी तैयार हो गये और उन्होंने इस तरह नामकरण किया। उन्होंने कहा—यह रोहिणी का लड़का बड़ा बलवान् होगा, इसलिए मैं इसका नाम बलभद्र रखता हूँ। यह सबको खुश रक्खेगा, इसमें सब रमेंगे, इससे इसका दूसरा नाम राम भी होगा। इसका तीसरा नाम संकर्षण भी होगा। तुम्हारे लड़के के अनेक नाम होंगे। यह भगवान् के समान सब बातों में श्रेष्ठ होगा। इसके कृष्ण, वासुदेव आदि बहुत से नाम होंगे।

इस तरह नामकरण करके गर्गजी चले गये।

कुछ और बड़े होने पर कृष्णचंद्रजी अपने साथी ग्वाल-बालों के साथ तरह-तरह के खेल

खेलने लगे। वह लड़कों के स्वभाव के अनुसार ऊधम भी करते थे। कभी-कभी गोपियों के घर सूने में जाकर माखन चुराते, खाते और लुटाते थे। गोपियाँ हँसती हुई यशोदा को उलाहना देने आती थीं, तो यशोदा उनके कहने पर विश्वास न करके उनको ही डाँट बताती थीं। कहती थीं, मेरे ही घर हजारों गायें हैं। दूध, घी, मक्खन मारा-मारा फिरता है। कन्हैया मेरे बार-बार कहने पर भी कभी नहीं खाता और तुम्हारे घर चोरी करने जाता है!

यशोदा के झिड़कने पर गोपियाँ यह कहकर हँसती हुई अपने घर लौट जाती थीं कि यह तो हमें खिझाने के लिए ऐसा करता है—मक्खन की इसे कुछ चाह नहीं, यह तो हम भी जानती हैं।

एक दिन बलदाऊ और उनके साथी ग्वाल-बालों ने खेलते-खेलते आकर यशोदा से कहा—मैया, आज कन्हैया ने अभी मिट्टी खाई है। इतने में यशोदा के पास कृष्णजी भी आ गये। यशोदा ने कृष्ण का हाथ पकड़कर डाँटते हुए कहा—क्यों रे कन्हैया, तू बड़ा ढीठ हो गया है। तूने आज निराले में मिट्टी क्यों खाई? कृष्ण ने कहा—मैया, मैंने तो मिट्टी नहीं खाई। जान पड़ता है, इन ग्वाल-बालों ने झूठ ही आकर तुझको बहका दिया है। यशोदा ने कहा—ये लड़के ही कहते तो मैं समझती इन्होंने झूठ कह दिया होगा। तेरा भाई बलदाऊ क्यों झूठ बोलेगा? कृष्ण ने कहा—अच्छा तू मेरी बात नहीं मानती तो ले मेरा मुँह देख ले।

इतना कहकर कृष्ण ने अपना मुँह फैला दिया। यशोदा को उस समय कृष्ण भगवान् के मुख के भीतर संसार के सभी प्राणी, आकाश-मण्डल और पहाड़-टापू-सागर-नदी-वन समेत सारी पृथ्वी देख पड़ी। भगवान् की यह अद्भुत लीला देखकर यशोदाजी सन्नाटे में आ गई। वह सोचने लगीं—यह मैं क्या देख रही हूँ? इस लड़के में कोई करामात है या यह मेरा ही भ्रम है? क्या साक्षात् भगवान् ने ही मेरी कोख में जन्म लिया?

कृष्ण ने जब देखा, माता को ज्ञान हो रहा है, तब उन्होंने हँस दिया। भगवान् की हँसी में माया का निवास है। बस, यशोदा फिर माया के वश होकर उन्हें अपना साधारण लड़का ही समझने लगीं।

एक दिन यशोदाजी अपने हाथ से ही दही मथने लगीं। उनके घर में काम-काज करनेवाली कई दासी थीं; पर उस समय वे सब और कामों में लगी हुई थीं। यशोदाजी मगन होकर दही मथ

रही थीं। परिश्रम करने के कारण उनके मुँह पर पसीने की बूँदें झलक आई थीं। इसी समय कृष्णचंद्र को भूख लगी और वह दूध पीने के लिए माता के पास आये। यशोदा ने प्यार से कृष्ण को गोद में लिटा लिया और उन्हें दूध पिलाने लगीं। इतने ही में चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनाकर आग पर गिरने लगा। औरतें दूध का आग में गिरना लड़के के लिए अनिष्ट मानती हैं, इसीसे यशोदा ने कृष्ण को जल्दी से छोड़ दिया और दूध उतारने के लिए दौड़ पड़ीं। कृष्ण का पेट भरा नहीं था, इसी बीच माता का यों छोड़कर चला जाना उन्हें बुरा मालूम पड़ा। उन्होंने क्रोध के मारे एक लोढ़े से दही का भरा हुआ माठ फोड़ डाला और झूठमूठ रोते हुए वहाँ से चल दिये। फिर भीतर कोठरी में जाकर रक्खा हुआ मक्खन खाने लगे। यशोदा ने लौटकर देखा, दही का माठ फूटा पड़ा है और घर भर में दही बह रहा है। कृष्ण का कहीं पता नहीं। वह समझ गईं कि यह कन्हैया की ही करतूत है। तब कृष्ण को इधर-उधर खोजने लगीं। देखा, आप कोठरी के भीतर ओखली औंधाकर उस पर चढ़े हुए छीके पर से न निकाल-निकालकर खा रहे हैं। साथ ही बार-बार इधर-उधर ताकते भी जाते हैं कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। वह एक छोटी-सी छड़ी लेकर दबे पैरों कृष्ण को पकड़ने के लिए चलीं। कृष्ण ने उनको आते देख लिया और चट भाग खड़े हुए। बहुत देर तक कृष्णचंद्र भागते फिरे, पर अंत को माता ने उन्हें पकड़ ही लिया। यशोदा ने कृष्ण को डराने के लिए इस ऊधम की यह सज़ा दी कि उन्हें रस्सी से काठ की भारी ओखली में बाँध दिया। कृष्ण ने जब देखा कि यशोदा घर के कामों में लग गई हैं तो आप ओखली को घसीटते हुए

घर के बाहर निकल गये। नंद के दर-वाजे पर दो बहुत पुराने अर्जुन के पेड़ लगे हुए थे। उन पेड़ों की जड़ एक ही थी। वे पेड़ पहले जन्म में वे कुबेर देवता के बेटे थे। उनका नाम नलकूबर और मणिग्रीव था। नारदजी का अनादर करने से उनके शाप से वे पेड़ हो गये थे। भगवान् ने उनको इस योनि से छुड़ाने का इरादा किया। वह उन पेडों के पास गये। उनके बीच में ओखली फँसाकर आपने जोर का एक झिटका दिया। पेड़ जड़ से उखड़कर धरती पर गिर पड़े। कुबेर के पुत्र शाप से छूटकर भगवान कृष्ण की स्तुति और प्रदक्षिणा करके अपने लोक को चले गये। पेड़ों

के गिरने की आवाज सुनकर नंद वगैरह दौड़े आये और कृष्ण को उनके पास ही कुशल से खड़े देखकर सबने ईश्वर को धन्यवाद दिया। नंद ने कृष्ण को बाँधने के लिये यशोदा को डाँटा और कृष्ण को गोद में उठाकर प्यार करके घर के भीतर ले गये। बेटा, बस आज इतना ही, कल और कथा सुनना।

दूसरे दिन बनारसी ने मनोहर से यों कहना शुरु किया—इस तरह व्रज में जब नित्य नये उत्पात होने लगे तब नंद के पास आकर सब गोपों ने कहा—नंदजी, यहाँ तो बड़े उत्पात हो रहे हैं। अब तक हमारे कृष्ण को भगवान् ने सब आफतों से बचाया है। अब हमें सावधान हो जाना चाहिए। हमारी सलाह यह है कि यहाँ से थोड़ी ही दूर पर वृन्दावन है, वहीं चलकर हम लोग रहें। वहाँ गायों के लिए खूब घास और चारा मिलेगा और लड़के भी बेखटके रहेंगे। नंदजी को सबकी यह सलाह पसंद आई। उन्होंने व्रज की बस्ती उजाड़ दी और सब गोपों के साथ वृन्दावन में जाकर रहने लगे। वहाँ कृष्णचन्द्र बड़े आनन्द से रहने लगे। नित्य

सवेरे बछड़े लेकर उन्हें चराने जाते और तरह-तरह के खेल खेलते, बाँसुरी बजाते और शाम को घर लौटकर आते थे।

एक दिन कंस का भेजा हुआ वत्सासुर नाम का राक्षस कृष्ण को मारने के इरादे से वृन्दावन आया। वह बछड़े का रूप रखकर कृष्ण के बछड़ों में मिल गया और कृष्ण को पटककर मार डालने का मौका देखने लगा। भगवान् से क्या छिपा है? वह तुरन्त दैत्य का इरादा जान गये। कृष्णचन्द्र अपने बछड़ों को पुचकारते और उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए धीरे धीरे उस दैत्य के पास पहुँचे और फुर्ती से उसके पिछले पैर पकड़कर घुमाकर इतने ज़ोर

से एक कैथे के पेड़ पर पटका कि तुरन्त वह दैत्य वहीं ठंडा हो गया। यह देखकर सब ग्वाल बालों को बड़ा अचरज हुआ और वे कृष्ण की तारीफ़ करने लगे।

एक दिन सब ग्वालबाल बछड़ों को पानी पिलाने के लिए ले गये। वे खुद भी प्यासे थे। पानी के किनारे उन्होंने एक बड़े भारी बगले को बैठा हुआ देखा। वह असल में पूतन

का भाई बकासुर नाम का राक्षस था और कंस के कहने से कृष्ण को मारने आया था। बालकों ने कभी इतना बड़ा बगला नहीं देखा था, इसलिए उसे देखकर वे बहुत डरे। इतने में कृष्ण भी वहाँ आ गये। कृष्णचन्द्र को देखते ही बकासुर चोंच फैलाकर दौड़ पड़ा। उसने आते ही कृष्ण को निगल लिया। यह देखकर सब बालक रोने और भागने लगे। भगवान् कृष्ण बकासुर के गले में जाकर आग की तरह उसके गले को जलाने लगे। बकासुर ने जलन के मारे उनको उगल दिया। अब बकासुर फिर चोंच उठाकर कृष्ण को मारने दौड़ा। अब की भगवान् ने बकासुर के पास आते ही फुर्ती से उसकी चोंच के दोनों हिस्सों को हाथों से पकड़ लिया और बीच से फाड़ डाला। इस तरह बकासुर भी मारा गया। यह हाल जब लड़कों ने शाम को घर आकर नंद आदि गोपों से कहा, तब सबको बड़ा अचरज हुआ। सब गोप कहने लगे—नंदरायजी, आप बड़े भागवान हैं। आप के लड़के को मारने के लिए जो आता है, वही भगवान् की कृपा से आप मर जाता है। नंद ने भी अपने मन में कहा—ऋषियों का कहना कभी मिथ्या नहीं होता। गर्ग ऋषि इस लड़के के बारे में जैसा कह गये थे, वैसा ही हो रहा है।

एक दिन सब लड़कों के साथ कृष्णचन्द्र वन में खेल रहे थे, इतने में कंस का सेवक अघासुर वृन्दावन में कृष्ण को मारने के इरादे से आया। वह एक बड़े भारी अजगर का रूप रखकर, मुँह फैलाकर, उसी राह में लेट रहा, जिधर कृष्ण वगैरह सब आते-जाते थे। कृष्णचन्द्र वन की शोभा देखते हुए पीछे रह गये और सब लड़के खेलते-कूदते आगे बढ़ आये। अघासुर पूतना और बकासुर का छोटा भाई था। उसने ग्वाल-

वालों के साथ कृष्णचन्द्र को आते देख होकर अपने मन में कहा—आज कृष्ण को मारकर भाई और बहन का बदला चुकाऊँगा।

अघासुर का शरीर चार कोस लंबा था। खुला हुआ मुँह एक पहाड़ की खोह-सा जान पड़ता था। फैली हुई जीभ सड़क-सी जान पड़ती थी। सब लड़के रास्ता समझकर उसके मुख के भीतर घुस गये। मगर अघासुर ने अपना मुँह नहीं बंद किया। वह तो कृष्ण को भी मारना चाहता था। कृष्ण जब तक उन लड़कों को उधर जाने से रोकें, तब तक वे घुस ही गये। कृष्ण बहुत पीछे रहने के कारण उन्हें बचा न सके। अब भगवान् ने यही निश्चय किया कि मैं भी इस राक्षस के मुख के भीतर चला चलूँ, तभी ये बालक बच सकेंगे और यह राक्षस भी मारा जा सकेगा। यह सोचकर भगवान् कृष्ण भी उसके मुँह में चले गये। अब राक्षस ने झट मुँह बंद कर लिया। पर वह कृष्ण के तेज को नहीं जानता था। उसे क्या मालूम कि कृष्ण को मार डालना कोई सहज काम नहीं है। कृष्ण को राक्षस के मुँह में जाते देखकर श में सब देवता हाय-हाय करने लगे। तब कृष्ण ने अघासुर के मुँह के भीतर अपने शरीर को बढ़ाना शुरू किया। भगवान् ने अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि अघासुर का साँस लेना रुक गया। उसका दम घुटने लगा। अब वह कृष्ण को उगल भी नहीं पाता था। शीशी के काग की तरह भगवान् का शरीर उसके मुँह में डट गया

था। अन्त को उसके प्राण ब्रह्माण्ड को फोड़कर बाहर निकल गये। अघासुर को कृष्ण ने जब मारा, तब देवता लोग आकाश से उनपर फूल बरसाने लगे। सब ग्वाल-बाल और बछड़े अजगर के मुँह में जाकर मर गये थे। कृष्ण ने अमृत बरसानेवाली दृष्टि से देखकर उन सबको

जिला दिया। अघासुर का वह शरीर वृन्दावन में पड़ा-पड़ा सूख गया और ग्वाल-बाल वर्षा-ऋतु में पानी बरसने के समय उसी के भीतर खेल खेला करते थे। यह लीला भगवान् ने पाँच वर्ष की उमर में की थी; मगर ग्वाल-बालों ने एक साल बाद वृन्दावन में आकर अपने घरों में कहा कि आज कृष्ण ने एक अजगर को मारकर हम सबको बचाया है।

मनोहर—पिताजी, यह बात मेरी समझ में नही आई। एक साल पहले की घटना को बालकों ने आज की कैसे बताया?

बनारसी—बेटा, मैं आप ही यह बात तुमको समझानेवाला था। तुमने पूछा, यह और अच्छा हुआ। इससे जान पड़ता है, तुम खूब मन लगाकर कथा सुनते हो। जिस दिन कृष्णचन्द्र ने अघासुर को मारा, उस दिन सब लडके और कृष्णचन्द्र भी अपने-अपने घरों से तरह-तरह के भोजन अपनी रुचि के माफिक बनवाकर साथ लाये थे। सबने वन में ही भोजन करने का पहले दिन वादा किया था। अघासुर को मारने के बाद सब ग्वाल-बालों के साथ कृष्णजी यमुना के किनारे गये और सब साथियों से कहा—भाई, दोपहर हो गई, अब तो भूख लगी है। यहीं बालू पर बैठकर हम लोग भोजन करें। बछड़ों को हाँक दो; ये भी पानी पियें और हरी-हरी घास चरें। बालकों ने कृष्ण की इच्छा के अनुसार ही सब काम किया।

अब भगवान् बीच में बैठ गये। उनके चारों ओर घेरा बाँधकर सब लड़के बैठे। प्रेम के वश भगवान् साथियों से उनका जूठा भोजन माँग-माँगकर खाते और उन्हें अपना भोजन खिलाते थे। इतने में सब बछड़े दूर निकल गये। बछड़ों को पास न देखकर लड़के खड़े हो-होकर उन्हें देखने लगे। तब भगवान् ने कहा—जान पड़ता है, हरी-हरी घास के लालच से बछड़े कुछ दूर निकल गये हैं। तुम घबराओ नही, यहीं बैठकर भोजन करो; मैं अभी उन्हें हाँककर लिये आता हूँ। यों कहकर कृष्णचन्द्र बछडों को खोजने चले गये।

इधर ब्रह्माजी आकाश में खडे सब लीला देख रहे थे। भगवान् की माया बड़े-बड़ों को चक्कर में डाल देती है। ब्रह्माजी पर भी उसका जादू चल गया। आज ही अघासुर के वध में वह कृष्ण की महिमा देख चुके थे; लेकिन ग्वालों की जूठन खाते देखकर फिर उन्हें यह संदेह हुआ कि यह कैसे भगवान् हैं, जो ग्वालों की जूठन खाते हैं! बस, वह भगवान् कृष्ण की परीक्षा लेने के

लिए अपने लोक से पृथ्वी पर आकर पहले सब बछड़ों को उठा ले गये और उसके बाद ग्वाल-बालकों को भी उड़ा दिया। कृष्ण ने वन में बछड़ों को न पाया। लौटकर देखा तो बालक भी सब नदारत। भगवान् तो सर्वज्ञ हैं—सब जानते हैं। वह चट समझ गये कि यह ब्रह्माजी का काम है। तब कृष्ण ने ब्रह्मा को छकाने के लिए और गउओं तथा गोपियों के सन्तोष के लिए जितने और जैसे बछड़े थे, ग्वाल-बाल थे, उतने ही और वैसे ही रूप रख लिये। शाम को उसी तरह सब लड़के और बछड़े अपने-अपने घरों में गये। इसी तरह पृथ्वी पर एक वर्ष बीत गया; पर ब्रह्मलोक का एक पल (जितनी देर में पलक झपकती है, उतना समय) भी नहीं बीता।

ब्रह्मा ने अपने लोक से लौटकर फिर देखा तो वृन्दावन में सब बालक और बछड़े मौजूद। ब्रह्मा बहुत चकराये। वह अभी अपने लोक में सब बालकों और बछड़ों को छोड़ आये थे; अब ये यहाँ कहाँ से आये। ब्रह्मा फिर अपने लोक को गये, वहाँ भी बछड़े और बालक उनकी माया में अचेत पड़े थे। फिर पृथ्वी पर आकर देखा तो यहाँ भी बालक और बछड़े मौजूद थे। को बड़ा अचरज हुआ। भगवान् ने ब्रह्मा को अपनी महिमा दिखाने के लिए अब और एक लीला की। ब्रह्मा ने देखा, पृथ्वी पर के सब बालक और बछड़े विष्णुरूप हो गये हैं। भगवान् ने अपनी माया का पर्दा ब्रह्मा के आगे से हटा लिया। अब ब्रह्मा को होश आया। उन्होंने समझ लिया कि ईश्वर की ईश्वरता पर संदेह करके उनकी परीक्षा लेने का घोर अपराध

उनसे बन पड़ा है। ब्रह्माजी अपने लोक से बछड़े और बालक ले आये और कृष्णचन्द्र के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी। भगवान् ने प्रसन्न होकर उनको क्षमा कर दिया। पहले जो कह आये

हैं कि ग्वाल-बालों ने एक साल बाद घर आकर अपने मा-बापों से यह कहा कि "आज कृष्ण ने एक अजगर को मारकर हमें बचाया है," इसका कारण यही था कि वे एक साल तक ब्रह्मलोक में पड़े रहे और जब लौटकर घर आये तो उन्हें यही जान पड़ा कि आज ही कृष्ण ने अघासुर को मारा है और यही बात उन्होंने अपने घर में कही।

एक दिन वृन्दावन में विहार करते हुए कृष्ण-बलभद्र के पास सब ग्वाल-बालों ने आकर कहा—यहाँ ताल-वन में पके हुए ताड़ के फल बहुत से हैं। उनका स्वाद बड़ा अच्छा होता है। उनकी महक दूर से ही मन को लुभा लेती है। पर वहाँ एक गधा, जिसे धेनुकासुर कहते हैं—रहता है। वह बड़ा लागन है। अगर कोई भूले से फलों के लालच में पड़कर उस वन में चला जाता है, तो उसे वह असुर मार डालता है। उन फलों के खाने को हमारा जी चाहता है। अगर आप उधर चलें तो हम बेखटके उन फलों को तोड़ सकते हैं।

कृष्ण और बलदाऊ अपने मित्रों की इच्छा पूरी करने के लिए तुरन्त तालवन को चल दिये। बलदेव ने वन के भीतर घुसकर एक बड़े से ताड़ को पकड़कर हिलाया तो बहुत से पके

हुए फल पृथ्वी पर बरस पड़े। इतने में धेनुकासुर क्रोध से भरा हुआ दौड़ा आया। उसने एक दुलत्ती बलदेव की छाती पर चलाई। बलदेव ने उस वार को बचाकर उसके पिछले पैर पकड़ लिये और पृथ्वी पर पटककर उसे मार डाला। बस, ग्वाल-बालों ने जी भरकर खूब फल खाये।

एक दिन बलदाऊ को घर में छोड़कर कृष्णचन्द्र अकेले ही सब ग्वालों के साथ गऊ चराने वन को गये। दोपहर के समय सब ग्वाल प्यासे हुए, गउओं को भी प्यास लगी। वहाँ से निकट जो घाट था, उसमें कालिया नाम का नाग कुण्ड के भीतर रहता था। उस नाग के विष से वहाँ का पानी जहरीला हो रहा था। उस नाग के विष की प्रचंड झार ऐसी थी कि कालीदह के ऊपर आकाश में उड़नेवाले पक्षी भी मरकर नीचे गिर पड़ते थे। उस दिन कृष्ण ने अपने मन में सोचा कि इस काल रूप नाग को यहाँ से निकाल देना चाहिए, जिसमें यहाँ की यमुना का पानी पीने लायक हो जाय और जीवों की जान बचे। ग्वाले गउओं को लेकर कृष्ण के पहले ही उस घाट में चले गये। पानी पीते ही सब ग्वाल और गउएँ वहीं ढेर हो गये। कृष्णचन्द्र ने पीछे से पहुँचकर जब यह हाल देखा तो उन्होंने अपनी महिमा से उन सब को फिर जिला दिया। उसके बाद कृष्णचन्द्र जी किनारे पर लगे हुए एक ऊँचे से कदम के पेड़ पर चढ़ गये और ऊपर से यमुना के भीतर कूद पडे। यमुना का जल ज़ोर से उछला और कालिया नाग क्रोध में भरकर कुण्ड के बाहर निकल आया। कृष्ण को

ापने घर में घुसने देखकर कालिया नाग क्रोध से उनके शरीर में लिपट गया और बार-बार

काटने लगा। पर भगवान् पर उसके विष का क्या असर हो सकता था।

उधर कृष्ण के साथी ग्वाल-बाल कृष्ण को मौत के मुँह में जाते देखकर रोते हुए नंद-यशोदा के पास दौड़े गये। खबर पाकर नंद-यशोदा और सब गोप-गोपियाँ रोते-कलपते वहाँ दौड़े आये। कृष्ण को साँप की लपेट में बँधा हुआ देखकर सब उनके जीवन से निराश होकर हाय-हाय करने लगे। गउएँ और बछड़े कृष्ण के लिए चिल्लाने और आँसू बहाने लगे। बलदाऊ कृष्ण की महिमा को जानते थे, इसलिए वह निश्चिंत थे, और सबको धीरज बँधाते थे। कृष्ण ने जब देखा कि सब व्रजवासियों के साथ नंद और यशोदा व्याकुल हो रहे हैं, तब उन्होंने अपने शरीर को योग-माया के बल से इतना मोटा कर लिया कि कालिया नाग उन्हें अपने बंधन में नहीं रख सका। उसके बंद-बंद टूटने लगे और उसने कृष्ण को छोड़ दिया। इसके बाद वह फन उठाकर कृष्णचन्द्र पर चोट करने के लिए फिर चला। कृष्ण भी कुछ देर तक उसको खेलाते रहे। उसके बाद मौका पाते ही वह उचककर उसके फन पर सवार हो गये और बाँसुरी बजाकर उसके सिर पर तांडवनृत्य करने लगे। साँप भगवान् के चरण की चोटों से शिथिल होने लगा। उसके मुँह से खून बहने लगा और वह बेदम हो गया। जब नाग की स्त्रियों ने देखा, उनका पति अधमरा हो गया है, तब वे हाथ जोड़कर कृष्ण की स्तुति करने लगीं। कालिया नाग भी भगवान्

की खुशामद करने लगा। तब भगवान् ने प्रसन्न होकर नाग से कहा कि तू यमुना से निकलकर रमणकद्वीप को चला जा। तुझसे गरुड़ से वैर है। तू उन्हीं के डर से यहाँ छिपा हुआ है, यह मैं जानता हूँ। मगर अब मेरे पैरों के निशान तेरे सिर पर बन गये हैं, इसलिए गरुड़ तुझे नहीं मारेंगे। भगवान् को प्रणाम करके नाग उसी घड़ी वहाँ से निकल गया और उसी दिन से काली-दह का जल सबके पीने लायक हो गया। बेटा, काले नाग के सिर पर सफेद रंग के अब भी भगवान् के चिह्न देख पड़ते हैं। ये काले नाग कालिया के ही वंश के हैं। उस दिन रात हो गई, घर दूर था। इसलिए सब लोगों ने वहीं वन में रहकर रात बिताने का निश्चय कर लिया। रात को रेंड़ के वन में अचानक आग लग गई और हवा के जोर से चारों ओर फैलने लगी। सब गोप जग पड़े और अपने को आग से घिरा हुआ पाकर कृष्णचन्द्र को पुकारने लगे। कृष्ण ने सबसे कहा—घबराओ नहीं, मैं अभी इस आग को बुझाये देता हूँ। इतना कहकर भगवान् ने अपनी महिमा से पलभर में उस आग को बुझा दिया। सवेरे उठकर हँसी-खुशी वृन्दावन को लौट आये।

एक दिन कृष्णचन्द्र सब ग्वालों के साथ वन में गायें चरा रहे थे। इतने में कंस का भेजा हुआ प्रलम्बासुर कृष्ण को मारने के लिए व्रज में आया। वह एक गोप का रूप रखकर गोपों में मिल गया। भगवान् ने उसे देख लिया और उसका इरादा ताड़ गये। तब उसे मारने के लिए भगवान् ने एक उपाय सोचा। कृष्ण और बलराम ने लड़कों के दो दल बनाये और फल-बुझौवल का खेल खेलने लगे। उसमें जो दल हारता था, वह दूसरे दल को चढ्ढी देता था। श्रीकृष्ण ने जान बूझकर अपने दल को हरा दिया। वह असुर भी कृष्ण के ही दल में शामिल था। अब हारे हुए लोग जीते हुओं को अपने कंधे पर चढ़ाकर एक ख़ास जगह तक, जो पहले ही से तय कर ली गई थी, ले जाने लगे।

भगवान् ने उस दैत्य से बलदेव को चड्ढी देने के लिए कहा। वह बलदेव को कंधे पर लादकर ले चला। बलदेवजी शेषनाग का अवतार थे और बड़े बली भी थे। वह असुर उन्हें लेकर जब दूर निकल आया, तब उसने अपना असली राक्षस का भयंकर रूप प्रकट कर दिया। उसे देखकर पहले तो बलदेव कुछ अकचकाये, लेकिन उसका इरादा समझकर तुरंत ही सँभल गये। बलदेव ने कसकर जोर से उसके सिर पर एक ऐसा घूँसा मारा कि उसका सिर फूट की तरह खिल गया। वज्र के लगने से जैसे कोई पहाड का शिखर टूटकर गिर पड़े, वैसे ही वह दैत्य भी मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने में ग्वाल बाल और कृष्णचन्द्र भी वहाँ पहुँच गये। बलदेव के बल की सब लोग सराहना करने लगे। उसी दिन गउएँ हरी घास के लालच से बहुत दूर जंगल में निकल गईं। उन्हें खोजते हुए गोप भी वहाँ पहुँचे। इतने में बाँसों की रगड़ से वन में दावानल जल उठी। देखते ही देखते चारों ओर आग फैल गई। सब गोप और गऊ-बछडे आग से घिर गये। तब कृष्ण ने सबसे

आँखें मूँद लेने को कहा। सबके आँख मूँद लेने पर भगवान् योगमाया के बल से उस आग को पी गये। जब भगवान् ने सबसे आँख खोलने को कहा, तब सबने आँख खोलकर अचरज के साथ अपने को भांडीर नाम के बरगद के पेड़ के पास खड़ा पाया। भांडीरवट वृन्दावन की बस्ती के पास ही था।

बरसात और शरद् की ऋतु बीत जाने पर हेमंत ऋतु लगी। हेमंत अगहन से लग जाती है। अगहन के महीने में गोपों की क्वाँरी लड़कियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत महीना-भर करने का नियम लेकर बहुत तड़के नित्य यमुना नहाने जाने लगीं। वे सब नहा-धोकर कात्यायनी देवी की पूजा करके नित्य उनसे यही प्रार्थना किया करती थीं कि भगवती, आप हम पर प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिए कि नन्दनन्दन कृष्ण ही हमारे पति हों। जब महीना पूरा होने को आया, तब भगवान् ने एक दिन उनके प्रेम की परीक्षा लेनी चाही। भगवान् बहुत तड़के यमुना के किनारे पहुँच गये। गोपकुमारियाँ सब कपड़े उतारकर किनारे पर रखकर यमुनाजल में नहा रही थीं। कृष्ण ने वहाँ पहुँचकर चुपके से उनके कपडे समेट लिये और वह पास ही के एक ऊँचे कदम के पेड़ पर चढ गये। इधर जब गोपियाँ नहाकर जल के बाहर निकलने लगीं, तब उन्हें किनारे पर अपने कपड़े नहीं देख पड़े। इतने में उनकी नजर उस कदम पर पड़ी, जिस पर भगवान् कृष्ण वस्त्र लिये बैठे थे। तब गोपियों ने कहा—हे नंदनंदन, हम जाड़े से काँप रहीं हैं, हमारे वस्त्र हमको दे दो। हम तुम्हारी दासी हैं, हम पर कृपा करो। तब कृष्ण ने कहा—देखो सखियो, जल के भीतर नंगे नहाना पाप है। इससे जल के देवता वरुण नाराज होते हैं। अब तुम दोनो हाथ जोडकर वरुण से अपना अपराध माफ कराओ, नहीं तो तुम्हारा व्रत निष्फल हो जायगा। कृष्ण को गोपियाँ बहुत मानती थीं। उन्होंने हाथ जोड़कर वरुण को प्रणाम किया। तब कृष्ण ने कहा—अब बाहर निकलकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ। गोपियों ने कृष्ण का कहा मान लिया और अपने वस्त्र लेकर पहने। तब प्रसन्न होकर कृष्णचन्द्र ने उनसे कहा—तुम्हारा व्रत आज पूरा हो गया। तुमने जिस कामना से यह व्रत किया, उसे मैं तुम्हारे साथ शरदपूनो की रात में रास रचाकर पूरा करूँगा। सब गोपों की लडकियाँ प्रसन्न चित्त से अपने-अपने घरों को गईं। कृष्णचन्द्र भी अपने सखा गोपों को साथ लेकर वन में गउएँ चराने चले गये।

दोपहर के बाद ग्वालों को भूख लगी। उन सबने कृष्ण से कहा—कन्हैया, हमें भूख लगी है। घर यहाँ से दूर है; क्या करें? कृष्ण ने कहा—यहाँ पास ही कुछ वेदपाठी ब्राह्मण स्वर्ग पाने

के लिए यज्ञ कर रहे हैं। तुम यज्ञशाला में जाकर उन ब्राह्मणों से कहो कि यहाँ कृष्ण और बलदाऊ आये हैं। उन्हें भूख लगी है। आप कुछ खाने की सामग्री दें।

उनमें से कुछ ग्वालों ने ब्राह्मणों के पास जाकर कृष्ण की आज्ञा के अनुसार भोजन माँगा। मगर ब्राह्मण कृष्ण की महिमा को नहीं जानते थे। वे उन्हें एक साधारण ग्वाला समझते थे।

इसलिए उन्होंने ग्वालों की बात अनसुनी कर दी। कहा कि यज्ञ की सामग्री किसी को देने से जूठी हो जाती है, देवतों के काम की नहीं रहती। हमारे पास उसके सिवा और अन्न नहीं है। ब्राह्मणों से यह रूखा उत्तर पाकर निराश होकर गोप फिर कृष्ण के पास लौट आये। उन्होंने कृष्ण से सब हाल कहा। तब भगवान् कृष्ण ने उनसे कहा—अच्छा, अब तुम उन ब्राह्मणों की स्त्रियों के पास जाकर मेरा नाम लेकर भोजन माँगो। उनसे तुमको जरूर भोजन मिल जायगा; क्योंकि वे मेरी परम भक्त हैं।

गोप लोग अब की यज्ञशाला में उन ब्राह्मणों की स्त्रियों के पास गये और उनसे कृष्ण का नाम लेकर भोजन माँगा। वे ब्राह्मणियाँ दिन-रात कृष्ण का ध्यान किया करती थीं। उन्हें कृष्ण के दर्शन

की बड़ी लालसा थी। कृष्ण को अपने घर के पास ही आया हुआ जानकर वे थालियों में तरह-तरह के भोजन लेकर कृष्ण के दर्शनों को तुरत चल खड़ी हुईं। उन्होंने भगवान् के निकट जाकर उनके दर्शन किये और फिर भगवान् की आज्ञा से अपने घरों को लौट गईं। भगवान् ने अपनी भक्त ब्राह्मणियों की लाई हुई भोजन की सामग्री से ग्वालों की भूख मिटाई और आप भी जी भरकर खाया। बस, आज इतना ही, कल फिर आगे की कथा सुनना।

सब व्रजवासी गोप लोग साल में एक दिन इन्द्र की पूजा किया करते थे। इस साल जब वह दिन निकट आया तब, वृन्दावन में इन्द्र की पूजा की तैयारियाँ होने लगीं। इन्द्र को अपनी महिमा का बड़ा अभिमान हो गया था, और यह बात सब के मन की जाननेवाले कृष्ण भगवान् से छिपी नहीं थी। कृष्ण ने अपने मन में यह सोचा कि इन्द्र का घमण्ड किसी तरह तोड़ना चाहिए। भगवान् का नाम मदभंजन है। वह किसी का—अपने भक्त का भी घमण्ड नहीं रखते। भगवान् यह उसी की भलाई के लिए करते हैं; क्योंकि जिसे घमण्ड ने घेरा, उसकी कुशल नहीं।

कृष्ण ने एक दिन नंद के पास बैठे हुए गोपों के निकट जाकर पूछा—पिताजी, आप यह काहे की तैयारी कर रहे हैं। यह पूजा किसकी होगी? कौन करेगा? इसका फल क्या होगा?

नंद ने कहा—बेटा, भगवान् इन्द्र पानी बरसाते हैं। उसी से अन्न और घास पैदा होती

है। हम खेती करते और गउएँ पालते हैं। इन्द्र की कृपा के विना काम नहीं चल सकता। इसी से हम हरसाल उनकी पूजा करते हैं।

कृष्ण ने कहा—पिताजी, मैं तो जानता हूँ कि हर एक प्राणी को, जैसा वह कर्म करता है वैसा ही फल मिलता है। अगर कोई ईश्वर है तो वह कर्म के माफिक ही फल देता है फिर पानी तो वरसात में वरसेगा ही, जैसे गरमी और जाड़ा होता है। उसमें इन्द्र क्या करते हैं? अगर आपको किसी की पूजा करनी ही है तो गिरिराज गोवर्धन की पूजा कीजिए, जो हमारी गउओं को चारा देते हैं। मेरी समझ में तो यह आता है कि जो सामग्री आप लोगों ने इन्द्र की पूजा के लिए जमा की है, उससे अग्नि, गऊ, ब्राह्मण और प्रत्यक्ष देवता गिरिराज की पूजा करो। ब्राह्मणों से होम कराओ, ब्राह्मणों को भोजन कराओ, उन्हें गोदान और दक्षिणा दो; गरीब कंगालों को भरपेट खिलाओ, कपड़े पहनाओ। गउओं और बछड़ों को उत्तम आहार देकर संतुष्ट करो। फिर गिरिराज का भोग लगाओ।

भगवान् कृष्ण की सलाह सबके मन भा गई। इन्द्र की पूजा के दिन सबने कृष्ण के कहने के अनुसार सब काम किये। इन्द्र की पूजा न करके उन्होंने गिरिराज गोवर्धन की पूजा की, होम कराया, गउओं और कंगालों को खिलाया-पिलाया, खूब धन, अन्न और वस्त्र बाँटे। उसके बाद सबने पकवान, मिठाई वगैरह गोवर्धन के आगे रखकर उनका भोग लगाया और भक्ति के साथ गोवर्धन की प्रदक्षिणा की। भगवान् कृष्ण सबको विश्वास दिलाने के लिए गिरिराज के ऊपर दूसरे रूप से प्रकट हुए और भोग की सामग्री खूब खाई। कृष्ण के कहने से सबने उस रूप को प्रणाम किया। फिर भोजन करके गोप लोग कृष्ण के साथ वृन्दावन को लौट गये।

उधर इन्द्र ने अपना अनादर होते देखकर बड़ा कोप किया। वह कहने लगे—अहो, इन ग्वालों को धन, ऐश्वर्य का बड़ा घमण्ड हो गया है। तभी तो इन्होंने एक साधारण बालक के बहकाने से मेरी पूजा उठा डाली। अच्छा, अब मैं इनको इसका मज़ा चखाता हूँ। यों अपने मन में कहकर इन्द्र ने प्रलयकाल में लगातार सौ वर्ष तक मूसलधार पानी वरसाकर पृथ्वी मण्डल को डुबा देनेवाले संवर्तक नाम के मेघों को आज्ञा दी कि तुम अभी जाकर व्रज के ऊपर घोर वर्षा करो और उसे डुबा दो। फिर उन्चास पवनों से कहा—तुम एक साथ चलकर व्रज को तहसनहस कर दो, और खूब ओले वरसाओ। मैं भी अभी ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता हूँ।

इन्द्र की आज्ञा पाकर मेघ व्रज के ऊपर छा गये और जोर से पानी वरसाने लगे। पानी के साथ बड़े-बड़े पत्थर भी गिरने लगे। उन्चास पवनों ने ऐसी आँधी चलाई कि पेड़ उखड़-उखड़कर

दूर दूर पर जाकर गिरने लगे। मकानों की छतें उड़ गईं। बिजली जोर से चमकने लगी। सारे व्रजवासी प्राणों के भय से व्याकुल होकर त्राहि-त्राहि करने लगे। उस समय सब गोप और गोपियाँ हाहाकार करते हुए कृष्ण की शरण में गये। उन्होंने कहा—नंदनंदन, इन्द्र के कोप से हमें बचाओ। कृष्ण ने हँस-कर कहा—तुम लोग डरो नहीं। चलो, गोवर्धन देवता हमारी रक्षा करेंगे। इतना कह-कर कृष्णचन्द्र ने अपने योग-बल से गोवर्धन पर्वत को उसी तरह बाएँ हाथ से ऊपर उठा लिया, जैसे कोई लड़का धरती के फूल [इसे कुकुर-मुत्ता भी कहते हैं। यह छाते की तरह का सफेद-सफेद होता है और अक्सर बरसात में जमीन पर आप ही आप उगता है] को खेलते-खेलते उखाड़ ले। गोवर्धन को उठाकर कृष्ण ने सबसे कहा—आओ, तुम सब लोग गउओं को और अपने सब सामान को लेकर इसी पर्वत के नीचे आ जाओ। अब इन्द्र तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सब गोप, गोपी गोवर्धन के नीचे आ गये और कृष्ण के इस योगबल को अचरज के साथ देखने लगे। कृष्ण की महिमा देखकर इन्द्र भी चकित रह गये। उन्होंने सोचा, अरे मुझसे बड़ी भूल हुई। यह तो साधारण बालक नहीं, साक्षात् भगवान् हैं। भगवान् के सिवा ऐसा अद्भुत काम कौन कर सकता है? सात दिन तक इतने बड़े पहाड़ को बाएँ हाथ पर लिये रहना कोई साधारण बात नहीं है। सात दिन तक लगातार मूसलधार पानी बरसाकर भी मैं व्रजवासियों को नष्ट नहीं कर सका, यह सब कृष्ण भगवान् की ही महिमा है।

उसी समय इन्द्र की आज्ञा से सब बादल हट गये। आकाश साफ हो गया, सूरज निकल आये। तब भगवान् कृष्ण की आज्ञा से सब गोप, गोपी-गोधन सहित वृन्दावन को गये। सब

व्रजवासी कृष्ण को कोई देवता समझकर उनकी बड़ाई करने लगे। बलदाऊ और नंद ने कृष्ण को गले से लगा लिया।

गोप लोग कृष्ण की महिमा को जानते नहीं थे, इसलिए कृष्ण के ऐसे अलौकिक कामों को देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। एक दिन सब मिलकर नंदजी के पास आये और कहने लगे—नंदरायजी, एक बात हम तुमसे पूछना चाहते हैं। आशा है, तुम कुछ बुरा न मानोगे। कृष्ण ने बचपन से अब तक जो-जो काम किये हैं, उन्हें कोई ग्वाले का लड़का कभी नहीं कर सकता। इसे मारने के लिए बड़े-बड़े दानव आये और वे सब इसके हाथ से मारे गये। इसने सात वर्ष की अवस्था में अभी गोवर्धन पहाड़ को बाएँ हाथ पर उठा लिया और सात दिन तक उसे लिये खड़ा रहा। यह बात ऐसी है कि जिसने अपनी आँखों से नहीं देखा, वह कभी विश्वास नहीं कर सकता। इन बातों से हमें संदेह हो रहा है कि यह लड़का तुम्हारा नहीं है।

नन्द ने कहा—अभी तक कंस के भय से मैंने यह बात प्रकट नहीं की थी। अब तुम लोग पूछ रहे हो तो मैं कहता हूँ। पर देखो, यह बात बाहर फैलने न पावे। कुछ दिन हुए, गर्गाचार्य आये थे। उनसे मैंने इन बालकों के नाम रखने की प्रार्थना की। तब उन्होंने बतलाया कि नंद, तुम्हारा बालक बड़ा प्रतापी होगा। यह विष्णु भगवान् के समान पराक्रमी और बलवान् है। दुष्टों को मारने के लिए और साधुओं की रक्षा के लिए इसने अनेक बार पृथ्वी पर जन्म लिया है। यह किसी से नहीं हारेगा और ऐसे-ऐसे काम करेगा, जिनको देखकर लोग चकित रह जायँगे। यों कहकर गर्गजी अपने आश्रम को चले गये। तभी से कृष्ण को मैं नारायण भगवान् का अंश मानता हूँ।

नन्द के यों बतलाने पर गोपों को सन्तोष हो गया और वे प्रसन्न होकर अपने-अपने घरों को चले गये। अब इधर का हाल सुनो। इन्द्र के मन से जब यह घमण्ड जाता रहा कि मैं ही त्रिलोकी का नाथ हूँ, तब वह एकान्त में कृष्ण को पाकर उनके पास आये और उनके पैरों पर सिर रखकर अपने अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। इन्द्र ने कृष्ण की स्तुति की। तब भगवान् ने हँसकर कहा—इन्द्रदेव, तुम सब देवता मेरा ही रूप हो। तुमको ठीक राह पर लाने के लिए, तुम्हारी भलाई के लिए ही मैंने तुम्हारे घमण्ड को दूर करना उचित समझा। अब अपने लोक को जाओ। इसके बाद इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग की सुरभी नाम की कामधेनु गऊ ने अपने थनों के दूध से कृष्ण का अभिषेक किया और इन्द्र ने कृष्ण का गोविन्द नाम रक्खा।

एक एकादशी को नन्दजी ने निर्जल व्रत किया। दूसरे दिन द्वादशी बहुत ही थोड़ी थी,

और निर्जला एकादशी व्रत का पारण द्वादशी में ही किया जाता है। पारण का अर्थ है कुछ खाकर व्रत को समाप्त करना। नन्द सूर्य उदय होने के पहले ही यमुना में नहाने गये। वह आसुरी-वेला कहलाती है और उस समय पानी में घुसना मना है। आसुरी वेला में पानी में घुसने के कारण वरुण का सेवक नन्द को जलमार्ग से वरुण के पास ले गया। इधर नन्द के साथ जो गोप नहाने गये, वे रोते कलपते कृष्ण के पास आये और बोले—कृष्ण, नन्दजी तो यमुना में डूब गये। कृष्ण बोले—घबराओ नहीं, मैं अभी पिताजी को लिये आता हूँ। यों कहकर कृष्णचन्द्र उसी समय वरुण के लोक को गये। वरुण ने तो इसीलिए नंद को रोक ही लिया था कि इसी बहाने कृष्ण के दर्शन हो जायँगे। कृष्ण को देखते ही वरुण उठ खड़े हुए और कृष्ण की पूजा
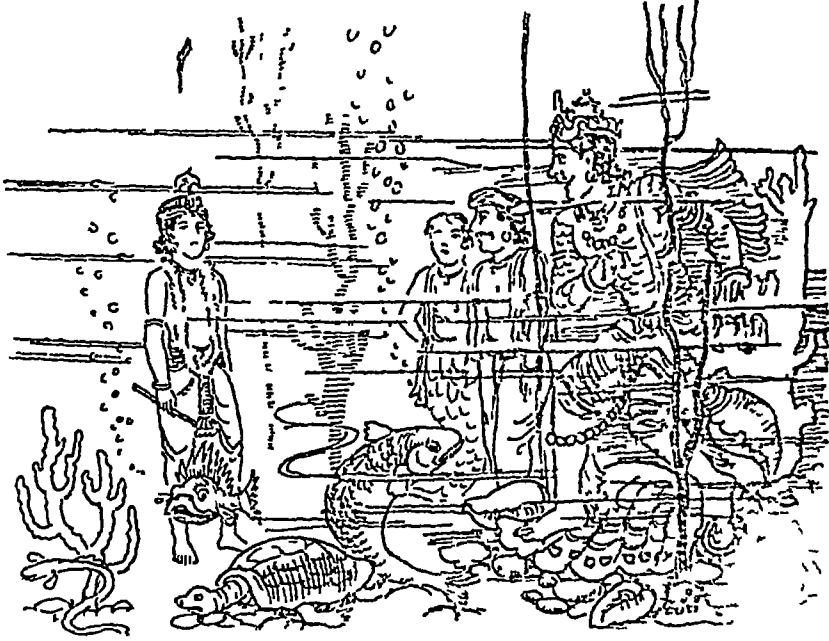
करके उन्होंने कहा—भगवान्, मेरे अहोभाग्य हैं, जो आज आपके दर्शन मुझे मिले। यह आपके पिता हैं, इन्हें आप ले जाइए। मेरे सेवक से अनजाने में यह अपराध बन पड़ा है। इसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। कृष्णजी अपने पिता को लेकर वृन्दावन को चले आये।

इसके बाद शरद ऋतु आई। भगवान् कृष्ण ने गोपकुमारियों की कामना पूरी करने के लिए रास रचाने की इच्छा की। वह शरदपूनो की रात को वृन्दावन में यमुना के किनारे जाकर वंशी

बजाने लगे। उस वंशी की तान को सुनकर गोपियाँ घर के काम-काज छोड़कर वन की ओर दौड़ पड़ीं। जब वे कृष्ण के पास पहुँचीं, तब कृष्ण ने उनका स्वागत करके कहा—सखियो, तुम आ गईं, यह अच्छा हुआ। तुमने वन की शोभा देख ली, अब अपने घरों को लौट जाओ। कृष्ण के ये वचन सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कहा, प्यारे! हमको निराश न करो। हम बड़ी आशा से आई हैं। आपने हमको जो वचन दिया है, उसे पूरा करने का अब अवसर आ गया है। आप ही हमारे सब कुछ हैं। पति, पिता, भाई आदि हमें आपसे बढ़कर प्यारे नहीं हैं। हम आपको छोड़कर अब किसके पास जायँ? जब भगवान् ने उनके प्रेम की परीक्षा ले ली, तब उनके साथ रास रचाया। सब गोपियाँ कृष्ण के साथ नाचने-गाने लगीं। इतने में गोपियों के मन में यह अभिमान उत्पन्न हुआ कि कृष्ण हमको बहुत चाहते हैं। तब भगवान् उनका अभिमान मिटाने के लिए उनके बीच से गायब हो गये। अब तो गोपियाँ कृष्ण के वियोग में पागल-सी हो उठीं। वे वन में इधर-उधर भटकती हुई हर एक पेड़ से, नदी से, पर्वत से कृष्ण का पता पूछने लगीं। अन्त को थककर वे एक जगह बैठ गईं और कृष्ण की लीलाओं की नकल करने लगीं। गोपियों की यह दशा देखकर भगवान् को दया आ गई। वह उनके बीच फिर प्रकट हो गये। भगवान् को पाकर सब गोपियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। जैसे मुर्दा शरीर में जान आ जाय, वही दशा उनकी हुई। भगवान् ने फिर रास रचाकर उनको सन्तुष्ट किया। सवेरा होने के पहले रास बंद हुआ, सब गोपियाँ अपने-अपने घरों को गईं।

इसके बाद नन्द आदि गोप एक समय अंबिका देवी के मेले में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देवी की पूजा की और रात को वहीं टिक रहे। रात के समय एक अजगर ने आकर नन्द का पैर निगल लिया। नन्द के चिल्लाने पर सब गोप दौड पड़े। वे जलती हुई लकड़ियों से उस अजगर को दागने लगे, जिसमें वह नन्द को छोड दे। पर उस अजगर ने नन्द के पैर को न छोड़ा। इतने में कृष्ण ने आकर अपने पैर से उस अजगर को छू दिया। कृष्ण का पैर लगते ही वह अजगर-शरीर को छोड़कर एक परम सुन्दर नौजवान हो गया। कृष्ण ने उससे पूछा—तुम कौन हो? तुम्हें अजगर की योनि कैसे मिली? तब उस जवान ने कहा—मैं एक विद्याधर हूँ। मेरा नाम सुदर्शन है। अंगिरा ऋषि के शाप से मैं अजगर

हो गया था। अब आपकी कृपा से मुझे शाप से छुटकारा मिल गया। यों कहकर और कृष्ण को प्रणाम करके वह विद्याधर विमान पर बैठ अपने लोक को चला गया। सब गोप-गोपी वहाँ से लौटे और हरि के गुण गाते हुए वृन्दावन में पहुँचे।

एक दिन कृष्ण और बलदाऊ गोपियों के साथ रात को रास कर रहे थे। इतने में शंखचूड़ नाम का यक्ष उधर से निकला। वह कुछ गोपियों को लेकर भागा। गोपियों के चिल्लाने पर कृष्ण और बलदेव ने उसका पीछा किया। वह गोपियों को छोड़कर भय से भागा। कृष्ण ने बलदाऊ को गोपियों की रखवाली के लिए छोड़ दिया और शंखचूड़ को पकड़ने के लिए

फिर दौड़े। शंखचूड़ को मारकर कृष्ण ने उसके सिर की चूड़ामणि निकाल ली और उसे लाकर बलभद्र को दे दिया।

एक दिन कंस का भेजा हुआ अरिष्टासुर एक बड़े भारी साँड़ का रूप रखकर कृष्ण को मारने के लिए वृन्दावन में आया। वह बड़े जोर से शब्द करता हुआ सबको डराने लगा। उसे देखकर सब व्रज-वासी बहुत डरे और कृष्ण के पास दौड़े आये। भगवान् सब को अभय देकर उस राक्षस के सामने आये। कृष्ण को देख-कर वह दैत्य खुरों से धरती को खोदता हुआ सींग उठाकर लाल-लाल आँखें करके भगवान्

की ओर दौड़ा। भगवान् अपनी जगह पर खड़े रहे। जब दैत्य पास आ गया तब उन्होंने झपट-कर उसके दोनों सींग पकड़ लिये। दूसरे हाथ से दोनो पिछली टाँगें पकड़कर जैसे धोबी गीले कपड़े को निचोड़ता है, उसी तरह भगवान् ने उसके शरीर को मरोड़ा। उसकी आँखें बाहर निकल आईं और मुँह से खून निकलने लगा। वह तड़प-तड़पकर मर गया। सब गोप कृष्ण की जय-जयकार करने लगे।

इसके बाद कंस ने केशी नाम के राक्षस को कृष्ण के मारने के लिए भेजा। वह एक बड़े भयानक घोड़े का रूप रखकर ब्रज में आया। ब्रज में आकर वह ऊधम करने लगा। तब कृष्ण ने उसे मारने का इरादा कर लिया। कृष्ण उसके सामने जाकर खड़े हो गये। जब वह कृष्ण के सामने आया तो कृष्ण ने अपना हाथ उसके मुँह में दे दिया। जब उसने कृष्ण के हाथ को निगल लिया, तब भगवान् अपने हाथ को बढ़ाने लगे। हाथ इतना मोटा हो गया कि राक्षस का मुँह फटने लगा। उसकी साँस रुक जाने से शरीर फूट की तरह खिल गया और वह तड़प-तड़पकर मर गया। यह देखकर ब्रजवासी बहुत प्रसन्न हुए।

इस तरह कंस ने जितने राक्षस भेजे, वे सब जब कृष्ण के हाथ से मारे गये, तब कंस को बड़ी चिन्ता हुई। उसको विश्वास हो गया कि कृष्ण ही उसके काल हैं। जब तक कृष्ण जीते हैं, तब तक उसकी कुशल नहीं। तब उसने एक उपाय सोचा। उसने अपने यहाँ एक दंगल करने का इरादा किया और उसी को देखने के लिए कृष्ण और बलराम को अपने यहाँ बुलाकर कुवलयापीड हाथी से कुचलाकर या अपने पहलवानों से लड़ाकर मरवा डालने का निश्चय कर लिया।

कंस ने अपने मंत्रियों को, अक्रूर को, चाणूर आदि पहलवानों को और कुवलयापीड़ हाथी के महावत को एक दिन बुलाया। अक्रूर एक यादव थे। कंस के मंत्री और मित्र भी थे। कंस ने अपने मंत्रियों से कहा—मुझे अब निश्चय हो गया है कि कृष्ण-बलराम वसुदेव के ही लड़के हैं, नन्द के नहीं। मेरे साथ वसुदेव ने चालाकी की है। इसीलिए मैंने वसुदेव और देवकी को फिर कैदखाने में डाल दिया है। जब तक कृष्ण मारा नहीं जाता, तब तक मेरा भय नहीं जाता। मुझे हर घड़ी कृष्ण का ही ख़्याल रहता है। सब तरफ, सब जगह कृष्ण ही मुझे देख पड़ता है। मैंने अब तक जितने उपाय कृष्ण को मारने के लिए किये, उन सबका फल उलटा ही हुआ। कृष्ण ने मेरे बड़े-बड़े बली सेवकों को मार डाला। अब मैं इसी चौदस को धनुष-यज्ञ का उत्सव करूँगा। उसमें कृष्ण-बलदेव सहित नन्द आदि गोपों को भी बुलाऊँगा। अक्रूरजी, तुम पर नन्द को विश्वास है। तुम खुद जाकर कृष्ण को सब गोपों के साथ यहाँ बुला लाओ। कल ही सवेरे चले जाना। इतना कहकर कंस ने हाथी के महावत से कहा—तुम दंगल के फाटक पर हाथी को लेकर खड़े रहना। वह आजकल मस्त हो रहा है। जैसे कृष्ण और बलराम भीतर आने लगें, वैसे ही तुम हाथी को उनकी ओर बढ़ा देना। हाथी उन्हें कुचल डालेगा। अगर दैवयोग से वे बच गये तो हे चाणूर, तुम अपने साथी पहलवानों के साथ या अकेले ही अपने दाँव-पेंच से उनको मार डालना। दंगल भी होगा और उसमें कृष्ण-बलराम को मेरे हुक्म से तुम्हारे साथ लड़ना ही पड़ेगा। इस तरह सबको आज्ञा देकर कंस अपने महल में चला गया।

अक्रूर अब बड़े असमंजस में पड़े। वह नन्द और वसुदेव के शुभचिन्तक थे। कंस के डर से वह उसके मंत्री बने हुए थे। वह अपने मन में कहने लगे—अब मुझे क्या करना चाहिए? नन्द और वसुदेव बड़े सज्जन और सीधे-सादे हैं। उनको धोखा देना या उनकी बुराई में शरीक होना बड़े अधर्म का काम है। इधर अगर कंस का कहना टालता हूँ तो भी कुशल नहीं। मगर कृष्णचन्द्र तो साक्षात् भगवान् हैं। कंस उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैं अवश्य व्रज जाऊँगा। इसी में मेरा कल्याण है। भगवान् के दर्शन मिलेंगे और बहुत दिनों बाद नन्दजी से भेंट होगी। मुझे जान पड़ता है, कंस के दिन अब पूरे हो गये। वह जरूर अब मरेगा। यह सोचकर निश्चिन्त होकर अक्रूरजी अपने घर में जाकर सो रहे। बेटा, अब आज यहीं कथा समाप्त करता हूँ। कल फिर सुनना।

दूसरे दिन बनारसी ने मनोहर से फिर यों कहना शुरू किया—अक्रूरजी बहुत

तड़के उठकर रथ पर बैठे और मथुरा से नन्द के गोकुल को चल दिये। जिस समय अक्रूर गोकुल में पहुँचे, उस समय संध्या हो गई थी। कृष्णचन्द्र गोशाला में गऊ दुहने गये थे। गोशाला राह में ही पड़ती थी। वहीं अक्रूर से कृष्ण-बलराम की भेंट हो गई। कृष्ण को देखते ही प्रेम से अक्रूर का गला भर आया और थोडी देर तक वह कुछ बोल न सके। अक्रूर जैसे ही कृष्ण के पैरों पर गिरने लगे, वैसे ही भगवान् ने उनको हाथों पर रोक लिया और गले से लगा लिया। फिर उनके साथ घर गये। वहाँ नन्द और यशोदा ने अक्रूर का बड़ा सत्कार किया।

नन्द ने कहा—आज हमारे अहोभाग्य हैं, जो आपने दर्शन दिये। कहिए, सब कुशल तो है? कैसे आना हुआ?

अक्रूर बोले—आप तो दुष्ट कंस को जानते ही हैं। उसके रहते कुशल कहाँ? जैसे बत्तीसो दाँतों के बीच बेचारी जीभ रहती है, वैसे ही हम सब लोग उसके राज में रहते हैं। कंस यादवों से घोर वैर बाँधे हुए है। उसने अपने बहनोई वसुदेव और बहन देवकी को क़ैद में डाल रक्खा है और पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर जबरदस्ती राजगद्दी पर बैठ गया है। आपने मेरे आने का कारण पूछा सो मैं आपको, सब गोपों को और कृष्ण-बलराम को बुलाने आया हूँ। चौदस के दिन राजा कंस धनुपयज्ञ का उत्सव करेगा। उसमें शिव की पूजा होगी, पशुओं का बलिदान होगा। मेला लगेगा, दंगल होगा। यही सब देखने-सुनने के लिए कंस ने सब प्रजा को बुलाया है। वही न्योता लेकर मैं आया हूँ। आप सब लोग सवेरे मेरे साथ चलें।

नन्द से यों कहकर अक्रूर ने अकेले में कृष्णजी को कंस का इरादा बतला दिया। कृष्ण ने हँसकर कहा—दुष्ट कंस मेरा मामा है, फिर भी मैं उसे जरूर मारूँगा। वह मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। इससे आप निश्चिन्त रहें। मैं कल आपके साथ मथुरा को चलूँगा। पिताजी और सब गोप भी मेरे साथ चलेंगे।

यों कहकर कृष्णजी शयन करने चले गये। अक्रूर भी सो रहे। रात ही को यह खबर व्रज में घर-घर फैल गई कि कृष्ण-बलराम को ले जाने के लिए मथुरा से अक्रूर आये हैं। गोपियों को यह नहीं मालूम था कि कृष्णचन्द्र सदा के लिए व्रज से जा रहे हैं, वे यही समझती थीं कि दस-पाँच दिन के लिए ही जा रहे हैं; फिर भी वे इतने समय का वियोग न सह सकती थीं। वे व्याकुल होकर रोने लगीं।

सवेरे उठकर कृष्ण और बलराम चलने के लिए तैयार हुए। नन्द ने भी चलने की तैयारी कर-दी। व्रज के सब मुखिया गोप भी राजा को भेंट देने के लिए तरह-तरह के सामान छकड़ों पर लादकर चलने को तैयार हुए। जब कृष्ण-बलराम मथुरा जाने के लिए रथ पर सवार होने लगे, तब सब गोपियों ने आकर रथ को घेर लिया। उस समय भक्तवत्सल भगवान् से भी उनका दुःख देखा नहीं गया—उनके भी नयनों में आँसू छलक आये। कृष्ण ने रथ से उतरकर गोपियों को बहुत समझाया-बुझाया और जल्दी ही लौट आने का वादा किया। किसी तरह गोपियों को धीरज बँधाकर भगवान् कृष्ण फिर रथ पर सवार हुए। अक्रूर ने भगवान् के इशारे पर फुर्ती से रथ को हाँक दिया। व्रज में कोहराम मच गया। जब तक उस रथ की पताका दिखाई दी, यहाँ तक कि रथ के पहियों से उड़नेवाली धूल भी दिखाई देती रही, तब तक उधर ही टकटकी लगाये गोपियाँ खड़ी रहीं। अन्त को कृष्ण के लौटने से निराश होकर सब अपने घरों को लौट गईं, और कृष्ण की लीलाओं को याद करके, उन्हीं की चर्चा करके अपना समय बिताने लगीं।

इधर अक्रूर तेजी से रथ हाँक रहे थे और भगवान् उनसे हँस-हँसकर बातें करते जा
अक्रूर और कृष्ण-बलराम वगैरह नहा-धोकर नहीं चले थे। रास्ते में यमुना जी का नि
देखकर अक्रूर से भगवान् ने रथ रोकने के लिए कहा। वहाँ उतरकर पहले कृष्ण बलराम ने स्नान किया, पूजा-पाठ किया, उसके बाद अक्रूर भी वहीं नहाने के लिए गये। उन्होंने जल के भीतर

बैठकर गोता लगाया, उसके बाद वहीं गायत्री जपने लगे। इतने में भगवान् ने अपनी महिमा दिखाने के लिये अक्रूर को एक अद्भुत दृश्य दिखाया। अक्रूर ने देखा, जल के भीतर कृष्ण-बलराम दोनों भाई विराजमान हैं। अक्रूर रथ पर छोड़ आये थे, इसलिए उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। वह समझे, शायद वे फिर नहाने आये हों। अक्रूर ने घूमकर रथ की ओर देखा। वहाँ भी दोनों भाई बैठे थे। अक्रूर ने सोचा, यह मेरी दृष्टि

का भ्रम तो नही है। यों सोचकर उन्होंने फिर जल के भीतर देखा। अब की उन्हें एक अपूर्व दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने देखा—बलराम की जगह शेषनाग हजार फन फैलाये विराजमान हैं और उन्हीं की गोद में कृष्ण भगवान् चतुर्भुज विष्णु रूप से शोभायमान हैं। सब देवता, असुर, गन्धर्व, विद्याधर आदि उनकी स्तुति कर रहे हैं। अब सब रहस्य अक्रूर की समझ में आ गया। वह भक्ति से गद्गद होकर भगवान् की स्तुति करने लगे। इसके बाद संध्या-पूजा समाप्त करके अक्रूरजी लौट आये। अक्रूर से कृष्णचन्द्र ने कहा—अक्रूरजी, आपके चेहरे पर विस्मय के चिह्न देख पड़ते हैं। आपने इस समय जल, थल या आकाश में क्या कोई अद्भुत बात देखी है? अक्रूर ने कहा—हे भगवन्, संसार में जो कुछ अद्भुत है, वह सब आप ही की माया का खेल है। जब मैंने आपको देख लिया, तब कौन-सी अद्भुत बात है, जो देखने को रह गई? यों कहकर अक्रूर ने रथ को हाँक दिया।

नन्द आदि सब गोप पहले ही मथुरा में पहुँच गये थे; क्योंकि वे कृष्ण से पहले ही चल ...। कृष्ण गोपियों को समझाने के लिए रुक रहे थे। इधर कृष्णचन्द्र जब मथुरा नगरी के फाटक पर पहुँचे तो उन्होंने रथ को रुकवा दिया। उसके बाद अक्रूर का हाथ पकड़कर हँसते हुए उन्होंने कहा—अब आप रथ लेकर अपने घर को जाइए। हम गोपों के डेरे में जाते हैं। वह सामने बाग में पिताजी वगैरह सब ठहरे हैं। मैं ठीक समय पर पुरी की शोभा देखने और राजा के

उत्सव में शरीक होने के लिए आ जाऊँगा। आप जाकर हम लोगों के आ जाने की सूचना राजा कंस को दे दीजिए।

अक्रूर ने कहा—प्रभो, ऐसा न कहो। मेरी बहुत दिनों की अभिलाषा है कि आपके चरणों से मेरी झोपड़ी पवित्र हो। मेरी उस अभिलाषा को चलकर पूर्ण करो।

भगवान् ने कहा—चाचा, तुम विश्वास रक्खो, मैं तुम्हारी अभिलाषा जरूर पूरी करूँगा। इस समय मेरे न जाने में एक मसलहत है। पहले मैं दुष्ट कंस को मार लूँ; फिर आऊँगा।

अक्रूर ने भगवान् की बात मान ली। वह पहले कंस के पास गये। उनसे सब समाचार कहकर वह अपने घर गये।

खा-पीकर विश्राम करने के बाद कृष्ण ने बलदाऊ और अपने सखा ग्वाल-बालों को साथ लिया और मथुरापुरी की सैर करने को चले। भगवान् ने देखा, पुरी के बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे फाटक देखने ही योग्य हैं। बड़े ऊँचे महल पुरी की शोभा बढ़ा रहे हैं। बाजारों में खूब चहल-पहल है। सड़कों पर छिड़काव किया गया है। मकानों में और देव-मन्दिरों में झण्डे फहरा रहे हैं। कृष्ण-बलराम को राह में जो देखता था, वही निहाल हो जाता था। सब टकटकी बाँधकर उनके अपूर्व रूप की शोभा निहारते रह जाते थे।

राह में कृष्ण भगवान को राजा कंस का धोबी मिल [illegible]
रँगकर लिये जा रहा था। भगवान् को कपड़ों [illegible]
के लिए उसको रोककर कहा- [illegible] रहे हो? हम राजा के मेहमान होकर उत्सव में [illegible] पास जल्से के लायक कपड़े नहीं हैं। दैवयोग से तुम [illegible] लायक कपड़े दोगे तो तुम्हारा भला होगा।

[illegible] नौकर था, इसलिए वह किसी को कुछ समझता नहीं था। उसने बिगड़कर कहा—तुम जानते नहीं, मैं राजा कंस का धोबी हूँ और ये कपड़े हमारे महाराज के हैं। तुम जंगली गँवार ग्वाले इन कपड़ों की क़दर क्या जानो! बस, अगर अपनी कुशल चाहते हो तो भाग जाओ।

धोबी के ये कठोर वचन सुनकर कृष्णचन्द्र को क्रोध आ गया। उन्होंने एक तमाचे से धोबी को मार डाला। अपने सरदार की दशा देखकर उसके साथी और धोबी भी भाग खड़े हुए। कृष्ण और बलराम ने कपड़ों की गठरियाँ खोलकर उनमें से मनमाने बढ़िया रेशमी कपड़े ले लिये। बचे हुए कपड़ों में से गोपों ने अपने-अपने लिए चुन लिये। बाकी कपड़े वहीं पड़े रहे। राह में

एक दर्जी दूकान पर बैठा था। कृष्ण ने उसके पास जाकर कपड़े ठीक करने के लिए कहा। भगवान् के सुन्दर रूप पर वह भक्त रीझ गया। उसने बड़े आदर के साथ कृष्णचन्द्र को अपने यहाँ बिठाया। फिर छोटे-बड़े कपड़ों को काट-छाँटकर उसने भगवान् के अंगों पर ठीक बिठा दिया। आगे भगवान् का भक्त सुदामा नाम का माली रहता था। भगवान उसके घर पर गये। उसने बड़ी श्रद्धा के साथ भगवान् का स्वागत किया और बढ़िया-बढ़िया सुगन्धित फूलों के गजरे बनाकर भगवान् के गले में डाल दिये। भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। इसके बाद आगे बढ़ने पर कृष्ण को कंस की दासी कुब्जा मिली। इसका रूप बड़ा सुन्दर था; पर दोष यही था कि वह कुबड़ी थी। उसका काम कंस की सेवा करना और चंदन लगाना था। वह पिटारी में चन्दन आदि लिये जा रही थी। कृष्ण ने उससे चन्दन और अंगराग माँगा। कुब्जा कृष्ण की सुन्दर मूर्ति पर रीझ गई। उसने कृष्ण के मस्तक पर केसरिया चन्दन का तिलक और शरीर में चन्दन के तरह-तरह के चित्र बनाये। बलराम का भी उसने चन्दन से शृङ्गार किया। भगवान् उस पर बहुत प्रसन्न हुए। कृष्ण ने उसको अपने दर्शन और सेवा का तुरन्त फल देना चाहा। उन्होंने कुब्जा के पैरों को अपने दोनों पैरों से दबाकर उसकी ठोढी में हाथ लगाकर ऐसा झटका दिया कि वह एकदम सीधी हो गई, उसका कुबड़ापन दूर हो गया। वह कृष्णचन्द्र को आशीर्वाद देती हुई अपने घर को चली गई।

भगवान् कृष्ण और बलराम मथुरा नगरी के बाजार की शोभा देखते हुए धीरे-धीरे उस जगह पहुँच गये, जहाँ कंस का बहुत बड़ा और भारी धनुष रक्खा हुआ था। भगवान ने पुरवासियों

से पहले ही उस भवन का पता पूछ लिया था। धनुष के भवन में दरवाज़े पर सिपाही खड़े पहरा दे रहे थे। कृष्ण और बलराम ने धनुष को देखने की इच्छा प्रकट की। पहरेदारों ने भी उनको नहीं रोका। कृष्ण ने भीतर जाते ही उस भारी धनुष को बाएँ हाथ से उठा लिया और जब तक पहरे-दार उनको रोकें, तब तक उन्होंने उस पर डोरी चढ़ाकर इतने जोर से खींचा कि उसके बीच से दो टुकड़े हो गये। जैसे मस्त हाथी ईख के दो टुकड़े अनायास कर डाले, वैसे ही कृष्ण ने उस

भारी धनुष के दो टुकड़े कर डाले। धनुष टूटने का प्रचंड शब्द सारे आकाश में और दसों दिशाओं में गूँज गया। उस भयानक शब्द को सुनकर कंस का हृदय भय के मारे काँप उठा। दम भर सन्नाटे में रहने के बाद वे पहरेदार "मारो, पकड़ो" कहते हुए कृष्ण-बलराम की तरफ दौड़ पड़े। उन्हें अपनी ओर आते देखकर कृष्ण और बलराम ने वही धनुष के दोनों टुकड़े उठा लिये और उन्हीं की मार से पहरेदारों को मार गिराया। कंस के पास पहले ही खबर पहुँच गई।

उसने अपनी बहुत सी सेना कृष्ण को पकड़ लाने या मार डालने के लिए भेजी। भगवान् कृष्ण और बलराम ने आसानी से उस सारी सेना का संहार कर डाला। कृष्ण-बलराम के पराक्रम, तेज और रूप को देखकर पुरवासियों को विश्वास हो गया कि ये जरूर कोई देवता हैं—मनुष्य नहीं हैं। इतने में सूर्य के अस्त होने का समय आ गया। कृष्ण और बलदाऊ भी अपने सखा ग्वालों के साथ अपने डेरे को लौट गये।

कंस ने जब सुना कि कृष्ण और बलराम ने खेल की तरह उस भारी धनुष को तोड़ डाला, जिसे बड़े-बड़े वीर योद्धा भी नहीं उठा सकते थे और उसकी सेना की बहुत बड़ी टुकड़ी को तहस-नहस कर डाला, तब उसे अपने प्राणों की बड़ी चिन्ता हुई। डर के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई। अगर कुछ देर के लिए नींद आई भी तो बुरे-बुरे सपने दिखाई पड़ने लगे।

सवेरा हुआ। मथुरा में झुंड के झुंड लोग राज-दरबार में धनुषयज्ञ का उत्सव और दंगल देखने के लिए जमा होने लगे। कंस ने महल के पास ही एक मैदान में दंगल के लिए रंगभूमि बनवाई थी। बीच में एक बड़ा अखाड़ा था और उसके चारों ओर खास-खास पुरवासियों और बाहर से आये हुए लोगों के बैठने के लिए मंच बने थे। सबके पीछे एक बहुत ऊँचा मंच उसने अपने बैठने के लिए बनवाया था। ठीक समय पर सब लोग आ-आकर अपने स्थानों पर बैठ गये। कंस भी मन में डरता हुआ अपने मंच पर आ विराजा। दरवाजे पर कंस की आज्ञा के अनुसार मस्त हाथी कुवलयापीड़ को लाकर महावत ने खड़ा कर दिया। रंगभूमि के फाटक पर शहनाई और नगाड़े बजने लगे। उधर कृष्ण और बलदाऊ भी अपने सखा ग्वालों के साथ दंगल देखने के लिए रंगभूमि के दरवाजे पर आ पहुँचे। कुवलयापीड को दरवाज़े पर डटा हुआ देखकर कृष्ण भगवान् सब समझ गये। उन्होंने फाटक के सामने आकर महावत से कहा—अजी इस हाथी को हटाकर हमें भीतर जाने की राह दो। हमें राजा ने न्योता भेजकर बुलाया है। हमको भीतर जाने में अगर देर हो जायगी तो राजा नाराज होंगे और तुमको भी दण्ड मिलेगा।

कृष्ण के ये वचन सुनकर पहले ही से सिखाये हुए महावत ने कहा—हाथी तो नहीं हटेगा, अगर तुममें कुछ ताकत हो तो हाथी को हटाकर भीतर चले जाओ।

इस पर भगवान् को क्रोध आ गया। उधर महावत ने भी अंकुश की मार से क्रोधित करके हाथी को कृष्ण की ओर बढ़ाया। हाथी ने आकर कृष्ण को सूँड़ से लपेट लिया। भगवान्

ने सहज में ही अपने को उस बंधन से छुड़ा लिया और फिर घूँसा मार कर हाथी के अगले दोनों पैरों में छिप गये। हाथी इधर उधर कृष्ण को देखने लगा। इतने में भगवान् पीछे से जाकर पूँछ पकड़कर उसे बहुत दूर तक उलटा घसीट ले गये। हाथी खीझ उठा। थोड़ी देर तक इस तरह हाथी के साथ खेलकर कृष्ण ने उसको थका डाला। महावत बार-बार अंकुश मारकर हाथी को क्रोध दिला रहा था, पर भगवान् का वह कुछ बिगाड़ ही नहीं सकता था। कारण, भगवान् उसकी पकड़ में ही न आते थे। अन्त को भगवान् उसके सामने आये। उसने झपटकर उन पर वार करना चाहा। भगवान् ने सूँड़ पकड़कर ऐसा झिटका दिया कि हाथी अधमरा होकर

ज़मीन पर गिर पड़ा। कृष्ण ने पैर से हाथी को दबाकर उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये। इस प्रकार वह हाथी, जिस पर कंस को बहुत भरोसा था, कृष्ण के हाथ से मारा गया। महावत भी नहीं बचे, वे भी मारे गये। उस समय कृष्णचन्द्र की अपूर्व शोभा हो रही थी। मुख पर पसीने को बूँदें झलक आई थीं और कपड़ों पर रुधिर की छींटें पड़ी हुई थीं। वह साक्षात् वीर रस जान पड़ते थे। दोनों भाई मरे हुये हाथी का एक - एक दाँत कंधे पर रक्खे और उसका एक सिरा हाथ से पकड़े सिंह के बच्चों की तरह बेखटके धीर गम्भीर गति से रंगभूमि के भीतर पधारे।

वहाँ जिसकी जैसी भावना थी, उसको वैसे ही रूप से भगवान् देख पड़े। पहलवानों को वह वज्र से देख पड़े। साधारण राजों और दर्शकों को वह पुरुषोत्तम जान पड़े। स्त्रियों ने उनको साक्षात् कामदेव के रूप में देखा। गोप लोगों ने उन्हें स्वजन के रूप में देखा। जितने दुष्ट राजा थे, उनको वह यमराज की तरह शासन करनेवाले—दण्ड देनेवाले देख पड़े। नन्द को

अपने बालक के रूप में देख पड़े। कंस ने उनको अपनी मौत के रूप में देखा। योगी-मुनियों को वह परब्रह्म जान पड़े। यादवों को वह अपने सगे जान पड़े।

धीर-वीर होने पर भी कंस कृष्ण का पराक्रम देख-सुनकर बहुत घबराया। कृष्ण और बलराम अपने मित्रों के साथ जब रंगभूमि में पहुँचे, तब जिन लोगों ने उनकी लीलाएँ और अद्भुत चरित्र सुन रक्खे थे, वे आपस में उनकी चर्चा करने लगे।

इसी बीच में पहलवानों के बड़े उस्ताद चाणूर ने कृष्ण से कहा—हे कृष्ण और हे बलभद्र, हमारे महाराज ने तुम लोगों के बल और पराक्रम की बड़ी-बड़ी कहानियाँ सुन रक्खी हैं। इसी से कुश्ती में अपना बल दिखाने के लिए तुमको यहाँ बुला भेजा है। राजा को प्रसन्न करना हमारा और तुम्हारा दोनो का कर्तव्य है।

इस पर कृष्ण ने कहा—तुम ठीक कह रहे हो, राजा को प्रसन्न करना हम सबका कर्तव्य है। पर हम देहात के रहनेवाले कुश्ती की कला को क्या जानें? घर में अपना मन बहलाने के लिए आपस में जोर कर लेना और बात है और दंगल में तुम जैसे खुर्राट पहलवान से लड़ना और बात। इसलिए अगर राजा हमारी कुश्ती देखना चाहते हैं तो उन्हें हमारी जोड से कुश्ती करानी चाहिए। तुम्हारी और हमारी तो कोई जोड़ ही नही है।

कृष्ण के ये वचन सुनकर चाणूर हँसा। उसने कहा—कृष्ण, तुम या बलभद्र बालक नही हो। तुम बडे बलवान हो। इसका प्रमाण यही है कि एक हजार हाथी का बल जिसके था, उस कुवलयापीड़ को अभी-अभी तुमने मार डाला है। इसलिए आओ, तुम मुझसे लडो और बलभद्र मुष्टिक से लडें। इसमें कुछ भी अन्याय न होगा।

कृष्णचन्द्र तो यह चाहते ही थे, केवल दिखाने भर को टालमटोल कर रहे थे। "जैसी राजा की और तुम्हारी मर्जी" कहकर कृष्ण और बलराम लँगोटा बाँधकर अखाड़े में उतर पड़े। कृष्ण के आगे चाणूर क्या ठहर सकता था? कुछ ही क्षणों में वह बोल गया। जब उसने अपने को परास्त होते देखा तो कुश्ती के कायदे के खिलाफ उसने दौड़कर कृष्ण की छाती में दोनों हाथों से घूँसे मारे। कृष्ण पर इस वार का कुछ भी असर नहीं हुआ, जैसे हाथी के माला की चोट नही लगती। इसके जवाब में कृष्ण ने चाणूर के दोनों हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठा लिया और कई बार घुमाकर इतने जोर से पटका कि उसके प्राण ही निकल गये। उधर बलभद्र ने भी मुष्टिक की जान ले ली। फिर कूट, शल और तोशल नाम के प्रसिद्ध पहलवान कृष्ण से आकर

कंस-वध

भिड़े और वे भी मारे गये। नामी उस्तादों के मारे जाने पर उनके चेले पहलवान अपनी जान बचाकर खिसक गये। जब कोई वैरी सामना करनेवाला न रहा तो भगवान् कृष्ण और बलदाऊ अपने साथी ग्वालों को ही अखाड़े में उतारकर उनसे लड़ने और दाँव-पेच दिखाने लगे। कंस को छोड़कर सभी दर्शक कृष्ण का पराक्रम देखकर प्रसन्न हुए और उनकी बड़ाई करने लगे। यह देखकर कंस और जल उठा। वह आपे से बाहर होकर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ और नगाड़ों का बजना बंद कराकर इस प्रकार प्रलाप करने लगा। वह बोला—"अरे इन दुष्ट वसुदेव के लडकों को जल्दी बाहर निकाल दो। इन पाजी गोपों का सर्वस्व लूट लो। नंद को कैद कर लो। वसुदेव और मेरे पिता उस बुड्ढे उग्रसेन को मार डालो; क्योंकि ये अपने सगे होकर भी मेरी जान के दुश्मन हैं!"

इस प्रकार जब कंस कृष्ण के पिता वसुदेव को बुरा-भला कहने लगा, तब उनको बड़ा क्रोध चढ़ आया। भगवान् कृष्ण उछलकर उस ऊँचे मंच पर पहुँच गये, जिसमें खड़ा हुआ कंस अनाप-शनाप बक रहा था। अपने काल को पास आया देखकर कंस ने धीरज नहीं छोड़ा। वह ढाल-तलवार लेकर कृष्ण का सामना करने को तैयार हो गया। पैंतरे बदल-बदल कर वह कृष्ण से बचने और उनपर वार करने की कोशिश करता था। पर कब तक बच सकता था! कृष्ण ने मौका पाकर कंस का मुकुट गिरा दिया और उसके केश पकड लिये। अब कंस क़ाबू में आ गया तब कृष्ण ने कंस को उस ऊँचे मंच से नीचे ढकेल दिया और उसी के ऊपर आप भी फाँद पड़े। नीचे आते ही कंस का शरीर चूर-चूर हो गया, उसके प्राण निकल गये। तब भगवान् ने उसके शरीर को पृथ्वी पर सबके सामने ही घसीटा।

इसी समय कंस के आठ भाई कंक, न्यग्रोध वगैरह क्रोध से कृष्ण की ओर झपटे। कृष्ण ने उन सबको भी क्षणभर में ठिकाने लगा दिया। तब कंस और उसके भाइयों की स्त्रियाँ छाती पीटने और रोने लगीं। कृष्ण और अन्य लोगों ने उनको समझा-बुझाकर शान्त किया। कंस के मारे जाने पर देवतों ने प्रसन्न होकर फूल बरसाये और नगाडे बजाये। मथुरा में भी यादवों ने, जिन्हें कंस सताता था, सुख की साँस ली।

कृष्णचन्द्र जब कंस को मार चुके, तब कैदखाने में जाकर पहले उग्रसेन को क़ैद से छुड़ाया। उसके बाद देवकी और वसुदेव के पास जाकर उन्हें छुटकारा दिया। कृष्ण ने अपने पिता और माता के पैर छूकर कहा—मैं आपकी नालायक़ सन्तान हूँ। मैं आज तक आपकी कुछ भी सेवा

नहीं कर सका—मेरे कारण आपको दुष्ट कंस ने कष्ट दिया। इच्छा रहने पर भी मैं लाचार था। मा-बाप के पास रहकर बालक जो माता-पिता के प्यार-दुलार का सुख भोगते हैं, वह सुख मेरे भाग्य में नहीं बदा था। शास्त्र में लिखा है, सन्तान अपने माता-पिता के ऋण से उनकी जन्म भर सेवा करके भी उद्धार नहीं पाता। जो मनुष्य शक्ति रहने पर भी मा-बाप की सेवा और उनका भरण-पोषण नहीं करता, उनको सुखी नहीं बनाता, वह जीते ही मरे के बराबर है। हम कंस के डर से अब तक आपके पास नहीं आ सके, आपकी सेवा नहीं कर सके, इस अपराध के लिए हम आपसे क्षमा की प्रार्थना करते हैं।

वसुदेव-देवकी कृष्ण के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। दोनों ने प्यार से पुत्र को गले लगाया। इस प्रकार माता-पिता को प्रसन्न करके भगवान् कृष्ण ने अपने नाना उग्रसेन के पास आकर उनसे कहा—आप अपने दुष्ट पुत्र कंस के मारे जाने का शोक न कीजिए। अब आप सुख से राजगद्दी पर बैठ कर राज्य कीजिए। मैं आपका सेवक सदा आपकी सहायता करूँगा। मेरे रहते आपको किसी का भय नहीं है।

उग्रसेन ने कहा—बेटा, अब मैं बूढ़ा हुआ। राजकाज सँभालने की शक्ति मुझमें नहीं है। इस लिए यह राज्य मैं तुमको देता हूँ। मैं अब अपना समय भगवान् के भजन में ही लगाऊँगा।

कृष्णचंद्र ने कहा—नानाजी, आप तो जानते ही हैं, हमारे पुरखे महाराज यदु को उनके पिता ने नाराज़ होकर शाप दे दिया

सकता। मेरी प्रार्थना से आप राज सिंहासन पर बैठें। सारा राजकाज हम लोगों की ही देखरेख में होगा। उसकी चिन्ता आप न करें।

तब उग्रसेन ने कृष्ण के कहने से राजगद्दी पर बैठना मंजूर कर लिया। यदुवंश के वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, कुक्कुर आदि नामों से प्रसिद्ध खानदानों को, जो कंस के भय से दूर देशों में जाकर रहने लगे थे और परदेश की तकलीफें उठा रहे थे, कृष्ण ने फिर मथुरा में बुलाकर बसाया।

इधर इन सब कामों से छुट्टी पाकर कृष्ण और बलराम दोनों भाई नन्दजी के पास एक दिन पहुँचे। नन्दजी को मथुरा आये बहुत दिन हो गये थे, पर वह और गोपों को वृन्दावन भेजकर इस आशा से टिके हुए थे कि कृष्ण-बलराम यहाँ से छुट्टी पाकर हमारे साथ फिर गोकुल को लौट चलेंगे; क्योंकि वह यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि कृष्ण-बलराम उनको और गोकुल को छोड़कर यहीं रह जायँगे।

कृष्ण ने नन्द के पास जाकर उनसे कहा—पिताजी, आपके और माता यशोदा के बहुत अधिक एहसान हम लोगों पर हैं। अपनी सन्तान से भी बढ़कर आपने हमारी सेवा की, और हमारा प्यार-दुलार किया। लाचार होकर हमारे मा-बाप ने हमें आपके पास छोड़ दिया था, और आपने अपने पुत्र की तरह हमको पाला, इसलिए हमारे सच्चे माता-पिता आप ही हैं। वहाँ व्रज में आपके बिना माता यशोदा और भी व्याकुल हो रही होंगी। इसलिए हमारी प्रार्थना यही है कि आप अब व्रज को जाइए। हमको यहाँ अभी बहुत काम करना है, इसलिए हम अभी आपके साथ न चल सकेंगे। यहाँ से छुट्टी पाकर हम माता से आपसे और अपने वियोग से दुखित व्रजवासियों से मिलने अवश्य आवेंगे।

कृष्ण-बलराम के ये वचन सुनकर नन्द व्याकुल हो उठे। आँसुओं से उनका गला रुँध गया और थोड़ी देर तक वह कुछ भी न कह सके। कृष्ण ने उनको फिर बहुत तरह समझा-बुझाकर विदा किया।

इसके बाद वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य को बुलाकर शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम से दोनों भाइयों का जनेऊ कराया। जनेऊ हो जाने के बाद कृष्ण और बलराम वेद और शास्त्र पढ़ने के लिए गुरुकुल में गये। अवन्तीपुरी में काश्यप गोत्र के सांदीपिनि नाम के एक बड़े भारी पंडित मुनि रहते थे। उन्हीं के गुरुकुल में रहकर कृष्ण-बलराम ने धनुर्वेद (लड़ाई की विद्या), वेद, धर्मशास्त्र, नीति और राजनीति की शिक्षा पाई। भगवान् तो सब कुछ जानते ही थे, उन्हें

पढ़ने की कोई जरूरत नहीं थी। फिर भी लोकाचार की रक्षा के लिए उन्होंने गुरुकुल में रहकर सब विद्याएँ सीखीं। एक बार गुरु के मुख से सुनकर ही उन्होंने सब कुछ सीख लिया। सब विद्याएँ पढ़ चुकने पर कृष्ण-बलराम ने गुरुकुल से विदा होने के समय अपने गुरु से गुरुदक्षिणा माँगने के लिए प्रार्थना की।

सांदीपिनि कृष्ण की महिमा और शक्ति को इतने ही दिनों में अच्छी तरह जान गये थे। उन्होंने अपनी स्त्री से सलाह ली। कहा—ये दोनों मेरे शिष्य साधारण मनुष्य नहीं, महापुरुष हैं। इनसे मुझे क्या गुरुदक्षिणा माँगनी चाहिए?

ऋषि की स्त्री ने कहा—मेरी समझ में तो इनसे अपना वह पुत्र ला देने के लिए कहना चाहिए, जो प्रभास क्षेत्र में नहाते समय सागर में डूब गया है।

ऋषि ने कृष्ण से यही गुरुदक्षिणा माँगी। भगवान् ने कहा—अच्छी बात है गुरुजी। मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही गुरुदक्षिणा दूँगा। इतना कहकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर प्रभास क्षेत्र में सागर के तट पर पहुँचे। भगवान् को अपने किनारे पर आया हुआ देखकर समुद्र मनुष्य का रूप रखकर हाथ में पूजा की सामग्री लिये हुए प्रकट हुआ। कृष्ण ने उसकी की हुई पूजा अंगीकार करके कहा—देखो सागर, मैं यहाँ अपने गुरुपुत्र को लेने आया हूँ। तुम अपनी लहरों में उसे बहा ले गये हो।

सागर ने कहा—स्वामी, मुझे उस बालक की कुछ भी खबर नहीं। मेरे भीतर शंख के रूप में पञ्चजन नाम का दैत्य रहता है। वही उस बालक को ले गया होगा।

यह सुनकर भगवान् ने सागर के भीतर प्रवेश किया। बहुत खोजने पर पञ्चजन दैत्य भगवान् को मिला। भगवान् ने उसे मारकर उसके अंग का पाञ्चजन्य नाम का शंख ले लिया। पर गुरु का पुत्र उस दैत्य के पेट में भी नहीं मिला। तब भगवान् उसकी खोज में यमराज के लोक को गये। वहाँ जाकर कृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख बजाया। शंख का शब्द सुनकर यमराज बाहर निकल आये और साक्षात् विष्णु के अवतार कृष्ण को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़े। भीतर ले जाकर उन्होंने विधि-पूर्वक कृष्ण की पूजा की। फिर हाथ जोड़कर कहा—स्वामी, सेवक के लिए क्या आज्ञा है?

कृष्ण ने कहा—अपने कर्म के अनुसार मेरा गुरुपुत्र अकालमृत्यु से मरकर आपके लोक में आया है। उसे आप मुझे ला दीजिए; क्योंकि गुरुजी ने उसे ही गुरुदक्षिणा में मुझसे माँगा है।

यमराज ने कहा—जो आज्ञा। मैं उसे अभी हाजिर करता हूँ। यह कहकर यमराज गये और गुरुपुत्र को ला दिया। कृष्णचन्द्र गुरुपुत्र को लेकर गुरु के पास आये। गुरु को उनका पुत्र देकर कृष्ण ने कहा—गुरु-जी, मैने आपकी आज्ञा का पालन कर दिया। अब आप और क्या चाहते हैं? कृपाकर आज्ञा दीजिए।

सांदीपिनि गुरु ने कहा—पुत्र, तुम मुझे गुरु-दक्षिणा दे चुके। मैं तुम दोनों भाइयों पर परम प्रसन्न होकर तुमको यह आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी सारी विद्या सफल हो—तुम्हारा निर्मल यश तीनों लोकों में फैले, और तुमने मुझसे जो कुछ पढ़ा या सीखा है, वह तुमको कभी न भूले।

इस प्रकार गुरुदक्षिणा से गुरु को प्रसन्न करके कृष्ण और बलराम मथुरा को लौट आये। बहुत दिनों के बाद कृष्ण-बलराम को पाकर वसुदेव और देवकी को बड़ा आनन्द हुआ, जैसे उन्हें खोया हुआ धन मिल गया हो।

यहाँ तक कहकर उस दिन बनारसी ने मनोहर को छुट्टी दे दी। कहा—आगे की कथा कल सुनना। दूसरे दिन फिर यों कहना शुरू किया—

उद्धवजी कृष्ण के प्यारे मित्र थे। वह कृष्ण के ही खानदान के यादव थे। कृष्णचन्द्र उलझे हुए राजनीति के मामलों में उन्हीं से सलाह लिया करते थे। इसका कारण यही था कि उद्धवजी ने नीति-शास्त्र देवतों के गुरु बृहस्पतिजी से पढ़ा था। वह बड़े बुद्धिमान् और चतुर थे। उद्धव को इन दिनों यह अभिमान हो गया था कि मैं बड़ा ज्ञानी और कृष्ण का भक्त हूँ। भगवान् कृष्ण को एक तो उनका यह अभिमान मिटाना था, दूसरे गोपियों को सँदेस भेजकर उनकी विरह-वेदना भी कम करनी थी।

एक दिन एकान्त में उद्धव को ले जाकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर आदर के साथ भगवान् ने उनसे कहा—मित्र उद्धव, तुमको मेरा एक काम करना होगा। तुम मेरे सखा और सच्चे हितकारी हो। मुझको तुम पर बड़ा विश्वास है। तुम बुद्धिमान् और चतुर भी बड़े हो। मुझे इस समय यहाँ बहुत से काम करने हैं, नहीं तो मैं ही चला जाता। देखो, व्रज में मेरा बचपन बीता है। नन्द और यशोदा की आँखों का तारा मैं था। गोपियाँ मुझसे शुद्ध प्रेम करती थीं। वे सब मेरे वियोग से व्याकुल हो रहे होंगे। गोपियाँ मेरी अनन्य भक्त हैं। वे मेरे सिवा और किसी को नहीं जानतीं। मैं उनका जीवन-प्राण हूँ। देखो, पानी से निकालकर मछली को सूखी जमीन में डाल दो तो उसकी जो दशा होती है, वही दशा मेरे बिना गोपियों की हो रही होगी। उनका मन मुझ (सबके आत्मा परमात्मा) में रम गया है। जो लोग मेरी चाह में इस लोक और परलोक का सुख छोड़ देते हैं, वे मुझको सबसे बढ़कर प्यारे होते हैं। तुम जाकर उन्हें मेरी ओर से समझाओ और शान्त करो।

उद्धव ने कृष्णचन्द्र का सँदेसा लेकर गोकुल के लिए यात्रा कर दी। शाम के समय उद्धवजी व्रज में पहुँचे। उद्धव को देखकर नन्द आदि गोपों और गोपियों ने उन्हें घेर लिया और कृष्णचन्द्र की कुशल पूछने लगे। कृष्ण के ऊपर उनका प्रेम देखकर उद्धव दंग रह गये। गोपियाँ उद्धव से पूछने लगीं—प्यारे कृष्ण क्या अब व्रज में नहीं आवेंगे? क्या वह इतने निठुर हो गये हैं कि अब उन्हें हमारी याद भी नहीं आती? उन्होंने माता-पिता को धीरज देने के लिए तुमको भेजा है; क्योंकि वे उनको भूल नहीं सकते। भला हमारे लिए भी कुछ सँदेसा भेजा है?

गोपियों के कृष्ण-प्रेम को देखकर उद्धवजी ने समझ लिया कि कृष्ण में वे तन्मय हो रही हैं। गोपियों का कृष्ण-प्रेम उनसे भी कहीं बढकर है। तब उद्धवजी ने उनसे कहा—गोपियो, तुम धन्य हो। तुम बड़े बड़े ऋषि-मुनियों से भी बढ़कर हो। बड़े-बड़े योगी और मुनि संसार की बातों को छोड़कर इस तरह कृष्ण भगवान् में मन नहीं लगा पाते, जिस तरह तुमने उनमें अपने मन को लगा रक्खा है। देखो, दान-पुण्य, जप-तप, वेदपाठ आदि अनेक अच्छे कर्म करते-करते मनुष्य को भगवान् की ऐसी भक्ति और प्रेम की प्राप्ति हजारों में कहीं एक को होती है। वही भक्ति और प्रेम तुमने सहज में पा लिया है। तुम बड़ी भाग्यवान् हो। तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घर-बार सब तजकर पुरुषोत्तम कृष्ण में मन को लगाया है। मैंने व्रज में आकर तुम्हारे दर्शन पाये, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। भगवान् कृष्ण ने मुझे तुम्हारे पास भेजकर मुझ पर बड़ी कृपा की। भगवान् कृष्ण ने तुम सबको जो सँदेसा भेजा है, उसे मन

लगाकर सुनो। भगवान् ने कहा है—सखियो, मेरा वियोग तुमको कभी नहीं हो सकता ; क्योंकि शरीर तो मेरा यहाँ पर है, पर मन मेरा तुम्हारे ही पास है। मैं ही सब प्राणियों का आत्मा हूँ, इसलिए सदा तुम्हारे हृदय में रहता हूँ। पृथ्वी, जल, आग, पवन और आकाश, ये पाँचो तत्त्व जैसे संसार की सभी चीजों में व्याप्त हैं, यानी इनसे ही सारी सृष्टि बनी है, वैसे ही मैं आत्मा रूप से सब जगत् में समाया हुआ हूँ। केवल ज्ञान की दृष्टि से मुझे देखा जा सकता है। जैसे नदियाँ सागर में जाकर मिल जाती हैं, वैसे ही चाहे जिस राह से, चाहे जिस नजर से मेरा भजन किया जाय, मनुष्य मुझसे ही आकर मिलता है। गोपियो, मैं तुम्हारा इष्टदेव होकर भी तुमसे इतनी दूर इसीलिए हूँ कि तुम सदा मेरे ही ध्यान में लवलीन रहो। इस तरह सदा मेरा ध्यान करते रहने से शुद्ध होकर तुम अन्त में मुझ को अपने पास ही देखने लगेगा और तब तुमको मेरे विरह का कष्ट नहीं होगा।

यह सुनकर गोपियों को बड़ा सन्तोष हुआ। वे कहने लगीं—उद्धवजी, श्यामसुन्दर का सँदेसा हमने बड़े ध्यान से सुना। आपने जो कहा कि कृष्ण को हम ज्ञान के द्वारा पा सकती हैं सो ठीक होगा। पर हमारी साधारण बुद्धि में यह ज्ञान वैराग्य जगह नहीं पा सकता। हम निराकार निर्गुण ब्रह्म को क्या जानें, हम तो उन्हीं कृष्ण से प्रेम करती हैं, जिन्होंने ब्रज में रहकर ब्रजवासियों को अपने सुन्दर रूप और लीलाओं से मोह लिया है। हम तो उन्हीं बंशीधारी ब्रज-विहारी के प्रेम में मगन हैं। उनके चरित्र गाती हैं और उन्हीं के दर्शन की अभिलाषा रखती हैं। हाँ, यह बात हमारे मन में बैठ गई है कि कृष्ण हमसे दूर नहीं हैं, क्योंकि वे हमारी आँखों में समाये हुए हैं, हमारे मन में बसे हुए हैं। अब वह मथुरा जाकर भले ही राजा हो गये हों, राजसी ठाट से रहते हों, पर हमारी नज़र में तो वह वही गउएँ चरानेवाले, बंसी बजानेवाले, माखन चुरानेवाले नन्दगोप के बालक ही रहेंगे।

इस प्रकार उद्धव ने गोपियों को और नन्द-यशोदा को समझा-बुझाकर शान्त किया और यह भी कहा कि कृष्णचन्द्र ने कहा है कि मैं तुम लोगों से एक बार अवश्य मिलूँगा। उद्धवजी गोपियों को शान्ति देने के लिए कई महीने तक ब्रज में रहे। गोपियों के साथ कृष्ण की चर्चा करने में उनको बड़ा सुख मिलता था। एक दिन वह गोपियों से और नन्द-यशोदा से विदा होकर अपने रथ पर सवार हुए। तरह-तरह की सामग्री नन्द ने कृष्ण को भेंट करने के लिए उद्धव को दी। यशोदा माता ने थोड़ा सा ताजा मक्खन एक मटकी में रखकर उद्धव को दिया और कहा—यह मक्खन मेरे कान्हा को दे देना। कहना, मैया ने अपने हाथ से दही बिलोकर

तेरे लिए यह मक्खन निकाला है। मेरा कान्हा मक्खन खाने का बड़ा शौकीन है, मक्खन उसे बहुत रुचता है। वहाँ शहर में ताजा मक्खन कहाँ मिलता होगा। यशोदाजी के पुत्र-स्नेह को देखकर उद्धव जी बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार सबसे विदा होकर वह गोकुल से मथुरा को चले। नन्द आदि सब उनके साथ व्रज की सरहद तक आये। गोपियों ने आँखों में आँसू भरकर उनको विदा किया। राह में गोपियों के प्रेम की सराहना और स्मरण करते हुए उद्धव ठीक समय पर मथुरा पहुँच गये।

मथुरा में पहुँचकर उद्धवजी कृष्णचन्द्र के पास गये। जाकर व्रज का सब हाल सुनाया, गोपों की दी हुई भेंटें सामने रक्खीं। व्रजवासियों के प्रेम का हाल सुनकर कृष्णचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए।

हस्तिनापुर में कृष्ण की बुआ कुन्ती और फुफेरे भाई पाँचो पाण्डव रहते थे। कृष्णचन्द्र ने बहुत दिनों से उनकी कुछ खैर-खबर नही पाई थी। भगवान् ने सोचा, किसी को भेजकर उनकी खबर लेनी चाहिए। तब सोचते-सोचते उन्होंने अक्रूर को वहाँ भेजने का निश्चय किया। अक्रूर से कृष्णचन्द्र ने मथुरा आते समय वादा भी किया था कि कंस को मारकर मैं तुम्हारे घर आऊँगा। वह वादा भी पूरा करना था और अपना भी काम था। इसलिए एक दिन आप अक्रूर के घर पधारे। अक्रूर ने बड़े आदर से उनको बिठाया, उनका आदर-सत्कार किया। तब भगवान् कृष्णचन्द्र ने अक्रूर से कहा—अक्रूरजी, अवस्था में बराबर होने पर भी नाते में आप हमारे बड़े और चाचा लगते हैं, इसलिए पूजनीय हैं। आप हमारे हित चाहनेवाले बन्धु हैं और हम आपकी सन्तान हैं। आप जानते हैं कि बुआ कुन्ती और उनके पुत्र पाण्डव महाराज पाण्डु के न रहने से अनाथ हो गये हैं। मुझे जहाँ तक मालूम है, पाण्डवों के भाई दुर्योधन आदि कौरव उनके प्रति अच्छा भाव नहीं रखते और चाचा धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रों को वश में नहीं रख सकते। बहुत दिनों से बुआ की और उनके पुत्रों की कुछ खबर नहीं मिली, इससे मेरा जी उन्हीं में लगा हुआ है और पिताजी को भी उनकी बड़ी चिन्ता है। मुझे राजकाज देखना पड़ता है, जिससे मथुरा छोडकर मेरा वहाँ जाना असम्भव है। इसलिए अगर आप पाण्डवों की कुशल जानने के लिए हस्तिनापुर चले जायँ, तो सब काम बन जायगा। आपकी बड़ी कृपा होगी। आप जाकर इतना देख आवें कि पाण्डव कष्ट में तो नहीं हैं।

जब भगवान् ने इस तरह अक्रूर से कहा, तब अक्रूरजी तुरन्त हस्तिनापुर जाने को तैयार हो गये। अक्रूर को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा देकर कृष्णचन्द्र अपने भवन को गये।

तेज घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, ऐसे रथ पर बैठकर अक्रूरजी हस्तिनापुर को गये। वहाँ पहुँचकर पहले वह राजा धृतराष्ट्र के पास गये। वहाँ भीष्म-पितामह, विदुर, वाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि सब लोगों से भेंट हुई। इसके बाद वह कुन्ती के भवन में जाकर कुन्ती और युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, इन पाँचो पाण्डवों से भी मिले। कुन्ती ने कृष्ण और बलभद्र की, देवकी और वसुदेव की कुशल पूछी और अपना भी सब हाल कहा। इसके बाद वहाँ का हाल-चाल अपनी आँखों से देखने के लिए अक्रूरजी हस्तिनापुर में रहे। उन्होंने देखा, राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हैं, और सभी दुष्ट स्वभाव के घमण्डी हैं। दुर्योधन का मन्त्री और मित्र कर्ण भी पाण्डवों से बैर रखता है। अक्रूर ने यह भी देखा कि पाण्डव बड़े तेजस्वी, बलवान् और वीर हैं। सब प्रजा उनको बहुत चाहती है। युद्ध-विद्या में वे इतने निपुण हैं कि दुर्योधन या कर्ण

उनकी बराबरी नहीं कर सकता। गदा चलाने में भीमसेन की और धनुष-बाण से लड़ने में अर्जुन की जोड़ उस समय सारे भारत में कोई वीर न था। कुन्ती और विदुर ने यह भी बताया कि कौरव पाण्डवों से इतना जलते हैं कि एक बार उन्हें मारने के लिए भोजन में उन्होंने विष दे दिया था।

सब हाल-चाल जानकर और कुछ दिन रहकर अक्रूरजी जब मथुरा को लौटने लगे, तब आँखों में आँसू भरे हुए कुन्ती ने पास आकर उनसे कहा—भाई, मेरे माता, पिता, भाई, स्वजन, कुल-परिवार की स्त्रियाँ और सखियाँ क्या कभी मुझे याद करती हैं? शरणागत की रक्षा

करनेवाले मेरे भतीजे कृष्ण, जिन्होंने दुष्ट कंस मामा को मारकर अपने माता-पिता और नाना उग्रसेन को क़ैद से छुड़ाया है, और बलभद्र क्या कभी अपनी इस दुखिया बुआ को और अपने अनाथ भाई पाण्डवों को याद करते हैं। भेड़ियों के झुण्ड में जैसे कोई हरिणी आ फँसी हो, वैसे ही मैं यहाँ कौरवों के बीच रहती हूँ।

अक्रूर ने कहा—बहन, धीरज धरो। तुम्हारे दुःखों का अब अन्त ही होनेवाला है। कृष्णचन्द्र ने इसीलिए मुझे भेजा है कि मैं यहाँ का सब हाल देख-सुनकर उनको बतलाऊँ। मुझे विश्वास तो नहीं है कि धृतराष्ट्र की मति बदलेगी, फिर भी मैं जाने के पहले उनसे मिलकर उनको भी समझाऊँगा। अगर वह मान गये तो इसमें उनका भी कल्याण होगा।

यों कहकर कुन्ती से विदा होकर अक्रूर जी अकेले में धृतराष्ट्र से मिले। वहाँ जाकर उन्होंने जाने की आज्ञा माँगी और फिर कहा—महाराज, अपने भाई यशस्वी नरेश पाण्डु की मृत्यु हो जाने से अब आप राजगद्दी पर बैठे हैं। आप का धर्म है कि आप अपने लड़कों और भतीजों को एक ही नजर से देखें, उनके साथ एक-सा बर्ताव करें। अगर आप ऐसा कर सके तो इसमें आप का ही कल्याण होगा। अगर आप इससे उलटा चले तो आपकी इस लोक में निन्दा होगी और परलोक में नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। राजन्, मरने के बाद परलोक में बेटा-बेटी या कोई और स्वजन किसी का साथ नहीं देता, धर्म ही साथ देता है। यह जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही यहाँ से जाता है। वहाँ अकेला ही अपने किए हुए पाप या पुण्य का फल भोगता है। यह समझकर आपको अपना कर्तव्य ठीक करना चाहिए।

अक्रूर के ये वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—अक्रूरजी, आपका कहना बहुत ठीक है। इसे मैं भी अच्छी तरह समझता हूँ। मगर करूँ क्या, पुत्र का स्नेह कहो, चाहे होनी कहो, उससे मैं लाचार हूँ। दुष्ट दुर्योधन पाण्डवों के साथ मनमाना व्यवहार करता है और मैं उसे रोक नहीं पाता।

अक्रूर ने समझ लिया कि धृतराष्ट्र को समझाना व्यर्थ है। जैसे चिकने घड़े पर पानी की बूँद नहीं ठहरती, वैसे ही हित का उपदेश धृतराष्ट्र के हृदय में जगह नहीं पा सकता। तब वह धृतराष्ट्र और भीष्म-पितामह आदि से विदा होकर मथुरा के लिए चल दिये।

यथासमय मथुरा पहुँचकर अक्रूर ने कृष्ण से सब हाल कह दिया। अक्रूर ने कहा—देखिए, आपकी बुआ और भाई पाण्डव बड़े कष्ट में हैं। दुर्योधन, दुःशासन आदि कौरव उनसे जलते हैं और इसका कारण यही है कि पाँचो पाण्डव विद्या, बल, बुद्धि और गुणों में उनसे श्रेष्ठ हैं। पाण्डवों के गुणों के कारण सारी प्रजा भी उन्हीं की तरफदार है। राजा धृतराष्ट्र अंधे तो हैं ही

पुत्र-स्नेह ने उनको और भी अंधा बना रक्खा है। सब कुछ जानते हुए भी वह साक्षी गोपाल बने बैठे रहते हैं। पुत्रों की ओर से पाण्डवों के ऊपर जो कुछ जुल्म होते हैं, उन्हें नहीं रोकते। और अगर कभी दुर्योधन के खिलाफ पाण्डवों के पक्ष में कुछ कहते भी हैं तो उसे सुनता कौन है? कुन्ती ने रो-रोकर आपसे इस अन्याय को मिटाने की प्रार्थना की है। मुझे भरोसा है कि आप जल्दी ही इसका कुछ उपाय करेंगे, जिसमें कुन्ती के कष्ट कम हों और पाण्डवों के ऊपर जुल्म होना बंद हो।

अक्रूर के मुख से हस्तिनापुर का हाल सुनकर कृष्णचन्द्र को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कहा—अक्रूरजी, मैं इसका उपाय जरूर करूँगा। समय आने दीजिए। समय पर किया गया काम जल्दी पूरा होता है। कौरवों के पाप का घड़ा जब भर जायगा, तब वे ऐसे डूबेंगे कि थाह न पावेंगे।

बनारसी ने कहा —बेटा, आज यहीं पर विश्राम है। कल फिर कृष्णचन्द्र के और चरित्र मैं तुमको सुनाऊँगा। दूसरे दिन बनारसी ने फिर यों कहना शुरू किया—

राजा कंस के दो रानियाँ थीं। उनका नाम अस्ति और प्राप्ति था। वे मगध (बिहार) के परमप्रतापी राजा जरासंध की लड़की थीं। जब कंस मारा गया, तब दुःख से व्याकुल होकर वे अपने पिता के घर चली गईं। वहाँ जाकर उन्होंने कृष्ण के हाथ से अपने पति के मारे जाने का सब हाल कह सुनाया। अपने दामाद के मरने की खबर सुनकर जरासंध आगबबूला हो गया। कंस जरासंध का सिर्फ दामाद ही नहीं था। वह उसका मित्र और दाहना हाथ भी था। वह कंस की मौत का बदला लेने के लिए तुरन्त तैयार हो गया। उसके पास बेशुमार सेना थी। धन की भी कमी न थी। वह आप भी बड़ा बलवान् था। उसने देश-देश के दस हजार बलवान् नरेशों को हराकर अपने यहाँ एक कैदखाने में बंद कर रक्खा था। उसने प्रण किया था कि ऐसे एक लाख राजा हो जाने पर उनकी बलि देकर भूतनाथ शंकर की पूजा करूँगा।

इतना बड़ा प्रतापी राजा भला कब इस अपमान को सह सकता था कि उसकी लड़कियों को कोई विधवा बना दे। जरासंध की आज्ञा से कई लाख सेना तैयार हो गई। उस सेना में हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सभी थे। जैसे समुद्र उमड पड़ा हो, वैसे ही वह जरासंध की सेना मथुरा की ओर चल पड़ी और उसने आकर चारो ओर से यादवों को घेर लिया। यह देखकर सब यादव घबरा उठे। कृष्ण ने सोचा, मेरा अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही हुआ है। जरासंध की सेना का विनाश करके इसे मैं छोड़ दूँगा। यह फिर जाकर बार-बार सेना जमा करके मुझपर चढ़ाई करेगा, और मैं हर बार इसकी सेना को मारकर इसे छोड़ दूँगा। इस तरह

पृथ्वी का बोझ बहुत कुछ हलका हो जायगा। इसके सिवा अभी जरासन्ध के मरने का समय भी नहीं आया और मेरे हाथ से इसकी मृत्यु भी नहीं लिखी है।

यों विचारकर कृष्ण भगवान् यादवों की सेना लेकर पुरी के बाहर निकले। उनके साथ बलभद्र भी अपना हथियार हल और मूसल लेकर चले। इसी समय आकाश से देवतों ने कृष्ण भगवान् और बलभद्र के लिए दो रथ भेज दिए। उन रथों पर दिव्य अस्त्र-शस्त्र और कवच रक्खे हुए थे और सारथी (हाँकनेवाला) भी बैठा था। उन्हीं रथों पर दोनों भाई सवार होकर शत्रुसेना का संहार करने लगे। इतने में जरासंध ने सामने आकर ललकारकर कहा—अरे छली कृष्ण, तू तो अभी बालक है। तुझसे लड़ते मुझे शर्म आती है। हाँ, बलभद्र, अगर तू कुछ हिम्मत और ताक़त का घमंड रखता है तो मेरे सामने आ। या तो मुझे मारकर विजय प्राप्त कर और या मेरे पैने बाणों से मरकर स्वर्ग को सीधा चला जा। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—अरे अधम! वीर लोग अपने मुँह से अपना बखान नहीं करते—उनकी बड़ाई दूसरे ही लोग करते हैं। मर्द लोग लड़ाई में ही अपनी शक्ति की बानगी दिखलाते हैं। अगर हमारे सामने ठहरेगा तो जैसे पापी कंस मारा गया है, वैसे ही तू भी मारा जायगा।

श्रीकृष्ण के रथ पर गरुड के चिह्न की ध्वजा फहरा रही थी और बलदेव के रथ के झंडे पर ताड़ के पेड़ का निशान बना हुआ था। दोनों भाई अपने रथ बढ़ाकर शत्रु की सेना में पिल पड़े और शत्रु की सेना का संहार करने लगे। श्रीकृष्ण इतनी फुर्ती से बाण बरसा रहे थे कि कोई यह न देख पाता था कि कब वह तर्कस से तीर निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और कब उसे निशाने पर छोड़ते हैं। हाथियों के मस्तक फट गये, घोड़ों के सिर कट गये, रथ छिन्न-भिन्न होने लगे। उस भयंकर समर में चारों ओर घायलों के कराहने का शब्द गूँज उठा। खून की नदी बह चली। जैसे कोई लड़का खेल करे, इस तरह थोड़े ही समय में आसानी से कृष्ण और बलराम ने जरासंध की उस भारी सेना का सत्यानाश कर डाला। जरासंध की भी दुर्गति हो गई। उसका सारथी मारा गया। घोड़े भी मर कर गिर पड़े। रथ भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया। केवल शरीर में प्राण रह गये। इसी बीच में महाबली बलभद्र ने लपककर जरासंध को पकड़ लिया। इसके बाद जब बलभद्र ने जरासंध को मार डालना चाहा, तब कृष्ण भगवान् ने उनको रोककर कहा—दादा, इसे मारना बेकार है। अगर यह हयादार होगा तो फिर इधर को मुँह नहीं करेगा। लाख कुछ हो, यह हमारा नातेदार है, इस लिए हमें अपने हाथ से इसकी हत्या न करनी चाहिए।

और बल का बखान सुनकर कालयवन अपनी सेना के साथ सीधा मथुरा में आ पहुँचा। उसने जरासंध के आने के पहले ही मथुरा को घेर लिया। इसी समय जासूसों ने आकर श्रीकृष्ण को ख़बर दी कि आज ही कल में जरासंध भी आने वाला है।

यह ख़बर पाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने मन में कहने लगे कि यह तो बड़ी मुसीबत आई। अगर मैं कालयवन से लडने में फँसा जाता हूँ तो उधर मौका पाकर जरासन्ध यादवों को मारेगा और लूटपाट मचा देगा। अच्छी बात है,- मैं अभी विश्वकर्मा देवता को बुलाकर यहाँ से बहुत दूर समुद्र के भीतर एक ऐसी पुरी एक ही दिन और रात में बनवाता हूँ, जो एक बहुत मज़बूत क़िले का काम देगी। उसपर कोई भी शत्रु चढ़ाई न कर सकेगा।/

यह सोचकर भगवान् ने विश्वकर्मा को याद किया। उसी समय विश्वकर्मा स्वर्ग से आ पहुँचे। भगवान् ने हाथ जोड़े खड़े हुए विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि अभी जाकर तुम एक रात में ही समुद्र के भीतर एक पुरी बना दो, जिसका घेरा अड़तालीस कोस का हो। भगवान् की आज्ञा पाते ही विश्वकर्मा ने समुद्र के भीतर द्वारकापुरी बना दी। इन्द्र की सुधर्मा सभा के समान राजदरबार का भवन भी विश्वकर्मा ने उसमें बना दिया। विश्वकर्मा ने उसे बनाने में अपनी सारी कारीगरी ख़र्च कर दी। वह पुरी एक ही रात में तैयार कर दी। कृष्णचन्द्र ने उसी रात को मथुरा पुरी खाली कर दी और अपने योगबल से सब मथुरावासियों को मय उनके साजसामान के चुपचाप वहीं पहुँचा दिया। कालयवन मथुरा को घेरे पड़ा ही रहा, उसे कुछ भी ख़बर नहीं हुई। कारण, भगवान् ने आकाशमार्ग से सबको द्वारका में पहुँचा दिया था।

कृष्णचन्द्र जब मथुरापुरी ख़ाली करा चुके, तब उन्होंने बलभद्र से कहा—दादा, तुम यहीं पुरी में रहकर जो थोड़े से यादव वीर रह गये हैं, उनके साथ संपत्ति की रक्षा करो; मैं कालयवन को मारकर अभी आता हूँ। इतना कहकर गले में कमल के फूलों की माला पहनकर कमलनयन कृष्णचन्द्र मथुरा के फाटक से बाहर निकले। जैसे पूरब में उदय होने पर चन्द्रमा की शोभा होती है, वैसे ही पुरी के बाहर निकलने पर भगवान् की शोभा हुई। श्रीकृष्ण ने उस समय चतुर्भुज रूप रख लिया था। उनके श्याम शरीर पर पीताम्बर की अपूर्व शोभा थी। मन्द मुसकान और आनन्द की झलक से उनका मुखारविन्द मन को मोहनेवाला हो रहा था। भगवान् पैदल ही थे और उनके हाथ में कोई शस्त्र नहीं था। कालयवन ने कृष्णचन्द्र को देखते ही पहचान लिया। नारद ने वासुदेव कृष्ण के जो चिह्न बतलाये थे, वे सब उन्होंने उस समय धारण कर रक्खे थे। कालयवन ने सोचा, यह इस समय निहत्थे और पैदल हैं। इनसे सेना लेकर रथ

पर बैठकर शस्त्र लेकर लड़ना अन्याय होगा। मैं भी अकेले, पैदल और निहत्था होकर इनसे लड़ूँगा।

भगवान् कालयवन को दूर ले जाकर दूसरे ही उपाय से मारना चाहते थे, इसलिए वह उसके आगे होकर भागे। यवन ने पीछे से दौड़कर उनको पकड़ना चाहा। बड़े-बड़े योगियों की भी पकड में जो नहीं आते, उन कृष्ण को भला वह नीच क्या पा सकता था? आगे-आगे हाथ ही दो हाथ के फासले पर कृष्ण थे। कालयवन समझता था, अब मैंने पकड़ लिया! अब मैंने पकड़ लिया! इसी तरह दौड़ाकर कृष्णचन्द्र उसे बहुत दूर ले गये। रास्ते में एक पहाड़ मिला। उस पर चढ़कर भगवान् एक अँधेरी खोह में घुस गये। कालयवन भी पीछे-पीछे यह कहता हुआ उसी खोह में घुस पड़ा कि अरे कृष्ण! मैंने तेरी बहादुरी और पराक्रम की बड़ी तारीफ सुनी थी। यही तेरी बहादुरी है! तू प्रसिद्ध यादवों के वंश में पैदा हुआ है। इस तरह पीठ दिखाकर भागना तुझे नहीं शोभा देता।

कालयवन ने उस खोह के भीतर जाकर कुछ दूर पर एक मनुष्य को सोता हुआ पाया। भगवान् के शरीर का पीताम्बर उसके ऊपर पड़ा हुआ था। असल में भगवान् ने अपना पीताम्बर उसे उढ़ा दिया था, और आप अँधेरे में छिप रहे थे। कालयवन ने पीछे से जाकर उस आदमी को देखा तो समझा, यह कृष्ण भगवान् ही उसे धोखा देने के लिए यहाँ आकर सो रहे हैं। काल के मुख में जानेवाले कालयवन ने एक लात उस पुरुष के तानकर मारी और कहा—अरे धूर्त कृष्ण, तू मुझे धोखा देकर निकल जाना चाहता है।

लात लगते ही वह आदमी अकचकाकर उठ बैठा। उसने धीरे-धीरे आँखें खोलकर सामने देखा। पास ही खड़े हुए कालयवन के ऊपर उसकी नजर पड़ते ही कालयवन के शरीर में आप से आप आग पैदा हो गई और वह दम भर में वहीं जलकर राख का ढेर हो गया।

यह कथा सुनकर मनोहर को बड़ा अचरज हुआ। उसने अपने पिता से कहा—पिताजी, यह तो बड़ी विचित्र कथा है। वह आदमी कौन था? उसका क्या नाम था? उसकी नजर पड़ते ही कालयवन कैसे जलकर राख का ढेर हो गया? वह आदमी उस खोह में जाकर क्यों सोया था?

बनारसी ने कहा—वह इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न राजा मान्धाता के लड़के मुचुकुन्द थे। एक समय दैत्यों का बल बहुत बढ़ गया था। उन्होंने देवतों को हराकर स्वर्ग का राज्य छीन लिया था। देवतों ने महापराक्रमी वीर सूर्यवंशी राजा मुचुकुन्द से सहायता की प्रार्थना की। मुचुकुन्द देवताओं का पक्ष लेकर असुरों से लड़ने के लिए देवलोक को गये। वहीं रहकर उन्होंने असुरों को हराया और देवतों की रक्षा की। कुछ दिन बाद शिवजी ने अपने पुत्र स्वामिकार्तिकेय को देवतों का सेनापति बना दिया। अब देवतों को दैत्यों का कोई डर नहीं रहा।

इसके बाद इन्द्र ने राजा मुचुकुन्द से कहा—महाराज, आपने हमारे लिए बड़ा कष्ट उठाया। राज्य का ऐश्वर्य और अपने बाल-बच्चों का सुख छोड़कर आप यहाँ चले आये और

है। मैं तुमपर कृपा करने के लिए ही इस कन्दरा में आया हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँगो।

राजा ने कहा—भगवन्, अब मुझे किसी वस्तु की चाह नहीं रही। आपके दर्शन मिल जाने पर फिर कौन कामना बाक़ी रह जाती है? मैं केवल यही वरदान माँगता हूँ कि कभी आपको न भूलूँ, सदा आपका भजन करता रहूँ।

इसके बाद राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम कर इच्छानुसार चले गये। श्रीकृष्णचन्द्र भी मथुरा को लौटकर आये और यवनों की जो सेना वहाँ डटी पड़ी थी, उसे मार भगाया। यवन-सेना के साथ बहुत-सा धन और रत्न थे। थोड़े से वीर यादव मथुरा में रह गये थे, उन्होंने वह संपत्ति लूटकर अपने क़ब्ज़े में कर ली। श्रीकृष्ण भगवान् इस तरह कालयवन को मारकर द्वारका जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि इतने में काफी सेना लेकर अठारहवीं बार जरासन्ध आ पहुँचा।

भगवान् ने उस समय यह निश्चय किया कि अब जरासन्ध से लड़ने की जरूरत नहीं है; क्योंकि अभी इसके मरने का समय नहीं आया। वह बलभद्रजी के साथ पुरी के बाहर निकलकर पैदल ही भाग खड़े हुए। इस भागने का मतलब यही था कि जरासन्ध सेना को लेकर उनका पीछा करेगा तो यादव लोग अपनी सब संपत्ति और सामग्री लेकर आसानी से द्वारका को जा सकेंगे।

जरासन्ध ने कृष्ण-बलराम को भागते देखकर समझा कि अब की डरकर भाग खड़े हुए हैं। इसीलिए सेना को साथ लेकर उन्हें पकड़ने के विचार से उसने उनका पीछा किया। दोनों वायु-वेग से, जैसे उड़ते हुए, चले जा रहे थे। जरासन्ध की सेना पीछे रह गई। मगर जरासन्ध नहीं रुका। वह तेजी से रथ बढ़ाता हुआ चला जा रहा था। जब द्वारकापुरी नज़दीक आ गई, तब श्रीकृष्ण और बलराम जरासन्ध को धोखा देने के लिये प्रवर्पण पहाड़ पर चढ़ गये। इस पहाड़ पर बारहो महीने पानी बरसता है, इसी से इसका नाम प्रवर्पण है। जरासन्ध रथ से उतरकर अपनी सेना के साथ पहाड़ पर चढ़ गया। मगर चारों ओर कोना-कोना छान डालने पर उसे श्रीकृष्ण या बलभद्र कोई पता नहीं मिला। बात यह हुई कि कृष्ण और बलभद्र उस पहाड़ के ऊपर से नीचे पृथ्वी पर फाँद पड़े और वहाँ से द्वारकापुरी पहुँच गये। जरासन्ध से अगर कोई कहता भी कि कृष्ण-बलदेव इतने ऊँचे पर्वत से कूद गये हैं तो उसे विश्वास न होता। सचमुच इतने ऊँचे से नीचे गिरकर कोई मनुष्य बच नहीं सकता। मगर कृष्ण-बलदेव तो परमेश्वर थे, उनके

लिए यह काम लड़कों के खेल से भी सहल था। जरासन्ध ने सोचा, दोनों भाई ज़रूर इसी पहाड़ में कहीं छिपे हैं। तब उसने पहाड़ में चारो ओर लकड़ियाँ चुनवाकर आग लगवा दी। जंगल धायँ-धायँ जलने लगा। जब खूब आग फैल गई, तब कृष्ण-बलराम को उसी में जल गया समझकर सेना-सहित जरासन्ध लौट गया। उसे पता ही न था कि समुद्र के भीतर कोई नई नगरी बसी है और उसी में सकुशल दोनों भाई पहुँच गये हैं। उधर कृष्णचन्द्र यादवों के साथ बड़े आनन्द से द्वारकापुरी में रहने लगे। अब बलभद्र के व्याह की कथा सुनो।

आनर्त देश के राजा रैवतक बड़े प्रतापी और महात्मा थे। उनके रेवती नाम की एक कन्या थी। वह बड़ी ही सुन्दरी, सुशील और गुणवती थी। राजा को आस-पास कोई उसके योग्य वर नहीं मिला। उन्होंने पृथ्वीमण्डल में खोज कराई; मगर कोई मनुष्य ऐसा न पाया, जिसे वह पसन्द करते। सभी में कोई न कोई दोष उनको दिखाई पड़ा। तब वह अपनी लड़की को लेकर ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी से यह पूछने के लिए गये कि इस लड़की के लायक वर कौन है? ब्रह्माजी की सभा में जब वह पहुँचे, उस समय वहाँ नाच और गाना हो रहा था। इसलिए उन्हें दम-भर रुक जाना पड़ा। गाना बन्द होने पर ब्रह्माजी ने राजा की ओर देखकर उनका सत्कार किया और अपने पास आने का कारण पूछा। राजा की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने कहा—राजन्, जितनी देर तुम यहाँ ठहरे, उतनी देर में पृथ्वी पर कई युग बीत गये। अब तो तुम्हारे समय का कोई आदमी नहीं रह गया। ख़ैर, तुम्हारी इच्छा पूरी होने का यही ठीक समय है। जाओ, द्वारकापुरी में शेष के अवतार बलभद्रजी हैं। उनका जन्म हुआ है। वही तुम्हारी कन्या के योग्य वर हैं। उनके साथ अपनी कन्या का व्याह कर दो। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर राजा रैवतक पृथ्वी पर आये। उन्होंने द्वारकापुरी में जाकर अपनी कन्या रेवती का व्याह बलरामजी के साथ कर दिया। अब हम कृष्णचन्द्र के विवाहों की कथा कहेंगे। श्रीकृष्ण के ८ पटरानियाँ थीं। इनके अलावा सोलह हजार एक सौ और रानियाँ थीं। सबसे पहले रुक्मिणी के साथ उनका व्याह हुआ था, इसलिए पहले उसी का वर्णन किया जाता है।

विदर्भ (बरार) देश के राजा भीष्मक बड़े प्रतापी सत्यवादी राजा थे। सब राजा उनको मानते थे। राजा भीष्मक के पाँच लड़के थे और एक लड़की। लड़कों में रुक्मी सबसे बड़ा था। उससे छोटे लड़कों के नाम ये थे—रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली। कन्या का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी लाखों में एक सुन्दर थी। उसके रूप और गुणों की खबर चारों ओर फैल गई थी। उस समय के सभी राजा और राजकुमार उन्हें पाने की अभिलाषा रखते थे।

मगर रुक्मिणी ने जिस दिन नारदजी के मुख से श्रीकृष्ण के रूप का गुण और पराक्रम का वर्णन सुना, उसी दिन से उन्होंने अपने मनमें यह प्रण कर लिया कि मैं श्रीकृष्ण से ही व्याह करूँगी। अगर किसी कारण से श्रीकृष्ण ने मुझे अंगीकार न किया या और कोई बाधा आ खड़ी हुई तो मैं कोंरी ही रहूँगी, पर व्याह न करूँगी। रुक्मिणी के मा-बाप भी कृष्ण को सर्वश्रेष्ठ समझकर उनसे ही रुक्मिणी का व्याह करना चाहते थे। मगर रुक्मिणी का भाई कृष्ण के विरोधी राजों के दल का था। कृष्ण से वैर रखनेवाले जरासन्ध, शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्र आदि राजा उसके साथी और मित्र थे। रुक्मी को जब यह मालूम हुआ कि रुक्मिणी श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहती हैं और इस मामले में उनके मा-बाप भी रुक्मिणी के साथ हैं तो वह आपे से बाहर होगया। उसने अपने पिता राजा भीष्मक के पास जाकर कहा—महाराज, मैं आपसे एक प्रार्थना करने आया हूँ। भीष्मक ने कहा—कहो बेटा, क्या बात है?

रुक्मी बोला—महाराज, राजकुमारी रुक्मिणी अब सयानी हो गई है। उसके व्याह की बात क्या आपने अभी तक नहीं सोची?

भीष्मक ने कहा—उसके व्याह की बात एक तरह से पक्की ही है। रुक्मिणी यादवकुल-दीपक श्रीकृष्ण को अपना पति मान चुकी है। मैं भी उसके चुनाव को पसन्द करता हूँ। हम क्षत्रियों में स्वयंवर की चाल पुरानी है। यह भी एक तरह का स्वयंवर ही हुआ। मैं तुमसे इस बारे में कहने ही वाला था। तुमने आप ही इस की चर्चा चला दी, यह अच्छा ही हुआ।

रुक्मी ने कहा—रुक्मिणी के पसंद करने से क्या होता है? आप तो बड़े-बूढ़े हैं, आप ही विचारिए, कृष्ण क्या इस योग्य है कि वह आपका दामाद बने? वह वन में गउएँ चरानेवाला गँवार कहाँ का राजा है, जो एक राजकुमारी का पति बने? और अनेक बलवान राजकुमार हैं, उनके साथ रुक्मिणी का व्याह कीजिए।

भीष्मक ने कहा—बेटा, श्रीकृष्ण के बारे में तुम कुछ नही जानते। आज दिन रूप में, गुण में, विद्या में, बल में कौन उनकी बराबरी कर सकता है? बड़े-बड़े राजा उनके पैरों में आकर सिर रखते हैं। वही रुक्मिणी के योग्य वर हैं। तुम इस का विरोध न करो—मेरा कहा मानो।

रुक्मी ने कहा—नहीं पिताजी, इस काम में आपको मेरी बात माननी होगी। मैंने रुक्मिणी के लिए चेदि देश के राजा महाबली शिशुपाल को पसंद किया है। उन्हें वचन भी दे चुका हूँ। उन्हीं के साथ रुक्मिणी का व्याह करूँगा। आप जल्दी से तिलक चढ़ाने की तैयारी कीजिए।

भीष्मक ने देखा, रुक्मी बड़ा हठी है। वह उनकी बात नहीं मानेगा। जो होनी है वही होगी। यह सोचकर उन्होंने कहा—खैर तुम्हारी मर्जी। मुझे क्या, मैं तो अब बूढ़ा हो गया। अपना भला बुरा तुम खुद सोच सकते हो।

रुक्मी ने पिता के पास से आकर अपने मित्र शिशुपाल के पास पत्र लिखा कि मित्र शिशुपाल, पिताजी ने मेरी बहन रुक्मिणी का व्याह हमारे शत्रु कृष्ण के साथ करने का पक्का इरादा कर लिया था। मुझे जब यह हाल मालूम हुआ तो मैंने सब मामला ही उलट दिया। रुक्मिणी का व्याह अब तुम्हारे ही साथ होगा। बहुत जल्दी ब्राह्मण के हाथ तुम्हारे पास तिलक का नारियल भेजा जायगा। तुम सब तरह तैयार रहना। कृष्ण को जब यह खबर मिलेगी कि उसके मुँह का कौर छीन लिया गया है तो वह जरूर इस शुभ काम में कुछ न कुछ शुधा खड़ी करेगा; क्योंकि वह बड़ा फितरती है। तुम जब व्याहने आना तो अपने साथ काफी सेना लेकर आना। मैं भी यहाँ काफी इंतिजाम कर रक्खूँगा, जिसमें कृष्ण कुछ विघ्न न डाल सके।

रुक्मिणी के भाई का यह पत्र पाकर शिशुपाल की बाछें खिल गईं। जिस रुक्मिणी के केवल दर्शनों के लिए बड़े-बड़े वीर आँखें बिछाते हैं, वही उसकी पत्नी होगी, यह क्या कुछ कम सौभाग्य की बात है। बस डर है तो कृष्ण का! लेकिन अकेले कृष्ण क्या कर लेंगे। उसके साथ भी तो जरासन्ध आदि बड़े-बड़े योद्धा और अनगिनती सेना रहेगी। अभी-अभी कृष्ण जरासन्ध से हारकर भाग चुके हैं। शिशुपाल इसी तरह मनमोदक खाने लगा।

उधर रुक्मिणी को जब यह खबर मिली कि रुक्मी उनके प्रिय-मिलन में बाधा डाल रहा है, श्रीकृष्ण से वैर रखने के कारण वह उनका व्याह शिशुपाल से करने के लिए तैयार है तो उनका बुरा हाल हो गया। उन्होंने रो-रोकर आँखें लाल कर लीं। उनकी सखियों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया-बुझाया और धीरज दिया, तब वह कुछ शान्त हुईं। पिता से कुछ कहना बेकार था; क्योंकि वह रुक्मी का कहा टाल नहीं सकते थे। रुक्मी से भी कहना व्यर्थ ही था; क्योंकि वह कृष्ण को अपना कट्टर शत्रु समझता था और अपने हठ को न छोडना उसका स्वभाव था। रुक्मिणी हर तरह लाचार थीं। एक ईश्वर के सिवा उनका और कोई मददगार नहीं था।

रुक्मिणी अपने मन में कहने लगीं—अब मैं क्या करूँ? अपना सगा भाई मेरा शत्रु हो गया है। मैं शिशुपाल को तो कभी अपना पति नहीं बना सकती। चाहे मेरे प्राण चले जायँ, मगर शिशुपाल मुझे नहीं पा सकता। हे अनाथों के नाथ! हे दीन बन्धु दीनानाथ! अब मेरी

लाज आपही के हाथ है। मुझ अबला में इतना बल दो कि मैं इस ज़ोर-ज़ुल्म के आगे सिर न झुकाऊँ, अपने प्रण पर डटी रहूँ। मुझे तुम्हारा ही सहारा है स्वामी!

रुक्मिणी को न भूख प्यास लगती थी, न नींद आती थी। वे चिन्ता और शोक में घुली जा रही थीं। धीरे-धीरे ब्याह का मुहूर्त निकट आ गया। रुक्मिणी की इच्छा के ख़िलाफ़ शिशुपाल के यहाँ रुक्मी ने तिलक भी भेज दिया था। अब रुक्मिणी की सहायता करनेवाला, इस संकट से उनको उबारनेवाला कोई न देख पड़ा। अन्त में उनको कृष्णचन्द्र के पास पत्र लिखकर उन्हें बुलाने की सूझी। रुक्मिणी ने अपने कुलपुरोहित एक बूढ़े ब्राह्मण को रुक्मी से छिपाकर श्रीकृष्ण के पास भेजा। ब्राह्मण के हाथ एक चिट्ठी लिखकर उन्होंने भेजी। उसमें यह लिख दिया कि मै अपने मन में आपको अपना पति मान चुकी हूँ, इसलिए अगर आप मेरे जीवन की और मेरे धर्म की रक्षा करना चाहते हैं तो तुरन्त चले आइए। कहीं ऐसा न हो कि शेर के हिस्से को सियार ले जाय। अगर आप न आये तो मैं और तो कुछ नहीं कर सकती, शिशुपाल के साथ जाने के बदले अपने प्राण दे दूँगी।

ब्राह्मण देवता चिट्ठी लेकर सीधे द्वारका को सिधारे। द्वारका वहाँ से दूर थी और वह कभी वहाँ गये नहीं थे। इधर समय भी बहुत थोड़ा ही था। वह राह में थककर एक जगह लेट गये। वहाँ से द्वारका कम से कम चार दिन की राह थी। श्रीकृष्णचन्द्र तो घट-घट की बात जानते हैं। उन्हें रुक्मिणी के मन का हाल पहले ही से मालूम था। उन्होंने सोचा, ब्राह्मण ठीक समय पर यहाँ नहीं पहुँच सकता। उसी समय श्रीकृष्ण ने गरुड़ को बुलाकर यह आज्ञा दी कि ब्राह्मण फलाँ जगह पर अचेत पड़ा सो रहा है, उसको तुम अभी द्वारका पहुँचा दो, पर उसे इसकी कुछ ख़बर न होने पावे। कृष्ण की आज्ञा पाकर गरुड़ उसी समय जाकर ब्राह्मण को उठा लाये और द्वारकापुरी के बाहर एक बाग में कुएँ के पास सुला दिया।

ब्राह्मण की जो आँख खुली तो अकचकाकर वह उठ बैठे। इधर-उधर देखा, तो सामने ही द्वारकापुरी के बड़े-बड़े महल देख पड़े। अब वह बड़े अकचकाये। उन्होंने अपने मनमें कहा—यह मै कहाँ आ गया? मैं तो एक जंगल में थककर, राह भटककर सो गया था। यह तो कोई शहर जान पड़ता है। यह शब्द समुद्र का गरजना-सा जान पड़ता है। क्या यही द्वारकापुरी है? रुक्मिणी ने बतलाया था कि द्वारका समुद्र के बीच में बसी है। इतने में कुछ आदमी पुरी के बाहर निकले। ब्राह्मण देवता ने उनसे पूछा—यह कौन-सा शहर है? उन लोगों के मुख से जब उनको यह मालूम हुआ कि यही द्वारकापुरी है तो वह आनन्द से उछल पड़े। उन्होंने अनुमान

किया, यह सब उन्हीं भगवान् कृष्णचन्द्र की कृपा है। अब ब्राह्मण को काम पूरा होने का पूरा विश्वास हो गया। वह उठकर द्वारकापुरी में गये। पता लगाते हुए श्रीकृष्ण के महल की ड्योढ़ी पर पहुँचे। भगवान् की ड्योढ़ी पर ब्राह्मणों के लिए कोई रोक-टोक नहीं थी। इसलिए ब्राह्मण देवता सीधे घुसते चले गये। भीतरी ड्योढी पर जाकर उन्होंने द्वारपाल को अपना परिचय देकर कहा—वह कृष्णचन्द्र के दर्शन करना चाहते हैं। द्वारपाल ने जाकर भगवान् को खबर कर दी। भगवान् तो उनकी राह ही देख रहे थे। वह आप ड्योढ़ी पर आकर महल के भीतर बड़े आदर से ब्राह्मण को लिवा ले गये।

श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण के पैर अपने हाथ से धोकर उनका सत्कार किया। ब्राह्मण भोजन आदि से छुट्टी पाकर जब आराम से बैठे तो श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे ब्राह्मण देवता, आपका मन सदा सन्तुष्ट रहता है न ? ब्राह्मण का सबसे बड़ा धर्म सन्तोष ही है। जो कुछ मिल जाय, उसी में सन्तोष करके अपने धर्म को जो निबाहता है, वही सच्चा ब्राह्मण है। उसकी कोई कामना ऐसी नहीं रह जाती, जो पूरी न हो। इसके खिलाफ जो ब्राह्मण सन्तोष से काम नहीं लेता, लायँ-लायँ किया करता है। उसे चाहे इन्द्रलोक की सम्पत्ति या सुख मिल जाय तो भी शान्ति नहीं मिलती। जिसके मन में सन्तोष है, वही सुखी है। आप किस काम से इतनी दूर मेरे पास आये हैं, कृपा कर कहिए।

ब्राह्मण ने क्रम से भगवान् के प्रश्नों का उत्तर देकर रुक्मिणी की चिट्ठी उनके हाथ पर रख दी। उसमें बहुत कुछ प्रार्थना लिखने के बाद रुक्मिणी ने लिखा था—हे यदुनंदन, मैं तो आपकी हो चुकी ; अब मेरी लाज आपके हाथ में है। आज के तीसरे दिन मेरा ब्याह है। ठीक समय पर आप को आ जाना चाहिए। ब्याह के पहले मैं अंबिका देवी की पूजा करने घर से जाऊँगी। वही मौका है। उस समय आप मुझे हर ले जाइए।

रुक्मिणी की चिट्ठी पढकर श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण से कहा—आप कोई चिन्ता न करें ; मैं ज़रूर राजकुमारी की इच्छा पूरी करूँगा। ब्राह्मण देवता विश्राम करने लगे। कृष्ण ने बलभद्र से भी कुछ नहीं बतलाया। उसी समय दारुक नाम के अपने सारथी को बुलाकर उससे कहा—सवेरे तुम मेरा रथ जोतकर तैयार रखना। एक ही दिन में मुझे विदर्भ देश पहुँचना है। प्रातःकाल दारुक सारथी रथ जोतकर महल के द्वार पर हाजिर हो गया। भगवान् तैयार होकर रथ पर बैठ गये और ब्राह्मण को भी उसी पर बिठा लिया। रथ के घोडे हवा से बातें करते हुए उड़ चले। ठीक समय पर कृष्णचन्द्र विदर्भ देश में पहुँच गये। नगर के बाहर ही उन्होंने को

दिया और उनसे कहा—आप जाकर राजकुमारी को खबर दीजिए कि मैं आ गया हूँ; अब घबराने का कोई काम नहीं है।

ब्राह्मण देवता जिस समय रुक्मिणी के पास पहुँचे, उस समय वह व्याकुल होकर उन्हीं की राह देख रही थीं। ब्राह्मण को देखते ही वह उनके पास दौड़ी आई। ब्राह्मण ने सब हाल बताकर कहा—राजकुमारी, कृष्णचन्द्र आ गये हैं और उन्होंने कहला भेजा है कि मैं राजकुमारी को अवश्य ले जाऊँगा। रुक्मिणी ने सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण को अपने गले का हार उतार कर दे दिया। ब्राह्मण प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए अपने घर गये।

इधर भीष्मक राजा को जब कृष्णचन्द्र के आने का समाचार मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुए। कृष्ण का स्वागत करने के लिए वह खुद गये। एक बहुत ही उत्तम भवन में लाकर भीष्मक ने उनको टिकाया। भगवान् ने वहाँ यही ज़ाहिर किया कि वह राजा भीष्मक की कन्या के विवाह का उत्सव देखने आये हैं। रुक्मी को भी कृष्ण के आने की ख़बर मिल गई। पहले तो वह घबराया, मगर फिर उसने सेना का काफी इंतजाम कर देना ही काफी समझा। उसने सोचा, कृष्ण आये हैं तो क्या कर लेगें? वह अकेले ही आये हैं, साथ में एक सिपाही भी नहीं है। इसलिए उनसे डरने की कोई बात नहीं। अकेले कुछ विघ्न करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ सकती। अकेले आने से जान पड़ता है, उनका ऐसा कोई इरादा भी नहीं। और, अगर कृष्ण ने कुछ गड़बड़ की भी तो मैं उनको उसका मज़ा चखा दूँगा। उसी दिन शिशुपाल की बरात भी आ गई। शिशुपाल के बाप का नाम दमघोष था। उनके साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि बड़े-बड़े राजा अपनी-अपनी सेना साथ लेकर आये थे। वे सब कृष्ण के वैरी थे। उधर सवेरे बलभद्रजी को जब यह मालूम हुआ कि कृष्ण अकेले ही विदर्भ देश को गये हैं और उनका इरादा रुक्मिणी के हर लाने का है तो उन्होंने समझ लियो कि वहाँ लड़ाई-झगड़ा जरूर होगा। इसीलिए पीछे से वह भी बहुत सी यादवों की सेना साथ लेकर राजा भीष्मक की राजधानी कुंडिनपुर में पहुँच गये। नगर में कृष्णचन्द्र सैर करने गये। उस समय सभी पुरवासी उनके रूप को देखकर रीझ गये। वे सब आपस में बातें करने लगे कि रुक्मिणी के योग्य वर तो यही हैं।

विवाह के दिन रुक्मिणीजी दिन भर निर्जल व्रत रहीं। सन्ध्या से कुछ पहले कुलरीति के अनुसार वह अंबिका देवी की पूजा करने के लिए उनके मंदिर को चलीं। वह उस समय मौनव्रत धारण किये हुए थीं। उनके साथ बड़ी बूढ़ी औरतें, उनकी माता, सखियाँ

और कुछ सोहागिन ब्राह्मणी भी थीं। रुक्मी ने कृष्ण के भय से रुक्मिणी के साथ चुने हुए सिपाहियों की सेना रखवाली के लिए भेजी। जरासन्ध आदि शिशुपाल के मित्र राजा भी अपने वीरों के साथ वहाँ मौजूद थे। रुक्मिणी अपने मन में श्रीकृष्ण का ही ध्यान करती जाती थी। रुक्मिणी के आगे-आगे शंख, घंटा, घड़ियाल तुरही आदि बाजे बजते जाते थे। सूत, मागध वंदीजन भीष्मक की प्रशंसा करते जा रहे थे।

मंदिर में पहुँचकर राजकुमारी ने हाथ-पाँव धोये, आचमन किया, शान्त भाव से मदिर के भीतर गईं। बूढ़ी ब्राह्मणियों ने विधिपूर्वक देवी की पूजा कराई। रुक्मिणी ने भक्ति भाव से देवी को प्रणाम करके शिवसहित भवानी से अपने मन में यों प्रार्थना की—हे अंबिका देवी, आपके सन्तान श्रीगणेश सहित आपको मैं प्रणाम करती हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति हों, यही मेरी कामना है, इसे आप पूरी करिए। फिर रुक्मिणी ने जल, चंदन, अक्षत, फूल, फल, माला, धूप, दीप, कपूर, नैवेद्य, वस्त्र, आभूषण, प्रदक्षिणा आदि से देवी की पूजा की। ब्राह्मणियों ने देवी को चढाया हुआ नारियल और फल रुक्मिणी को प्रसाद देकर सफल आशीर्वाद दिये। इसके बाद दासी का हाथ पकड़े हुए रुक्मिणी मंदिर के बाहर निकलीं। रुक्मिणी का रूप अलौकिक था। उन्हें देखकर बड़े-बड़े जितेंद्रिय ऋषि-मुनि भी मोहित हो सकते थे। रुक्मिणी ने देखा, सब वीर सिपाही रथ, घोड़े, हाथी आदि पर सवार होकर उन्हें घेरे साथ-साथ चल रहे हैं। जब तक वे गाफिल नहीं होते, तब तक श्रीकृष्ण को हरने का मौका नहीं मिल सकता। तब उन्होंने एक चाल चली। मुख पर का वस्त्र हटाकर अपने मुख की शोभा एक बार सबको दिखला दी।

रुक्मिणी का रूप देखते ही सब मोहित से हो गये। श्रीकृष्ण के आने की राह देखती हुई रुक्मिणी मंद चाल से चल रही थीं। उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र के रथ की ध्वजा उनको देख पड़ी। वह आनन्द की अधिकता से विह्वल हो उठीं। राजकुमारी अपने रथ पर चढ़ना ही चाहती थीं कि ठीक इसी अवसर में श्रीकृष्ण रथ बढ़ाकर उनके बराबर आ गये। सब वीर योद्धा देखते ही रहे और श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़कर रुक्मिणी को अपने रथ पर बिठा लिया। जब कृष्णचन्द्र का रथ रुक्मिणी को लेकर चल दिया, तब सबकी मोह की नींद टूटी। सब शत्रुपक्ष के, यानी शिशुपाल के साथी राजा चिल्लाने लगे—अरे, पकड़ो, जाने न दो! यह छलिया कृष्ण हम सबको धोखा देकर राजकुमारी को लिये जा रहा है।

सब राजा और उनकी सेना के सिपाही यों चिल्लाते ही रहे और कृष्णचन्द्र राजकन्या के साथ ही उनके यश को भी हर ले गये।

पीछे से सब राजा अपनी-अपनी सेना लेकर कृष्ण को रोकने के लिए दौड़ पड़े। उन्हें आते देखकर यादव-सेना के साथ बलभद्रजी उन के मुकाबले में आ डटे। बलभद्रजी को पहले ही से इस बात का खटका था और इसीलिए वह काफी सेना ले आये थे। दोनों दल भिड़ गये और करारी मार-काट होने लगी। दोनों ओर के वीर जान हथेली पर लेकर लड़ रहे थे। शिशुपाल की सेना गिनती में अधिक थी। यादवों की सेना को उसने घेर लिया। यादवसेना को घिरते और गिरते देखकर रुक्मिणी ने भयविह्वल दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को डरा हुआ जानकर अभयदान करते हुए कहा—राजकुमारी, डरो नहीं; मेरी सेना कम होने पर भी दम भर में इन शत्रुओं को भेड़ बकरी की तरह काट डालेगी। हुआ भी ऐसा ही। जब थोड़ी ही सेना बच रही, तब जरासंध आदि राजा युद्ध से विमुख होकर भाग खड़े हुए। शिशुपाल जनवासे में था। रुक्मिणी के हरे जाने के अपमान से उसका चेहरा उतर गया था, मुँह सूख रहा था। शोक के कारण उसका तेज फीका पड़ गया था। उसके पास आकर जरासन्ध आदि मित्रों ने कहा—हे पुरुषसिंह चेदिराज, तुम इतने उदास क्यों होते हो? देखो, सुख या दुख सदा नहीं रहता। कभी अपने मन को प्रिय बात होती है और कभी अप्रिय घटना भी हो जाया करती है। धीर वीर पुरुष सुख या दुख में विचलित नहीं होते—एक से बने रहते हैं। हम सब ईश्वर के अधीन हैं। उसी की इच्छा से हमारी हार या जीत होती है। जरासन्ध ने कहा—देखो, मैं लाखों सेना साथ लेकर सत्रह दफे कृष्ण से लड़ने गया। बराबर मैं हारता ही रहा। पर अठारहवीं दफे मैंने उसे भगा दिया और विजय प्राप्त की। मैं न कभी अपनी हार पर पछताया और न

जीत पर खुशी मनाई। यह समय हमारे शत्रुओं के माफिक है, इसीलिए वे जीत गये। हमसे गिनती में वे कम थे, फिर भी हम उन्हें हरा नहीं सके। इसे हम अपना दुर्भाग्य ही कह सकते हैं। खैर, कोई चिन्ता नहीं, जब समय हमारे अनुकूल होगा तो हम शत्रुओं को हरा देंगे। आओ, हम अपने अपने घरों को लौट चलें और अनुकूल समय की वाट देखें।

मित्रों के यों समझाने से शिशुपाल का शोक कुछ कम हुआ और वह अपने पिता के साथ अपने राज्य को लौट गया। इधर रुक्मी को जब यह खबर मिली कि कृष्णचन्द्र उसकी वहन को ज़बरदस्ती राह से उठा ले गये, तब वह अपने इस भारी अपमान को नहीं सह सका। उसने उसी दम कवच पहना, अस्त्र-शस्त्र लिये और अपनी सेना लेकर कृष्ण से लड़ने को चल दिया। चलते समय उसने यह प्रतिज्ञा की कि कृष्ण को हराकर अपनी वहन को अगर छुड़ा सका, तो अपने घर को लौटूँगा और नहीं तो यहाँ मुँह नहीं दिखाऊँगा। उसने अपने सारथी से कहा—देख, इधर वह ग्वाला कृष्ण मेरी वहन को चुराकर भागा है। इसी तरफ तेजी से मेरा रथ हाँक। मैं अभी अपने पैने वाणों से उसका काम तमाम किये देता हूँ।

कृष्ण की महिमा को न जाननेवाला दुष्ट रुक्मी इसी तरह पागलों का-सा प्रलाप करता हुआ कृष्ण के पीछे गया। जैसे पतंग जलने के लिए दीपक की लौ पर झपटता है और अपने विनाश को नहीं देख पाता। जल्दी ही उसका रथ कृष्ण के पास पहुँच गया। रुक्मी ने दूर ही से चिल्लाकर कहा—अरे अधम कृष्ण, तू सचचुच राजा यदु के कुल का कलंक है। कौआ जैसे यज्ञ की सामग्री लेकर भागे, उसी तरह तू भी मेरी वहन को चुराकर भागा जा रहा है। तू मायावी है; आज मैं तेरी सारी चालाकी धूल में मिला दूँगा। मैं तुझे ऐसा पाठ पढ़ाऊँगा, जिसमें फिर ऐसी धाँधली करने का तुझे साहस ही न होगा। अगर अपनी जान की खैर चाहता है तो रुक्मिणी को छोड़कर भाग जा, मैं तेरा पीछा नहीं करूँगा। नहीं तो मेरे वाणों से मरकर इसी धरती पर शयन करेगा।

रुक्मी के ये कड़वे वचन सुनकर कृष्णचन्द्र हँस दिये। इन वातों का जवाब उन्होंने अपने वाणों से दिया। उन्होंने आनन-फानन में रुक्मी के सारथी और घोड़ों को मार डाला; रथ को भी अपने तीरों से काट गिराया। उसके धनुप के भी दो टुकड़े कर डाले। तब रुक्मी तलवार लेकर उनकी तरफ दौड़ा। श्रीकृष्ण ने फुर्ती से तीर मारकर ढाल-तलवार भी काट डाली। इसके बाद वाज पक्षी जैसे किसी छोटी चिड़िया को दबोच लेता है, उसी तरह श्रीकृष्ण ने झपटकर रुक्मी को पकड़कर उसकी मुश्कें बाँध लीं और फिर तलवार लेकर उसे मार डालने के लिए

तैयार हुए। लाख दुष्ट हो, था तो भाई ही। रुक्मिणी से भाई की हत्या न देखी गई। वे दौड़कर कृष्ण के पैरों पर गिर पड़ीं और यों दीन वचन कहने लगीं—हे नाथ, मेरे भाई की हत्या न कीजिए।

उस समय भय के कारण रुक्मिणी के शरीर में कँपकँपी-सी चढ़ आई थी। उनका मुख सूख रहा था। आँसुओं से गला रुँध गया था और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। भगवान् को अपनी प्यारी पत्नी की दशा देखकर दया आ गई। उन्होंने तलवार नीची कर ली। लेकिन रुक्मी को यों ही नहीं छोड़ दिया। उसकी दाढ़ी मूछ आधी आधी और आधे सिर के बाल तलवार से मूड़ डाले। उधर बलभद्र की देखरेख में यादव-सेना ने रुक्मी की सारी सेना का संहार कर डाला। जो भागा नहीं, उसे तलवार के घाट उतार दिया। वीर यादव शत्रुओं को मारकर सिंह की तरह गरजने और शंख बजाकर आनन्द प्रकट करने लगे।
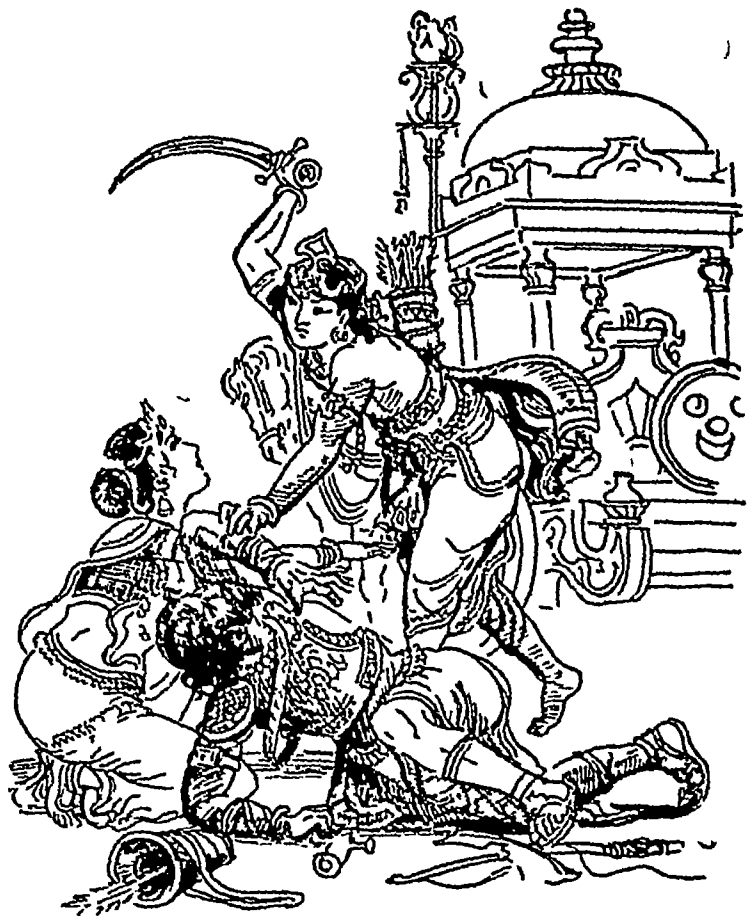
शत्रु सेना का विनाश करके बलदेवजी जब कृष्ण के पास आये तो उन्होंने रुक्मी की दुर्दशा देखी। तब उन्हें ताव आ गया। उन्होंने भाई से कहा—कृष्ण, अपने साले की यह दशा करके तुमने बहुत बुरा किया। दाढ़ी मूछ और आधे बाल मूड़कर किसी को कुरूप कर देना मौत के ही समान दंड है। इसके बाद उन्होंने रुक्मिणी से कहा—हे राजकुमारी, तुम इसके लिए कृष्ण को क्षमा कर दो। इन्हों ने क्रोध में यह काम कर डाला है। मैं पास होता तो ऐसा न होने पाता। इसके बाद बलदेव ने रुक्मी के बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया।
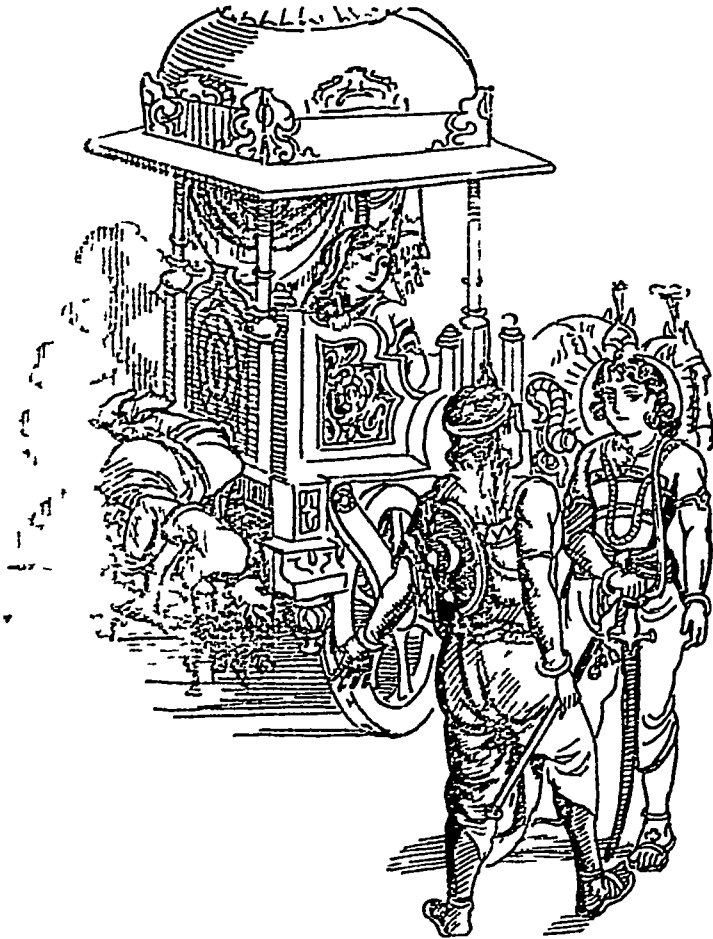
रुक्मी का बल और तेज मिट गया। वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सका, इसलिए कुंडिनपुर को नहीं गया। राह में ही भोजकट नाम का एक बड़ा सा नगर उसने बसाया और वहीं अपनी स्त्री और बालबच्चों के साथ रहने लगा। भगवान् कृष्ण भी रुक्मिणी को लेकर बलदाऊ और यादवों के साथ द्वारकापुरी को लौट आये। वहाँ धूमधाम के साथ रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण का ब्याह हुआ। खूब उत्सव हुआ। प्रजा ने अपनी हवेलियों को खूब सजाया। कृष्ण और रुक्मिणी को तरह-तरह की भेंटें दीं। इस रुक्मिणी हरण के वृत्तान्त को लोग बहुत दिनों तक कहते-सुनते रहे। बस, आज यहीं विश्राम होता है। कल फिर आगे की कथा सुनना।

कामदेव, जिसे पहले शंकर ने तपस्या में विघ्न डालने के अपराध पर क्रोध करके अपने तीसरे नेत्र की आग से जला डाला था, रुक्मिणी के गर्भ से फिर पैदा हुआ। उसका नाम प्रद्युम्न पड़ा। प्रद्युम्न किसी बात में अपने पिता कृष्ण से कम नहीं थे। प्रद्युम्न जब पैदा हुए तो शम्बर नाम का एक दानव, जो अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जो रूप रख लेता था, सौर में ही प्रद्युम्न को उठा ले गया। इसका कारण यही था कि शम्बरासुर से कामदेव की शत्रुता थी और उसे मालूम हो गया था कि यह कामदेव का ही अवतार है। उसने प्रद्युम्न को ले जाकर सागर में फेंक दिया। सागर के भीतर एक बड़ी भारी मछली उनको निगल गई। मछुओं ने जाल डालकर और मछलियों के साथ उस मछली को पकड़ लिया। वे मछुए शंबरासुर के ही राज्य में रहते थे। इसलिए उस बड़ी मछली को राजा के लायक समझकर शम्बरासुर के घर पर दे

गये। शम्बरासुर के यहाँ रसोई बनानेवाले नौकर ने उस मछली का पेट चीरा तो उसमें से एक सुन्दर बालक निकल पड़ा। उस रसोइये को बड़ा अचरज हुआ। वह उस बालक को शम्बरासुर के पास ले जा रहा था, इतने में मायावती ने उसे देख लिया और उस बालक को उससे ले लिया। कहा—मैं इसे पालूँगी। मायावती पहले जन्म की कामदेव की स्त्री थी। शम्बरासुर उसे हर लाया था। मायावती को असुर ने कोई हानि नहीं पहुँचाई थी, केवल अपने यहाँ दासी की तरह रख छोड़ा था। मायावती से देवतों ने कह दिया था कि तुम शम्बरासुर के यहाँ रहो; वहीं तुम अपने पति को फिर पा जाओगी। इस समय मछली के पेट से मनुष्य-बालक का निकलना देखकर मायावती आश्चर्य कर ही रही थी कि इतने में घूमते घामते हरिगुण गाते और वीणा बजाते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे। मायावती ने उनका पूजन-सत्कार करके उस बालक के बारे में पूछा। नारद ने उसको सब हाल बतला दिया कि यही तुम्हारे पति कामदेव हैं। असुर ने तो अपनी जान में इनको मार ही डाला था, पर ईश्वर की कृपा से यह बच गये। तुम इनको छिपाकर रक्खो और इनका पालनपोषण करो।

इतना कहकर नारदजी चले गये और मायावती असुर से छिपाकर प्रद्युम्न को पालने-पोसने लगी। प्रद्युम्न जी जब जवान हो चले, तब मायावती, जिसका दूसरा नाम रति भी था, उनके प्रति पत्नी का सा भाव दिखाने लगी। एक दिन प्रद्युम्न ने कहा—तुम मेरी मा हो, यही मैं जानता हूँ। मगर इधर कुछ दिनों से तुम्हारा भाव कुछ दूसरा ही जान पड़ता है। इसका क्या कारण है?

रति ने कहा—स्वामी, मैं आपकी पूर्व जन्म की पत्नी रति हूँ। किसी तरह आपको पाने के लिए इस दुष्ट असुर के यहाँ रहकर समय बिता रही थी। इस जन्म में आपने श्रीकृष्ण भगवान् के घर जन्म लिया है। यह आपका वैरी असुर आपको बहुत छोटी अवस्था में ही हर लाया था। इसने तो आपको मार ही डाला था; पर आप भगवान् की कृपा से बच गये। अब आप इस अपने वैरी को मारकर अपने माता-पिता के पास चलिए। आपके वियोग में आपकी माता विलख रही होंगी।

इतना कहकर मायावती ने शम्बरासुर को मारने के लिए सब मायाओं को नष्ट करनेवाली महामाया नाम की विद्या प्रद्युम्न को बतलाई। प्रद्युम्न यों ही बड़े बली और तेजस्वी थे; अब वह विद्या पाकर उनकी शक्ति और तेज बहुत बढ़ गया। मायावती ने उनको वह दिखा दिया, जहाँ शम्बरासुर लेटा हुआ था। प्रद्युम्न ने दरवाजे पर जाकर शम्बरासुर को लड़ने

शवरासुर-वध

के लिए ललकारते हुए बहुत से कड़वे वचन कहे। जैसे साँप को कोई लात से मारे, और वह उसे बरदाश्त न करके हमला करने के लिए फुफकारकर फन उठाकर उठ खड़ा हो, वैसे ही शम्बरासुर भी ललकारने पर तुरन्त गदा हाथ में लेकर बाहर निकल आया। शम्बर ने ज़ोर से गरजकर वह गदा प्रद्युम्न के ऊपर चलाई। प्रद्युम्न भी फुर्ती से उस गदा के वार को बचा गये। बड़ी देर तक लड़कर भी जब शम्बर प्रद्युम्न को हरा न सका और थक चला, तब उसने माया करना शुरू किया। वह प्रद्युम्न के सामने से गायब हो गया। आकाश में छिपकर वह प्रद्युम्न के ऊपर बड़े-बड़े पत्थर बरसाने लगा। तब प्रद्युम्न ने उसे मारने के लिए उसी महामाया का सहारा लिया, जिसे रति ने उनको अभी सिखाया था। उस माया के आगे राक्षस की कोई माया नहीं चली। उसे प्रद्युम्न के सामने आकर लड़ना पड़ा। प्रद्युम्न ने उसे थकाकर तलवार से उसका भयानक सिर धड़ से अलग कर दिया। शम्बरासुर के मारे जाने पर देवतों को बड़ी खुशी हुई।

मायावती आकाश में उड़ सकती थी। उसने प्रद्युम्न को अपनी पीठ पर बिठा लिया और द्वारका को ले चली। प्रद्युम्न को लेकर वह आकाश की राह से द्वारकापुरी में पहुँच गई। महल में बैठी हुई रुक्मिणी और उनकी सखियों और दासियों को दूर से प्रद्युम्न को आते देखकर यह भ्रम हो गया कि गरुड़ पर बैठे हुए भगवान् कृष्ण ही आ रहे हैं। इसका कारण यही था कि प्रद्युम्न का रूप-रंग बिलकुल अपने पिता कृष्ण से मिलता था। वैसा ही पीताम्बर भी वह पहने-ओढ़े थे। लेकिन अवस्था में फर्क था। इसी से पास आने पर सबको मालूम हो गया कि बहुत कुछ समता होने पर भी यह कृष्ण नहीं हैं।

प्रद्युम्न को देखते ही रुक्मिणी के मन में पुत्र का स्नेह उमड़ पड़ा। उन्हें अपना खोया हुआ पुत्र याद आ गया। वह अपने मन में कहने लगीं—यह लड़का कौन है? किसका बेटा है? मेरे स्वामी से इसका रूप-रंग और आकार इतना मिलता-जुलता क्यों है? इसके साथ यह औरत कौन है? मेरा जो लड़का सौर में ही गायब हो गया था, वह अगर जीता होता तो इतना ही बड़ा होता। कहीं यह वही बालक तो नहीं है? मेरी बाईं आँख और बाईं भुजा इसे देखते ही क्यों फड़कने लगी? यह तो बड़ा अच्छा सगुन है। रुक्मिणीजी इस तरह अपने मन में सोच ही रही थीं कि इतने में प्रद्युम्न के लेकर मायावती उनके पास पहुँच गई। इसी मौके पर भगवान् कृष्णचन्द्र भी अपने पिता वसुदेव के साथ अपने महल में पधारे। भगवान् कृष्ण को सब हाल मालूम था, फिर भी वह अपने मुख से कुछ कहना नहीं चाहते थे। इसी समय उनकी इच्छा से नारदजी ने आकर दर्शन दिये।

कृष्णचन्द्र और रुक्मिणी ने बड़े आदर से उनको आसन पर बिठलाया और पूजा की। इसके बाद नारद ने आप ही प्रद्युम्न का पूरा परिचय देकर सब हाल कह सुनाया। मायावती प्रद्युम्न की स्त्री है और वह कामदेव का अवतार हैं। वह अभी शम्बरासुर को मारकर आये हैं। यह तुम्हारे ही खोये हुए पुत्र हैं। यह नारद के मुख से सुनकर रुक्मिणी को बेहद खुशी हुई। उन्होंने प्रद्युम्न को गले से लगा लिया और गोद में बिठाकर उनका माथा सूँघा। फिर बारी बारी से बलभद्र, देवकी, वसुदेव आदि ने प्रद्युम्न को गले से लगाकर अपने हृदय का आनन्द प्रकट किया। प्रद्युम्न मायावती के साथ बड़े आनन्द से द्वारका में रहने लगे।

बेटा, कृष्ण की दूसरी रानी सत्यभामा थीं। अब उनके व्याह का हाल कहता हूँ, सुनो। सत्यभामा के बाप का नाम सत्राजित् था और वह भी यदुकुल के एक खानदान के थे। सत्राजित् सूर्यदेव के बड़े भक्त और उपासक थे। सूर्यनारायण ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनको अपना मित्र बना लिया। एक समय सत्राजित् सूर्य से मिलने के लिए उनके पास पहुँचे। लौटते समय सूर्य ने एक दिव्य और अनमोल मणि उनके गले में पहना दी। उस मणि का प्रकाश सूर्य के ही समान था। सत्राजित् उस मणि को गले में पहने सूर्यलोक से पृथ्वी पर आये। वह आकाश से नीचे उतर रहे थे, इसी समय उनको मणि के तेज से लोगों की आँखें चौंधिया गईं। उन्होंने समझा, शायद सूर्यनारायण श्रीकृष्णजी से मिलने आ रहे हैं। वे सुधर्मा सभा में कृष्ण के पास दौड़े गये। भगवान् उस समय चौसर खेल रहे थे। लोगों ने भगवान् से कहा—स्वामी, देखिए, सूर्यनारायण आपके दर्शन करने आ रहे हैं। कृष्णचन्द्र उनकी बात सुनकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—तुम लोगों को भ्रम हो गया है। वह सूर्य नहीं, सत्राजित् यादव हैं, सूर्य के पास से आ रहे हैं। यह दिव्य मणि इनको कृपा करके सूर्यनारायण ने दे दी है। इसी मणि का तेज देखकर तुमको सूर्य का धोखा हो गया है।

सत्राजित् ने वह मणि लाकर अपने घर में देवस्थान में रख दी। उस मणि में यह गुण था कि वह नित्य बहुत सा सोना देती थी। इसके सिवा यह गुण और था कि जहाँ वह रहती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु, महामारी साँप का भय आदि नहीं होता था। श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को बुलाकर उनसे कहा—देखिए, यह मणि आप महाराज उग्रसेन को दे दीजिए। यह उन्हीं के योग्य है। आपको धन की कोई कमी नहीं है। फिर मणि तो द्वारका में ही रहेगा। आप जरूरत पड़ने पर इसे पहनने के लिए ले भी सकते हैं। सत्राजित् धन के बड़े लोभी थे। उन्होंने ... का कहना नहीं माना। श्रीकृष्णजी भी चुप हो रहे।

कुछ दिन बाद ऐसा हुआ कि सत्राजित् का भाई प्रसेनाजित् शिकार खेलने के लिए जंगल को अकेला ही गया। जाते समय वह उस मणि को भी गले में डाले गया। दैवसंयोग से शिकारी ही शिकार हो गया और फिर घर को नहीं लौटा। सत्राजित् को यह शक हो गया कि श्रीकृष्ण ने ही उनके भाई को मारकर वह मणि ले ली है। उन्होंने यह बात दो-चार आदमियों से कह भी दी। कोई भी बात हो, जहाँ दो से तीसरे के कान में गई, फिर छिपी नहीं रहती। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। कृष्ण ने भी सुन पाया कि उनके बारे में सत्राजित् का यह खयाल है। मानी आदमी झूठे कलंक को नहीं सह सकते। उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित यादवों को साथ लिया और प्रसेन को खोजने के लिए वन में गये। घोड़े की टापों के निशान देखते हुए बहुत दूर जाने पर उनको प्रसेन और उसका घोडा मरा हुआ पड़ा मिला। सिंह उसे मारकर खा गया था। प्रसेन के गले में मणि न देखकर श्रीकृष्ण ने सोचा, सिंह उस मणि को ले गया होगा। सिंह का पता लगाते-लगाते ये लोग पहाड की एक खोह के पास पहुँचे। वहाँ सिंह मरा पड़ा था। देखने से जान पड़ा, किसी रीछ ने सिंह को मार डाला है। अब भगवान् ने विचारा, हज़ार हाथ उस रीछ का घर इसी कंदरा में होगा। श्रीकृष्ण ने अपने साथी यादवों से कहा—तुम लोग यहीं ठहरो, मैं इस बिल के भीतर जाता हूँ। एक तो इसमें अंधकार बहुत है, दूसरे रास्ता भी तंग है। इसलिए तुम लोगों का जाना ठीक नहीं। उस अँधेरी कंदरा में बहुत दूर तक जाने पर ऐसा स्थान मिला, जिसमें खूब उजाला फैला था और भीतर सुंदर भवन बना हुआ था। वह उजाला उसी सत्राजित् की मणि का था, जिसे एक १३-१४ वर्ष की लड़की पहने खड़ी थी। भगवान् मणि का पता पाकर बहुत प्रसन्न हुए और आगे बढ़कर उस लड़की के पास पहुँच गये। उस लड़की की धाय भी वहीं खड़ी थी। वह एक अजनबी आदमी को घर के भीतर देखकर डर के मारे जोर से चिल्ला उठी। उस आवाज़ को सुनकर रीछों के राजा जाम्बवान् वहाँ आ गये। उन्हीं का वह घर था और लड़की भी उन्हीं की थी। उन्होंने ही सिंह को मारकर उससे वह मणि छीन ली थी। जाम्बवान् बड़े बलवान् थे। अब बूढ़े हो गये थे, फिर भी उनमें बेशुमार बल था। रामचन्द्र के अवतार में, त्रेता युग में वह रामचन्द्र की तरफ से रावण से लड़े थे। सत्ययुग में, जब वामन अवतार हुआ था, वह जवान थे और उस समय उन्होंने कई बार पृथ्वी मण्डल की परिक्रमा करके वामनजी की महिमा सबको सुनाई थी।

इस समय कृष्ण भगवान् को साधारण मनुष्य समझकर उनसे भिड़ गये। १२-१३ दिन तक दोनों में घूसेबाज़ी और कुश्ती होती रही। अन्त को जाम्बवान् थक गये। तब उन्हें यह

ज्ञान हुआ कि ईश्वर के सिवा और किसी में इतना बल नहीं हो सकता कि वह १२-१३ दिन तक उनसे लड़ सके। भगवान् को पहचानते ही वह उनके पैरों पर गिर पड़े और अपना अपराध क्षमा कराने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा—तुमने कोई अपराध नहीं किया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि मुझे पहचानने में गल्ती कर जाते हैं। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। इतना कहकर भगवान् ने मणि का सब क़िस्सा और अपने कलंक की बात कह सुनाई। फिर बोले—मैं इसी मणि के लिए तुम्हारे यहाँ तक आया हूँ। जाम्बवान् ने कहा—अगर आप इस दास पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मणि के साथ ही मेरी कन्या जाम्बवती को भी ग्रहण कीजिए। भगवान् ने जाम्बवती को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया और वह मणि लेकर कंदरा के बाहर आये।

इधर १२ दिन बीत जाने पर भी जब श्रीकृष्णचन्द्र बाहर न निकले तो सब साथी यादव बड़े दुखी हुए। उन्होंने निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण की मृत्यु होगई। तब वे तेरहवें दिन सत्राजित् को बुरा-भला कहते हुए द्वारकापुरी को लौट गये। भगवान् ने बिल के भीतर जाते समय उनसे कह दिया था कि अगर बारह दिन तक मैं बाहर न आऊँ तो समझ लेना, मेरी मृत्यु हो गई, फिर तुम लौट जाना। यही कारण था, जो साथी यादवों ने उनको मरा हुआ समझ लिया था।

जाम्बवती और मणि को साथ लेकर श्रीकृष्ण जब द्वारका में पहुँचे तो सबके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। सब ईश्वर को धन्यवाद देने लगे। भगवान् ने उसी दिन सत्राजित् को सभा में बुलाकर वह मणि सौंप दी और कहा—ये सब पुरवासी मेरे साथ गये थे, इनसे आप सब हाल पूछ लीजिए। आपके भाई को मैंने नहीं मरवाया और न मणि ही मैंने ली थी। आशा है, अब मेरी ओर से आपका मन साफ़ होगया होगा। सत्राजित् ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया और चुपचाप मणि को लेकर अपने घर चले गये। रात को सत्राजित् अपनी गल्ती पर बहुत पछताते रहे। उन्हें नींद नहीं आई। उन्होंने अपने से अधिक शक्ति और प्रभाव रखने-वाले कृष्णचन्द्र को मिथ्या कलंक लगाकर बड़ा अपराध किया था। उन्हें यह डर हुआ कि इसका फल अच्छा न होगा। सवेरे उठते ही वह मणि लेकर कृष्ण के पास गये। बोले—मैंने अब यह निश्चय कर लिया है कि यह मणि मैं आपही को अर्पण कर दूँ। यह मणि मुझे फली नहीं; क्योंकि इसी के कारण मेरा जवान भाई जान खो बैठा और मैं भी बिना सोचे-समझे आप पर सन्देह कर बैठा। मेरे इस अपराध का प्रायश्चित्त तभी होगा, जब आप मेरी कन्या सत्यभामा को पत्नी के रूप में अंगीकार करने की कृपा करेंगे। भगवान् ने कहा—मुझे आपकी

रूपवती कन्या से व्याह करना मंजूर है। रह गई मणि, सो उसे आप अपने ही पास रक्खें। यह मेरी हो चुकी। यह जो नित्य सोना देती है, वह आप मुझे दे दिया करें।

इसके बाद बड़ी धूम से श्रीकृष्ण के साथ सत्यभामा का व्याह द्वारका में हुआ। दूर-दूर देशों के राजा इस व्याह में शरीक होने के लिए द्वारका में आये। वसुदेव और सत्राजित् ने सबका उचित सत्कार किया। रुक्मिणी के बाद सत्यभामा ही सब रानियों में कृष्ण को अधिक प्यारी थीं। भगवान् कृष्ण सत्यभामा से व्याह करके बहुत सुखी हुए।

कुछ दिन के बाद श्रीकृष्ण ने सुना कि दुर्योधन ने धोखा देकर कुन्ती माता के साथ पाँचो पाण्डवों को लाख के बने घर में आग लगाकर जला डाला। कृष्ण भगवान् को यह मालूम था कि पाण्डव और कुन्ती जले नहीं हैं, वे कुशल के साथ उस घर से सुरंग की राह बचकर निकल गये हैं। फिर भी जैसे कुछ न जानते हों, इस तरह उनकी ख़बर लेने के लिए बलभद्र के साथ हस्तिनापुर को गये। वहाँ जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और गान्धारी से मिले और कुन्ती तथा पाण्डवों की अकालमृत्यु के लिए शोक प्रकट किया।

इसी बीच में अक्रूर और कृतवर्मा नाम के यादवों ने द्वारकापुरी में एक अनर्थ कर डाला। बात यह थी कि सत्राजित् की कन्या सत्यभामा से ये लोग व्याह करना चाहते थे। शतधन्वा नाम का यादव भी सत्यभामा को प्राप्त करना चाहता था। सत्राजित् ने तीनो से नाहीं नहीं की थी। इन तीनो में से हर एक यही जानता था कि परम सुन्दरी सत्यभामा मेरी ही पत्नी होगी। पर असल में सत्राजित् इन तीनो में से किसी को अपनी कन्या देना नहीं चाहते थे और इसीलिए उन्होंने उनसे, टालने के लिए, हामी भर ली थी। अन्त को श्रीकृष्ण से सत्यभामा का व्याह हो गया। तब अक्रूर, कृतवर्मा और शतधन्वा, तीनो निराश होकर सत्राजित् के शत्रु बन गये। लेकिन कृष्णचन्द्र के वहाँ रहने से वे सत्राजित् का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। जब भगवान् कृष्ण और बलदेव हस्तिनापुर चले गये, तब अच्छा मौका समझकर अक्रूर और कृतवर्मा ने मूर्ख शतधन्वा को भड़काया। कहा—देखो भाई, सत्राजित् ने हम तीनो को धोखा देकर सत्यभामा का व्याह कृष्ण से कर दिया। अब बदला लेने का मौका है। तुम सत्यभामा के पिता को मारकर उस मणि को ले आओ। शतधन्वा उनके कहने में आ गया। उसने एक दिन सत्राजित् के घर जाकर सोते में ही उनको मार डाला और उस मणि को ले आया। सत्राजित् के घर की औरतें रोती-चिल्लाती ही रहीं, शतधन्वा ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। सत्यभामा को पिता की मृत्यु से बड़ा दुःख हुआ। वह उसी समय

रथ पर बैठकर हस्तिनापुर को गई और वहाँ जाकर सब हाल कृष्ण से कहा। श्रीकृष्ण ने बहुत शोक किया और बलभद्र व सत्यभामा के साथ द्वारका को लौट आये।

कृष्ण के आने की खबर पाते ही डर के मारे शतधन्वा का बुरा हाल हो गया। वह अक्रूर और कृतवर्मा के पास सहायता के लिए दौड़ा गया। उसने कहा—तुम्हारे कहने से ही मैंने यह काम किया था; अब तुम कृष्ण से मुझे बचाओ। अक्रूर और कृतवर्मा ने कहा—कृष्ण का सामना कौन कर सकता है? अब तुम एक काम करो। वह मणि हमारे पास रख दो और कुछ दिन के लिए द्वारका से भाग जाओ। फिर हम कृष्ण को समझा-बुझाकर शान्त कर लेंगे।

शतधन्वा ने अपने बचने की और कोई सूरत न देखकर ऐसा ही किया। उसके पास एक घोड़ा था, जो एक दिन में ४०० कोस तक भाग सकता था। उसी पर बैठकर शतधन्वा भागा। कृष्ण और बलदेव को जब उसके भागने का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने भी अपने रथों पर बैठकर उसका पीछा किया। मिथिलापुरी (तिरहुत) में जाकर शतधन्वा का घोड़ा थककर गिर पड़ा और मर गया। शतधन्वा पैदल ही जान बचाने के लिए भागा। भगवान् कृष्ण भी रथ छोड़कर उसके पीछे हो लिये। थोड़ी ही दूर पर उन्होंने शतधन्वा को पकड़ लिया और चक्र से उसका सिर काट डाला। लेकिन उसके पास वह मणि नहीं मिली। तब भगवान् ने अपने भाई बलभद्र के पास आकर कहा—मैंने व्यर्थ ही शतधन्वा की हत्या कर डाली। मणि तो उसके पास नहीं है। बलभद्र ने कहा—उसने वह मणि और किसी के पास रख दी होगी। तुम द्वारका जाकर मणि का पता लगाओ। मैं अपने भक्त और मित्र मिथिला के राजा से मिलकर द्वारका आऊँगा।

इतना कहकर बलभद्र जी मिथिलानरेश जनक के पास गये और श्रीकृष्ण भी द्वारकापुरी को लौट गये। जनक ने बलभद्रजी की बड़ी आव भगत की। कई वर्ष तक बलभद्र जी मिथिला में रहे। इधर धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन भी उन्हीं दिनों मिथिला में गया। उसने वहाँ रहकर बलदेव जी से गदा से लड़ना सीखा। गदायुद्ध में बलदेवजी के समान योद्धा उस समय दूसरा नहीं था।

कृष्ण ने द्वारका में आकर सत्यभामा और अन्य यादवों से सब हाल कहकर बतलाया कि मणि उसके पास नहीं मिली। अक्रूर और कृतवर्मा ने जब शतधन्वा के मारे जाने का हाल सुना तो डर के मारे वे भी द्वारका से भाग गये। उन्होंने सोचा, हम भी अपराधी हैं। कहीं कृष्ण को खबर लग गई कि हमने ही शतधन्वा को उकसाकर सत्राजित् की हत्या कराई है तो फिर हमारी भी कुशल नहीं।

इधर अक्रूर के चले जाने पर द्वारका में महामारी होने लगी, द्वारकावासी लोग कष्ट में रहने लगे। बड़े बूढे लोगों ने कहा—यह अक्रूर के यहाँ न रहने का फल है। अक्रूर के पिता श्वफल्क का भी यह प्रभाव था कि वह जहाँ रहते थे, वहाँ अकाल और महामारी आदि उत्पात नहीं होते थे और वही बात अक्रूर में भी है। एक समय काशी में घोर अकाल पड़ गया था; क्योंकि पानी नहीं बरसता था। तब लोगों के कहने से काशी के राजा ने श्वफल्क को अपने यहाँ बुलाया और अपनी कन्या गांदिनी उनको ब्याह दी। उस समय काशी में खूब वर्षा हुई। श्रीकृष्ण ने सोचा, इन उत्पातों का कारण अक्रूर नहीं, बल्कि मणि का यहाँ न रहना है। तब श्रीकृष्ण ने अक्रूर का पता लगाकर उन्हें आदर के साथ द्वारकापुरी में बुलवाया। फिर उन्हें एकान्त में ले जाकर कहा—चाचाजी, सत्राजित् के कोई लड़का नहीं है, इसलिए उनकी लड़की का लड़का ही उनकी मणि का उत्तराधिकारी है। पर वह मणि सदाचारी धर्मात्मा के ही पास रह सकती है। इसलिए वह मणि आप ही अपने पास रक्खें। परन्तु एक बार वह मणि आप सब को दिखला दें। कारण, यादवों को, खासकर मेरे बड़े भाई को शतधन्वा के पास मणि न मिलने की बात पर कुछ अविश्वास-सा है। अगर आप कहें कि मणि मेरे पास नहीं है तो यह हम सब अच्छी तरह जानते हैं कि शतधन्वा आपको ही वह मणि दे गया है। मुझे मालूम हुआ है कि आपने इधर उसी मणि से मिलनेवाले सोने की वेदियाँ बनवाकर अनेक यज्ञ किये हैं।

भगवान् के यों समझाने पर अक्रूर का भय जाता रहा। उन्होंने अपने पास से मणि

निकालकर भगवान् के हाथ में रख दी। वह स्यमन्तक नाम की मणि के सूर्य के समान प्रकाश से वह स्थान जगमगा उठा। कृष्ण ने वह मणि सबको दिखाकर अपने ऊपर दुबारा लगे हुए कलंक को दूर किया। फिर अपने वादे के माफिक वह मणि अक्रूर को लौटा दी। अगर कोई भादों सुदी चौथ की रात को चन्द्रमा को देख लेता है तो उसका फल यह होता है कि उसे झूठा कलंक लगता है। अगर किसी को भूले से पथराचौथ को चन्द्रमा दिखाई पड़ जाय तो उसे यह मणि की कथा उसी समय पढ या सुन लेनी चाहिए। इससे उसका बुरा-असर मिट जाता है—फिर उसे कलंक नहीं लगता। आगे की कथा कल सुनना।

एक समय भगवान् कृष्ण सात्यकि आदि प्रिय यादवों को साथ लेकर पाण्डवों को देखने के लिए हस्तिनापुर को गये। पाण्डवों के मरने की खबर पहले उड़ी थी; पर वह झूठी निकली। पाण्डव द्रौपदी को ब्याहकर माता के साथ सकुशल हस्तिनापुर को लौट आये। यही खबर पाकर देखने के लिए भगवान् गये। श्रीकृष्ण को देखकर कुन्ती और पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर और भीमसेन के पाँव छुए, अर्जुन को गले से लगाया। नकुल और सहदेव छोटे थे, उन्होंने श्रीकृष्ण के पैर छुए। द्रौपदी ने भी आकर भगवान् को प्रणाम किया। बहुत देर तक श्रीकृष्ण अपनी बुआ और पाण्डवों से सुख-दुख की बातें करते रहे। श्रीकृष्ण ने सब को धीरज बँधाया।

चौमासे भर श्रीकृष्णचन्द्र वहीं रहे। एक दिन श्रीकृष्णजी अपने प्यारे मित्र अर्जुन को लेकर वन में शिकार खेलने के लिए गये। वहाँ इन दोनो वीरों ने खरगोश, हरिण आदि जीवों का शिकार किया। नौकर लोग उन शिकारों को लेकर युधिष्ठिर के पास लौट गये। इधर भगवान् और अर्जुन जब शिकार करते-करते थक गये और प्यासे हुए तो वन की शोभा देखते हुए पानी की तलाश में यमुना के किनारे पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दोनों ने हाथ-पैर धोये, मुँह धोया, पानी पीकर प्यास बुझाई।

इतने में भगवान् की नजर एक परम सुन्दरी कन्या पर पड़ी। वह वहाँ रहकर तपस्या कर रही थी। श्रीकृष्ण ने उसका हाल जानने के लिए उसके पास अर्जुन को भेजा। अर्जुन ने उस कन्या के पास जाकर आदर के साथ पूछा—हे सुन्दरी, तुम सचमुच स्त्रियों में रत्न हो। क्या तुम कृपा करके हमको बतला सकती हो कि तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? किस इरादे से इस जंगल में कुटी बनाये अकेली रहती हो? क्या हम तुम्हारी कुछ सहायता कर सकते हैं?

अर्जुन के यों पूछने पर उस कुमारी ने कहा—महाशय, मैं सूर्यनारायण की कन्या हूँ। मेरा

नाम कालिंदी है। देवतों में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु मेरे पति हों, इसी कामना से इस वन में तपस्या कर रही हूँ। आप कौन हैं ? आपके साथी वह महापुरुष कौन हैं ? यहाँ आप क्यों पधारे हैं ? मेरे इन प्रश्नों का उत्तर आप भी कृपा करके दीजिए।

अर्जुन ने कहा—मैं महाराज पाण्डु का पुत्र अर्जुन हूँ। मेरे साथ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जिन्हें लोग साक्षात् नारायण का अवतार कहते हैं। हम लोग वन में शिकार खेलने आये थे।

इतना कहकर अर्जुन कृष्ण के पास लौट आये और उस कन्या का सब हाल उनसे कहा। भगवान् तो सब वृत्तान्त पहले ही से जानते थे और कालिंदी की इच्छा पूरी करने के लिए ही शिकार के बहाने जंगल में आये थे। वह कालिंदी के पास गये और उन्हें पत्नी के रूप में ग्रहण करके उनकी अभिलाषा पूरी की। इसके बाद कालिंदी को रथ पर बिठलाकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर को लौट आये। शुभ मुहूर्त में कालिंदी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र का व्याह धूम-धाम के साथ हो गया।

इसी अवसर में पाण्डवों को आधा राज्य दुर्योधन ने बाँट दिया। इसी समय इन्द्र का खांडव वन जलाने की इच्छा से अग्नि ने अर्जुन से आकर प्रार्थना की। अग्नि की प्रार्थना पूर्ण करने के लिए बड़े भारी पराक्रम की जरूरत थी ; क्योंकि खांडव वम को जलाना इन्द्र से लड़ाई मोल लेना था। लेकिन अर्जुन को कृष्ण का भरोसा था। उन्होंने अग्नि से कहा—जाओ, अपनी इच्छा के अनुसार खांडव वन को जलाओ। अग्नि जब खांडव वन को जलाने लगे, तब इन्द्र ने आकर उनको रोका। इस पर अर्जुन और इन्द्र से युद्ध होने लगा। इस युद्ध में भी कृष्ण ने अर्जुन का रथ हाँका। अर्जुन ने इन्द्र को हरा दिया। अग्नि ने सारे वन को जला डाला। उसी वन में मयासुर भी रहता था। मयासुर असुर जाति का बड़ा भारी कारीगर था, जैसे देव जाति के विश्वकर्मा हैं। मयासुर के प्रार्थना करने पर अर्जुन ने उसे बचा लिया। मयासुर ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए अर्जुन से मित्रता कर ली और उनके लिए एक अद्भुत सभाभवन बना दिया। श्रीकृष्ण के कहने से विश्वकर्मा ने युधिष्ठिर के लिए इंद्रप्रस्थ नाम की राजधानी—एक बहुत बड़ा सुन्दर नगर भी बना दिया। उसी में मयासुर ने वह सभा बनाई, जिसमें जाने पर दुर्योधन की बड़ी हँसी हुई थी।

मनो०—उस सभा में दुर्योधन के जाने पर हँसी क्यों हुई थी ?

बनारसी—उस सभा में एक जगह बिल्लौर पत्थर का ऐसा फर्श बना था, जिसे देखकर जान पड़ता था, यह तालाब है और इसमें पानी भरा हुआ है। उसी के आगे तालाब था और

उस की तलहटी में ऐसा फर्श बना था कि जान पड़ता था, यह जमीन का ही फर्श है, इसमें पानी नहीं है। राजा युधिष्ठिर ने राज पाने पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञ के बाद गद्दी पर बैठे। इस उत्सव में दुर्योधन भी बुलाया गया था। वह जब सभाभवन के भीतर गया तो जहाँ फर्श था, वहाँ पानी के धोखे वह धोती चढाने लगा और जहाँ सचमुच पानी भरा था, वहाँ फर्श समझकर वह पानी में गिर पड़ा। इसपर बड़ा ठहाका पड़ा। द्रौपदी ने कहीं कह दिया—अंधों के अंधे ही पैदा होते हैं। यह बात दुर्योधन ने सुन ली और चुपचाप लौट गया। तभी से पाण्डवों का और द्रौपदी का वह घोर शत्रु हो गया। इसी अपमान का बदला लेने के लिए उसने भरी सभा में द्रौपदी को बुलाकर उनकी बेइज़्ज़ती की थी। सच है, दिल्लगी बहुत बुरी होती है। इसी एक छोटी-सी दिल्लगी ने महाभारत करा दिया, जिसमें लाखों आदमी कट मरे और कौरव वंश का तो नाश ही हो गया।

युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बिठाकर और आधा राज्य दिलाकर कृष्णचन्द्र यादवों के साथ द्वारकापुरी को लौट गये। अब कृष्णचन्द्र के और ब्याहों की कथा कहते हैं। अवन्ती देश के राजा विंद और अनुविंद दो भाई थे। वे दुर्योधन के दल के थे। उनकी बहन का नाम मित्रविंदा था। मित्रविंदा कृष्ण की बुआ राजाधिदेवी की कन्या थी। वह कृष्ण को ही अपना पति बनाना चाहती थी; पर उसके भाई कृष्ण के विरोधी थे। उन्होंने मित्रविंदा का स्वयंवर रचाया। उसमें सभी देशों के राजा आकर जमा हुए। कृष्णचन्द्र को जब यह खबर मिली तो वह भी वहाँ गये। वहाँ पहुँचकर सब राजों के सामने ही उन्होंने मित्रविंदा को अपने रथ पर बिठा लिया और द्वारका को चल दिये। इस पर सब राजा बहुत बिगड़े और वे मिलकर कृष्णचन्द्र के मुकाबले में आ डटे। कृष्णचन्द्र ने धनुष चढ़ाकर अकेले ही उन सब को मार भगाया। मित्रविंदा को द्वारका में ले आकर भगवान् ने उनके साथ ब्याह किया।

इसी तरह कोशल देश के राजा अयोध्यानरेश नग्नजित् के सत्या नाम की एक परम सुन्दरी कन्या थी। नग्नजित् राजा ने बड़े बली सात साँड़ पाल रक्खे थे। वे साँड़ बड़े नटखट थे। उनके सींग बड़े पैने थे। वे किसी आदमी को अपने पास फटकने भी नहीं देते थे। राजा ने यह प्रण कर रक्खा था कि जो बलवान् वीर इन सातो साँड़ों को पकड़कर एक ही रस्सी में एक साथ नाथ देगा, उसी के साथ मैं अपनी कन्या का ब्याह करूँगा। अनेक बलवान् जवान राजा सत्या को पाने की आशा से अयोध्या आये। लेकिन उन साँड़ों को न नाथ सके और निराश होकर लौट गये। बहुतों की तो जान ही उन साँड़ों ने ले ली।

दुर्योधन का अपमान

भगवान् कृष्णचन्द्र भी सत्या को ब्याहने की इच्छा से अयोध्यापुरी में आये। राजा नग्नजित् ज्ञानी और भगवान् के भक्त थे। वह जानते थे कि कृष्णचन्द्र नारायण का अवतार हैं। भगवान् जब राजा के घर पहुँचे तो उन्होंने उठकर भगवान् का स्वागत किया—पूजा की। इसके बाद भगवान् ने उन सॉड़ों को देखने की इच्छा प्रकट की। राजा उन्हें गोशाला में ले गये। कृष्ण ने पीताम्बर कमर में लपेट लिया और लड़के जिस तरह खेलते हैं, उस तरह बहुत ही आसानी से उन बैलों को पकड़कर एक साथ ही एक रस्सी में नाथ दिया। भगवान् के लिए भला यह कौन कठिन काम था? राजा ने प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर अपनी कन्या कृष्ण को अर्पण कर दी। साथ ही बहुत सा धन, रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, आभूषण, दास-दासी आदि दहेज में दिये। भगवान् सत्या को ब्याह कर उनके साथ द्वारकापुरी को लौट आये।

इसके बाद कृष्ण ने एक ब्याह और किया। कृष्ण की एक बुआ श्रुतकीर्त्ति थीं। उनका ब्याह मद्रास में हुआ था। श्रुतकीर्ति की कन्या का नाम भद्रा था। वह भी बहुत सुन्दरी और अच्छे गुणों की खान थी। भद्रा के भाई का नाम सन्तर्दन था। उसने जब जाना कि उसकी बहन भद्रा कृष्ण के गुणों पर रीझकर उनको ही अपना पति बनाना चाहती है, तो उसने कृष्णचन्द्र को दूत भेजकर बुलाया और बड़े प्रेम से धूमधाम के साथ कृष्ण को अपनी बहन ब्याह दी।

मद्रास की एक और राजकुमारी सुलक्षणा को भी कृष्णचन्द स्वयम्बर से बलपूर्वक हर लाये। ये आठो स्त्रियॉ श्रीकृष्ण की पटरानी हुईं। अब यह कथा कहते हैं कि कृष्णचन्द्र ने एक साथ सोलह हजार एक सौ सुन्दरी कन्याओं के साथ कैसे ब्याह किया। पृथ्वी का लड़का भौमासुर बड़ा बली था। वह इन्द्र को हराकर इन्द्र की माता अदिति के कानों के कुण्डल और इन्द्र का छत्र तथा मन्दरशिखर नाम की महामूल्य मणि छीन लाया था। वह छत्र असल में जल के राजा वरुण का था और वरुण ने इन्द्र को भेंट कर दिया था। इन्द्र ने जब देखा कि भौमासुर को वह परास्त नहीं कर सकते तो उन्होंने भगवान् कृष्ण से आकर अपना दुखड़ा रोया। कहा—हे यादवपति, दुष्ट भौमासुर ने मेरा और मेरी माता का बड़ा अपमान किया है। हमारा अपमान एक तरह से आपका ही अपमान है, क्योंकि हम सब आपके सेवक हैं। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप उस दुष्ट को मारकर मेरी माता के कुण्डल और मेरा छत्र ला दीजिए।

श्रीकृष्ण ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह उसी समय गरुड़ पर बैठकर भौमासुर के नगर को चले। सत्यभामाजी एक वीर महिला थीं। उन्होंने कृष्ण से कहा—मैं भी आपके साथ चलूँगी और आपकी सहायता करूँगी। कृष्ण ने उनको भी साथ ले लिया। भौमासुर प्राग्ज्योतिप नाम के नगर में रहता था। उस नगर को इस तरह भौमासुर ने सुरक्षित कर लिया था कि कोई शत्रु उसके भीतर जा ही नहीं सकता था। वह चारो ओर पहाड़ से घिरा था। पहाड़ के आवरण के बाद चारो ओर छोटे-छोटे क़िले बने थे, जिनमें काफी हथियार जमा थे और सेना भी रहती थी। उसके बाद मुर दैत्य के बनाये लोहे के जाल लगे थे। उसके बाद खाईं थी। उसके बाद अग्नि का घेरा था। उसके बाद तरह-तरह के यन्त्रों का आवरण था। उसके बाद बहुत मोटी चहारदीवारी भी थी।

कृष्णचन्द्र ने पहुँचते ही अपनी गदा से पहाड़ों के घेरे को तोड़ डाला। तीरों से उन क़िलों और सशस्त्र सेना का नाश कर दिया। फिर सुदर्शन चक्र के तेज से खाईं सुखा डाली और अग्नि का घेरा नष्ट कर दिया। इसके बाद अपनी तलवार से लोहे के जाल और सब यन्त्रों को छिन्नभिन्न कर डाला। अन्त को गदा से दीवार तोड़कर पुरी के भीतर भगवान् ने प्रवेश किया और फाटक पर पहुँचकर अपना पाञ्चजन्य शंख जोर से बजाया। वह शब्द सुनते ही उस पुरी में रहनेवाले दैत्यों के दिल दहल उठे। वहाँ मुर नाम का बड़ा बली दैत्य पुरी की रक्षा के लिए रहता था। मुर के पाँच सिर थे। शंखनाद सुनकर त्रिशूल हाथ में लिए मुर दैत्य कृष्ण के सामने आया। वह बड़े जोर से सिंहनाद करता हुआ त्रिशूल तानकर भगवान् की ओर झपटा। उसने ताककर वह त्रिशूल गरुड़ के मारा। कृष्ण ने फुर्ती से बाण चलाकर रास्ते में ही उस त्रिशूल को काट डाला। बहुत देर तक वह दुष्ट दानव कृष्ण का सामना करता रहा। अन्त को भगवान् ने सुदर्शन चक्र से मुर के पाँचो सिर काट डाले। वह मरकर गिर पड़ा। तब मुर दानव के सात बेटे कृष्ण से लड़ने के लिए आये। उनके नाम ये थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण। उन लड़कों को कृष्णचन्द्र ने मार डाला। भौमासुर ने जब देखा कि उसका सेनापति मुर दानव और उसके लड़के मार डाले गये तो उसने समझ लिया, कृष्ण को जीतना कोई साधारण काम नहीं है। तब वह अपने पर्वताकार हाथी के ऊपर चढ़कर श्रीकृष्ण के सामने आया। आते ही उसने कृष्ण के ऊपर करारा वार किया, पर भगवान् उसके वार को आसानी से बचा गये। दोनों वीरों में महाभयानक युद्ध छिड़ गया। वह दैत्य भरपूर वार करता था, लेकिन कृष्ण का कुछ बिगाड़ नहीं

था। गरुड़ ने भी अपनी चोंच और नखों के प्रहार से भौमासुर के हाथी को हैरान कर दिया। तब वह हाथी भौमासुर को लेकर भागा। असुर ने किसी तरह हाथी को रोककर गरुड़ के एक शक्ति (बर्छी) खींचकर मारी। गरुड़ उस शक्ति के वार को बचा गये। अन्त को उस असुर

ने एक पैनी नोकोंवाला त्रिशूल हाथ में लेकर गरजकर कृष्ण के ऊपर वार किया। तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र हाथ में लेकर उससे भौमासुर का सिर काट डाला।

भौमासुर के मरने पर इन्द्र को बड़ी ख़ुशी हुई। स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे। देवता लोग कृष्ण के ऊपर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे। तब पृथ्वी भौमासुर के छोटे बच्चे को लेकर कृष्ण की शरण में आई और उसके प्राणों की भीख माँगने लगी। भगवान् ने उसको अभयदान दिया और भौमासुर की गद्दी पर बिठला दिया। पृथ्वी ने इन्द्र की माता के कुण्डल, इन्द्र का छत्र और मन्दरशिखर नाम की मणि लाकर भगवान् को दे दी। पृथ्वी देवी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करके कहा—नाथ, भौमासुर का पुत्र भगदत्त आपकी शरण में आया है। इसे अभयदान दीजिए और राजभवन में पधारकर कृतार्थ कीजिए। तब भगवान् कृष्णचन्द्र भगदत्त को साथ लेकर भौमासुर के भवन में गये। भौमासुर मनुष्य, देवता, असुर आदि जातियों के राजाओं की अनेक सुन्दरी कन्याओं को बलपूर्वक हर ले आया था। वे

गिनती में सोलह हजार एक सौ थीं। भौमासुर ने अपने विशाल राजभवन में उन्हें रख छोड़ा था। जब भगवान् कृष्णचन्द्र राजभवन में गये, तब उनके सुन्दर स्वरूप को देखकर वे सब मोहित हो गईं और यह समझकर कि विधाता ने उनके योग्य वर घर बैठे भेज दिया है, वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं कि हे ईश्वर, अगर हमने कुछ भी पुण्य किया है तो यही श्याम-सुन्दर हमारे वर हों।

उन स्त्रियों के मन की बात श्रीकृष्ण भगवान् जान गये; क्योंकि वह तो अन्तर्यामी ठहरे—सभी के मन की बात जानते हैं। कृष्ण ने उन सबको पालकियों पर बिठाकर द्वारकापुरी को भेज दिया। उनके साथ ही बहुत-सा खज़ाना, उत्तम रथ, घोड़े और ऐरावत के वंश में उत्पन्न, चार दाँतवाले, सफेद रंग के चौंसठ श्रेष्ठ हाथी भी भेज दिये। इसके बाद भगवान् अदिति के कुण्डल, इन्द्र का छत्र और महामूल्य मणि देने के लिए सत्यभामा के साथ गरुड़ पर बैठकर इन्द्रलोक को गये। वहाँ जाकर उन्होंने इन्द्र को उनकी सब चीजें लौटा दीं। लौटते समय सत्यभामा ने कृष्ण से कहा—प्रियतम, यह कल्पवृक्ष आप द्वारकापुरी को ले चलिए। मैं अपने बाग में इसे लगाऊँगी। सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए भगवान् ने कल्पवृक्ष को उखाड़कर गरुड़ की पीठ के ऊपर रख लिया। यह देखकर इन्द्र बिगड खड़े हुए। वह उन्हीं कृष्णचन्द्र से लडने को तैयार हो गये, जिन्होंने अभी भौमासुर को मारकर उनका उपकार किया था। पर वे कृष्ण के आगे क्या ठहर सकते थे? दमभर में भगवान् ने सबको मार भगाया और कल्पवृक्ष लेकर द्वारकापुरी को लौट आये। द्वारका में आकर श्रीकृष्ण ने

सत्यभामा के महल में कल्पवृक्ष को लगा दिया। इसके बाद शुभ मुहूर्त में श्रीकृष्ण ने सोलह हज़ार एक सौ रूप रखकर एक साथ उन सब राजकुमारियों के साथ ब्याह कर लिया। सब रानियों के लिए अलग-अलग सुन्दर महल बनवा दिये। कृष्ण भगवान् अनेक रूप रखकर हरएक रानी के महल में रहते थे। सभी जानती थीं कि श्रीकृष्णजी मुझे ही सबसे बढ़कर चाहते और मेरे ही घर में रहते हैं। कृष्णचन्द्र के सभी विवाहों का हाल मैंने सुना दिया। अब और कथा कल सुनना।

बेटा, अब कृष्ण की सन्तानों का हाल सुनो। श्रीकृष्ण के जो आठ पटरानियाँ थीं, उनमें हरएक के पेट से कृष्ण के दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब विद्या, बल, बुद्धि और रूप में अपने पिता के ही अनुरूप थे। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु नाम के दस पुत्र हुए। सत्यभामा के गर्भ से भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु नाम के दस पुत्र हुए। जाम्बवती के गर्भ से साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण और ऋतु नाम के दस पुत्र हुए। सत्या के गर्भ से वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और कुन्ति नाम के दस पुत्र हुए। कालिन्दी के गर्भ से श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक नाम के दस पुत्र हुए। माद्री के गर्भ से प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित नाम के दस पुत्र हुए। मित्रविन्दा के गर्भ से वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महांशु, पावन, वह्नि और क्षुधि नाम के दस पुत्र हुए। भद्रा के गर्भ से संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय,

सुभद्र, राम, आयु और सत्य नाम के दस पुत्र हुए। रुक्मिणी के गर्भ से चारुमती नाम की एक कन्या भी श्रीकृष्ण के उत्पन्न हुई थी। उसका व्याह भगवान् ने कृतवर्मा यादव के पुत्र से कर दिया।

रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी की कन्या रुक्मवती के साथ प्रद्युम्न का व्याह हुआ। रुक्मी का कृष्ण ने अपमान किया था, इसलिए वह उनको शत्रु समझता था। मगर फिर भी बहन को प्रिय करने के लिए उसने अपनी कन्या का व्याह प्रद्युम्न के साथ होने में कोई बाधा नहीं डाली। बात यह हुई कि रुक्मी ने अपनी कन्या का स्वयम्वर किया था। उसमें बहुत से राजा आये थे। प्रद्युम्न भी अकेले ही गये थे। रुक्मवती ने प्रद्युम्न के गले में जयमाला डाल दी। तब और सब राजा बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने प्रद्युम्न को घेरकर उनसे रुक्मवती को छीन लेना चाहा। लेकिन प्रद्युम्न बल में श्रीकृष्ण से कुछ कम नहीं थे। उन्होंने सब राजों को परास्त कर दिया और रुक्मवती को व्याहकर द्वारका ले गये।

प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध हुए। रुक्मी की पोती का नाम रोचना था। यद्यपि यह सम्बन्ध धर्मशास्त्र के नियम के विरुद्ध था, तथापि रुक्मी ने रुक्मिणी की प्रसन्नता के लिए अपनी पोती का व्याह कृष्ण के पोते अनिरुद्ध के साथ कर दिया। इस व्याह में बरात सजाकर कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न, वसुदेव आदि सब यादव गये। कृष्णजी के साथ रुक्मिणी भी गईं। वहाँ बड़ी धूम-धाम के साथ बड़े उत्साह से विवाह हुआ। व्याह के बाद दूसरे दिन कलिंगनरेश आदि कई घमंडी दुष्ट राजाओं ने, जो रुक्मी के यहाँ न्योते आये थे, रुक्मी से कहा—आज बलदेव को बुलाकर उनसे चौसर खेलो। बलदेव चौसर खेलना कम जानते हैं, पर उन्हें चौसर खेलने का बड़ा शौक है। उनको हम सब मिलकर जीत लेंगे और उनकी हँसी उड़ावेंगे। इससे वह बहुत झेंपेंगे। होनी कुछ ऐसी ही थी, जिससे रुक्मी भी राजी हो गया।

बलदेवजी बुलाये गये। चौसर बिछ गई। बलभद्र ने क्रम से बड़े से बड़ा दाँव लगाया, पर वह बराबर हारते ही गये। जब दस हजार का दाँव रुक्मी ने जीता, तब कलिंग देश का राजा जोर से ठहाका मारकर हँसा। उसका हँसना बलदेव को बहुत बुरा लगा; लेकिन वह कुछ बोले नहीं। इसके बाद उन्होंने एक लाख मोहर का दाँव लगाया। अब की बलदेवजी जीत गये। लेकिन रुक्मी ने बेईमानी करके कहा—मैं जीता। रुक्मी ने सरासर छल किया, लेकिन बलदेव ने नातेदार समझकर टाल दिया। अब की उन्होंने और लम्बा दाँव लगाया। उसे भी बलदेवजी जीत गये। अब की रुक्मी फिर बेईमानी करने लगा। बोला—आप नहीं जीते, मैं ही जीता हूँ।

इसी समय आकाशवाणी हुई कि धर्म की बात यह है कि इस दाँव को भी बलभद्र ने ही जीता है। बलदेवजी का कहना ही सच है; रुक्मी झूठा है। लेकिन रुक्मी के सिर पर तो काल सवार था; वह कैसे मानता। दुष्ट साथियों के बहकाने से उसने आकाशवाणी को नहीं माना। वह जोर से ठहाका मारकर हँसा और कहने लगा—तुम लोग गऊ चरानेवाले ग्वाले चौसर खेलना क्या जानो? राजा लोग ही पाँसे और बाणों से खेल सकते हैं।

रुक्मी ने जब इस तरह कहकर उपहास किया और उसके साथी राजा हँसने लगे, तब बलदाऊ की आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। वह नातेदारी और स्नेह सब भूल गये। बलदेव ने आव न देखा ताव, झपटकर दरवाजे में लगानेवाला लोहे का भारी बेलन उठा लिया और रुक्मी के सिर पर दे मारा। रुक्मी का सिर चूर हो गया और उसी दम उसके प्राण निकल गये।

कलिंगराज पहले दाँत निकालकर हँसा था, इसलिए बलदेव उसकी ओर झपटे। वह भागा। लेकिन दस-बीस क़दम भी भाग न सका। बलदेव ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसके सब दाँत तोड़ डाले। और जो दुष्ट राजा रुक्मी के साथी थे, उनको भी थोड़ा-थोड़ा प्रसाद मिल गया। बलदेव ने उनका अङ्गभङ्ग कर दिया। सब जान बचाकर भाग खड़े हुए। इस तरह रुक्मी की मूर्खता से रङ्ग में भङ्ग हो गया। ब्याह का उत्सव और आनन्द फीका पड़ गया। कृष्णचन्द्र ने अपने साले की मृत्यु पर अच्छा-बुरा कुछ नहीं कहा। कारण, अगर बुरा कहते तो बलदेवजी नाराज हो जाते और अगर अच्छा कहते तो रुक्मिणी को बुरा लगता।

इसके बाद अनिरुद्ध को नववधू के साथ रथपर सवार कराकर कृष्णचन्द्र रुक्मिणी और बलदेव आदि के साथ द्वारकापुरी को लौट आये। अब अनिरुद्ध के दूसरे व्याह की कथा सुनो। बाणासुर की कन्या ऊषा के साथ अनिरुद्ध का दूसरा व्याह हुआ। भगवान् के भक्त प्रह्लाद के वंश में राजा बलि बड़े प्रतापी हुए, जिन्होंने इन्द्र को जीतकर स्वर्ग का राज्य छीन लिया। उनसे स्वर्ग की गद्दी लेकर इन्द्र को लौटाने के लिए विष्णु ने वामन अवतार लिया था। राजा बलि के सौ बेटे थे। उनमें बाणासुर बड़ा था। बाणासुर शङ्कर का बड़ा भारी भक्त था। उसकी राजधानी का नाम शोणितपुर था। शंकर जब ताण्डव नृत्य करते थे, तब असुर बाजा बजाकर उनको प्रसन्न करता था। एक समय शिव ने प्रसन्न होकर उससे वरदान माँगने को कहा। बाणासुर ने दो वर माँगे। एक तो यह कि उसके हजार हाथ और बेशुमार बल हो और दूसरा यह कि शंकर उसकी पुरी में रहकर उसकी रक्षा करें। शंकर ने दोनों वर उसको दे दिये। अब बाणासुर को बड़ा अभिमान हो गया। उसने सब राजों और लोकपालों को हरा दिया। अब कोई उससे लड़नेवाला नहीं रहा। तब उसने एक समय शिव के चरणों में सिर रखकर कहा—हे महादेव, आप सब लोगों के गुरु और ईश्वर हैं। आपके दिये हुए ये हजार हाथ अब मेरे लिए बोझ हो रहे हैं। कारण, मैं तीनों लोकों में घूम आया, कोई मुझे अपने समान बलवान् नहीं मिलता, जिससे मैं लड़ूँ। बाणासुर के अभिमान-भरे वचन सुनकर शंकर को क्रोध आ गया। उन्होंने एक झण्डा देकर उससे कहा—जिस दिन यह टूटकर गिर पड़े, उस दिन समझ लेना कि तुम्हारे अभिमान को चूर करनेवाले बलवान् से तुम्हारी भेंट होगी।

बाणासुर के ऊषा नाम की कन्या थी। वह परम सुन्दरी थी। ऊषा ने एक दिन सपने में कृष्ण के पोते अनिरुद्ध को देखा। एकाएक अनिरुद्ध को देखने का सपना नींद खुल जाने से उचट गया और ऊषा "प्यारे, कहाँ गये?" कहती हुई उठ बैठी। ऊषा की सखी चित्रलेखा वहाँ मौजूद थी। उसे देखकर ऊषा लजा गई। चित्रलेखा ने अचरज के साथ कहा—सखी, तुम किसे खोज रही हो और प्रियतम कह रही हो? अभी तो तुम्हारा व्याह नहीं हुआ, तुम क्वाँरी ही हो।

ऊषा ने कहा—सखी, मैंने अभी सपने में एक परम सुन्दर पुरुष को देखा है। उसका रङ्ग साँवला था, भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं और नेत्र कमल के समान विशाल थे। सजनी मैं उसी के वियोग में व्याकुल होकर उसी को खोज रही हूँ।

चित्रलेखा ने कहा—मैं तुम्हारे चितचोर का पता अभी लगाती हूँ। मैं संसार के सभी

पुरुषों को जानती हूँ और उनके चित्र बना सकती हूँ। तुम उसे पहचान लो; मैं अपनी माया के बल से आकाश की राह जाकर उसको तुम्हारे पास ले आऊँगी।

यह कहकर चित्रलेखा ने देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, सिद्ध, चारण, विद्याधर, यक्ष आदि जातियों के श्रेष्ठ पुरुषों के चित्र क्रम से बनाये, पर ऊषा का वह चितचोर उनमें नही निकला। इसके बाद वह मनुष्यों के चित्र बनाने लगी। वह चित्र बनाकर दिखाती जाती थी और ऊषा कह देती थी, यह नहीं है, यह नहीं है। क्रम से चित्रलेखा ने सूर्यवंश के राजों के बाद चन्द्रवंश के राजों के चित्र लिखना शुरू किया। यादवों के भी चित्र बनाये। फिर कृष्ण, बलदेव और प्रद्युम्न के चित्र बनाये। प्रद्युम्न को देखकर ऊषा ने कहा—यह नहीं हैं, पर इनसे बहुत कुछ उनकी सूरत मिलती है। चित्रलेखा ने जब अनिरुद्ध का चित्र बनाया, तब ऊषा कह उठी—हाँ, यही हैं।

चित्रलेखा ने योगविद्या के बल से जान लिया कि यह कृष्ण के पोते अनिरुद्ध हैं और द्वारकापुरी में रहते हैं। बस, वह उसी योगबल से आकाश में उड़ गई। रात को ही द्वारका पहुँचकर अनिरुद्ध को राजमहल से मय पलँग के ऊषा के भवन में उठा लाई। उसने सखी के प्रियतम को उससे लाकर मिला दिया। अनिरुद्ध भी ऊषा को पाकर परम प्रसन्न हुए। वह वहीं गुप्त रूप से रहने लगे। ऊषा के महल में कोई मर्द नहीं जा सकता था। बाहर दरवाजे पर विश्वासी बूढे नौकर पहरा दिया करते थे। बाणासुर को स्वप्न में भी यह खयाल न था कि उसकी कन्या के महल में कोई गैर मर्द रह सकता है। एक दिन ऊषा ने ऊपर से झाँका। उसे देखकर पहरेदार भौचक्का हो रहा। कारण, ऊषा के शरीर में स्पष्ट ऐसे लक्षण देख पड़ते थे, जिनसे जान पड़ता था कि वह किसी पुरुष के संसर्ग में आ चुकी है। पहरेदार शङ्कित होकर उसी समय बाणासुर के पास दौड़ा गया।

उसने हाथ जोड़कर भरी हुई आवाज़ में बाणासुर से कहा—महाराज, मुझे तो जान पड़ता है, कि राजकुमारी के आचरण बिगड़े हुए हैं, जिनसे आपकी बदनामी होने का डर है। हम लोग हर घड़ी बड़ी सावधानी से कड़ी नजर रखते हैं; कोई मर्द उधर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता। फिर भी नहीं जानते, कैसे यह अनर्थ हो गया।

यह समाचार पाकर बाणासुर बहुत घबराया और दुःखित हुआ। वह उसी दम दौड़ता हुआ कन्या के महल में गया। उसने एकाएक वहाँ जाकर देखा, साक्षात् कामदेव के पुत्र त्रिभुवनसुन्दर अनिरुद्ध जी कन्या के पास बैठे हैं और चौसर खेल रहे हैं। बाणासुर क्रोध से

विह्वल हो उठा। उसके साथ बहुत से असुर अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये हुए आये थे। बाणासुर भी नङ्गी तलवार हाथ में लिये था। अनिरुद्ध देखते ही उनका इरादा ताड़ गये। उन्होंने उठकर द्वार में लगनेवाला लोहे का भारी बेलन उठा लिया और सामना करने के लिए तैयार हो गये। जो असुर उनको पकड़ने के लिए उनके पास गया, उसी को उन्होंने मार गिराया। मरने से बचे हुए असुर भाग खड़े हुए। तब बाणासुर ने क्रोध करके नागपाश से अनिरुद्ध को पकड़कर बाँध लिया। ऊषा को रोते देखकर उसने अनिरुद्ध को मारा नहीं, क़ैद कर लिया।

इधर अनिरुद्ध को गायब हुए पूरा चौमासा बीत गया। यादवों ने उनका बहुत पता लगाया, पर वह तो बाणासुर के यहाँ क़ैद थे, मिलते कहाँ। चार महीने के बाद एक दिन नारदजी द्वारका में पहुँचे और उन्होंने बतलाया कि अनिरुद्ध को बाणासुर ने नागपाश में बाँधकर क़ैद कर रक्खा है। यह खबर मिलते ही सब यादव युद्ध के लिए तैयार हो गये। प्रद्युम्न, सात्यकी, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र आदि श्रेष्ठ यादवों ने कृष्ण और बलदेव के साथ युद्ध के लिए कूच कर दिया।

यादवों की विशाल सेना ने जब शोणितपुर को घेर लिया, तब बाणासुर भी युद्ध के लिए तैयार होकर नगर के बाहर निकला। बाणासुर शङ्कर का भक्त था। भक्त की रक्षा करने के लिए खुद महादेवजी नन्दी पर सवार होकर, त्रिशूल हाथ में लिये हुए, अपने गणों और पुत्रों के साथ युद्ध करने को आये। शङ्कर ने जो झण्डी बाणासुर को दी थी, वह एकाएक उसी दिन टूटकर गिर पड़ी, जिससे बाणासुर समझ गया कि आज उसे अपनी बराबरी का लड़नेवाला मिलेगा।

दोनों ओर की सेनाएँ भिड़ गईं। दो-दो वीर आमने-सामने होकर लड़ने लगे। कृष्ण से महादेव, प्रद्युम्न से शिव के पुत्र कार्तिकेय, कुम्भाण्ड व कूपकर्ण नाम के असुरों से बलदेवजी, साम्ब से बाणासुर का पुत्र और सात्यकी से बाणासुर लड़ने लगा। बड़ा घोर युद्ध हुआ। आकाश में विमानों पर बैठे हुए ब्रह्मा आदि देवता उस युद्ध को आश्चर्य के साथ देखने लगे। कृष्णचन्द्र ने अपने बाणों से शिव के गणों को मार भगाया। शिव और कृष्ण के युद्ध का अन्त ही नहीं होता देख पड़ता था। अन्त को कृष्ण ने मोहन अस्त्र छोड़कर शिव को मोहित कर दिया। वह जम्हाई लेते हुए अचेत से हो गये। बाणासुर सात्यकी को छोडकर कृष्ण के सामने आया और उनसे भिड़ गया। बाणासुर ने एक साथ हजार हाथों से पाँच सौ धनुष चढ़ाकर इतने बाण कृष्ण के ऊपर छोड़े कि वह उनमें छिप से गये। मगर जैसे तेज हवा बादल के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है, उसी तरह कृष्ण ने अपने बाणों से उन बाणों को काट गिराया। कृष्ण ने

बाणासुर को निहत्था कर दिया। उसका रथ भी नष्ट कर डाला। अपने पुत्र के ऊपर प्राणसंकट पड़ा हुआ देखकर उसकी जान बचाने के लिए बाणासुर की माता कोटरा नंगी ही निकल आई। नंगी स्त्री को देखना नहीं चाहिए, इसीलिए कृष्ण ने मुँह फेर लिया। इसी अवसर में बाणासुर दूसरा रथ लेने के लिए वहाँ से खिसक गया।

अब फिर शंकर से कृष्ण का युद्ध होने लगा। शिव ने तीन सिर और तीन पैरोंवाले अपने ज्वर को छोड़ दिया। सब वीर ज्वर से व्याकुल हो उठे और लड़ने के लायक नहीं रहे। ज्वर को अपनी ओर आते देखकर कृष्णचन्द्र ने भी उसके दमन के लिए शीतज्वर (जूड़ी) को छोड़ा। दोनों ज्वर घोर युद्ध करने लगे। अन्त को शंकर का छोड़ा हुआ ज्वर कृष्णचन्द्र के शीतज्वर से हारकर चिल्लाता हुआ भागा।

अब बाणासुर फिर से अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर दूसरे रथ पर बैठकर फिर समर-भूमि में आया और कृष्णचन्द्र से लड़ने लगा। अब की भगवान् ने अपने चक्र से एक-एक करके उसके हाथों को काटना शुरू किया, जैसे बढ़ई किसी पेड़ की शाखाओं को काटे। जब केवल दो हाथ रह गये और शंकर ने समझा, अब इसके प्राण भी नहीं बचेंगे, तब वह कृष्ण के सामने आकर उनकी स्तुति करने लगे। शंकर ने कहा—मैं जानता हूँ, आप साक्षात् नारायण हैं। आप से कोई जीत नहीं सकता। यह असुर मेरा परम भक्त है; मैंने इसे अभयदान किया है। फिर यह आपकी महिमा को नहीं जानता, इसी से इसने आपके पोते को पकड़कर और आपसे युद्ध करके अपराध किया है। मेरी प्रार्थना है कि आप इसके प्राण न लें। इसे पूरा दण्ड मिल चुका।

कृष्णचन्द्र ने कहा—शंकरजी, आप मेरा ही दूसरा रूप हैं। आपकी बात को मैं कैसे टाल सकता हूँ? इसके प्राण तो मैं यों भी न लेता; क्योंकि यह मेरे परम भक्त प्रह्लाद के वंश में पैदा हुआ है। मै प्रह्लाद को वरदान दे चुका हूँ कि तुम्हारे वंश के किसी भी असुर को मैं नहीं मारूँगा। मैंने इसके घमण्ड को मिटाने के लिए ही इसके हाथ काट डाले हैं। इसके जो ये दो हाथ बच रहे हैं, वे सदा बने रहेंगे। यह अजर-अमर होगा और आपके पार्षदों में प्रधान माना जायगा।

बाणासुर ने भी कृष्ण के चरणों में गिरकर अपना अपराध क्षमा कराया। इसके बाद वही सेना बरात की सूरत में बदल गई। बाणासुर ने सब यादवों को ले जाकर अपनी पुरी में टिकाया। शुभ लग्न में अनिरुद्ध के साथ ऊषा का व्याह हो गया। बाणासुर ने बहुत-सा धन, रत्न, सेना, कपड़े-लत्ते, रत्न-गहने, दास-दासी आदि सामान दहेज में दिया। ऊषा को विदा कराकर और

शंकर से विदा होकर कृष्णचन्द्र द्वारकापुरी को लौट गये। शंकर भी कैलास को गये। बाणासुर आनन्द से निर्भय होकर राज्य करने लगा। जिसे जूड़ी आती हो, वह इन ज्वरों की लड़ाई का हाल अगर पढता या सुनता है तो उसी घड़ी उसकी जूड़ी छूट जाती है। भगवान् कृष्णचन्द्र ने यही वरदान दोनों ज्वरों को दिया था।

अब कृष्णचरित्र के अन्तर्गत राजा नृग के शाप से छुटकारे का हाल कहते हैं। एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न आदि यादवकुल के लड़के खेलने के लिए नगर के बाहर मैदान में गये। बहुत देर तक खेलने के बाद उनको जोर से प्यास लग आई। तब वे सब पानी की खोज में इधर-उधर गये। एक जगह उनको एक पुराने जमाने का बड़ा-सा कुआँ देख पड़ा। लड़कों ने झाँककर देखा तो उसमें पानी नहीं था; बल्कि एक बड़ा भारी गिरगिट पड़ा हुआ था। एक बहुत बड़ी शिला के आकारवाले उस गिरगिट को देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ। उन्हें उस गिरगिट पर तरस आ गया और वे उसे बाहर निकालने की कोशिश करने लगे। उन्होंने उतरकर बड़े-बड़े रस्से लाकर उसे बाँधा और ऊपर निकालना चाहा; पर वह टस से मस नहीं हुआ। लड़के जब अपनी चेष्टा में सफल न हो सके तब उन्होंने भगवान् कृष्णचन्द्र से आकर सब हाल कहा। कृष्णचन्द्र उनके साथ उस जगह पर आये। उन्होंने जैसे ही उस गिरगिट के शरीर में हाथ लगाया, वैसे ही वह गिरगिट का शरीर छोड़कर बडा तेजस्वी सुन्दर पुरुष हो गया। उस देवरूप पुरुष को देखकर सबको बड़ा अचम्भा हुआ।

तब सब हाल जानते हुए भी कृष्णचन्द्र ने उस पुरुष से पूछा—हे तेजस्वी पुरुष, तुम कौन हो? कोई देवता तो नहीं हो? तुमको यह गिरगिट की योनि क्यों मिली थी? अगर हमारे सुनने लायक़ हो तो अपना सब वृत्तान्त हम से कहो।

उस पुरुष ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो, मैं इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न राजऋषि हूँ। मेरा नाम नृग है। दानी लोगों की गिनती में शायद आपने मेरा नाम अवश्य सुना होगा। मैंने ब्राह्मणों को जितने गोदान किये हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। गउएँ भी ऐसी-वैसी नहीं, दुधार, जवान सीधी और अच्छे गुणवाली दी हैं। उन कपिला और श्यामा गउओं के सींग सोने से और खुर चाँदी से मढ़े हुए होते थे। हरएक के साथ बछड़ा या बछिया जरूर होती थी। फिर वे न्याय से पैदा किये धन से ही मैं ख़रीदता था और अच्छे सुपात्र, सुशील, पढ़े-लिखे, बहुत परिवारवाले वेदपाठी ब्राह्मणों को ही गोदान करता था। मैंने अनेक यज्ञ किये, धर्मशालाएँ बनवाईं, बावली और कुएँ खुदवाये, और बाग लगवाये। इस तरह मैं सदा धर्म के काम ही करता रहा। पर एकबार अनजान में तनिक-सी चूक हो गई, जिसका फल मैं यह भोग रहा था। एकबार मैंने जो गउएँ ब्राह्मणों को देने के लिए जमा की थीं, उनके झुण्ड में किसी ब्राह्मण की गऊ आकर मिल गई। मुझे इसका कुछ हाल मालूम नहीं था। मैंने वह ब्राह्मण की गऊ भी एक दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी। वह ब्राह्मण जब गऊ को लेकर अपने घर चला तो राह में वह ब्राह्मण मिल गया, जिसकी वह गऊ थी। गऊ के मालिक ने उस ब्राह्मण से कहा—यह गऊ तुम कहाँ लिये जा रहे हो? यह तो मेरी है। इस पर दूसरे ब्राह्मण ने बिगड़कर कहा—तुम झूठे हो। मुझे तो यह गऊ राजा नृग ने दान की है। दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए मेरे पास आकर कहने लगे—राजा, तुम कैसे दानी हो? एक हाथ से देते हो और दूसरे हाथ से ले लेते हो? इतना कहकर दोनों ब्राह्मणों ने उस गऊ को अपनी बतलाया। अब मैं धर्मसंकट में पड़ गया। बिना जाने मुझ से यह अधर्म बन पड़ा था। मैंने दोनो ब्राह्मणों से बारी-बारी से कहा कि आप चाहे जितनी गउएँ इस गऊ के बदले में ले लें और यह गऊ दूसरे ब्राह्मण को दे दें। पर इस पर कोई भी राज़ी नहीं हुआ। वे उसी को लेने पर तुले हुए थे, यह भी मेरा दुर्भाग्य ही था।

अन्त को वे दोनों ब्राह्मण उस गऊ को मेरे ही पास छोड़कर चले गये—मेरी प्रार्थना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। मेरी मृत्यु होने पर यमराज के दूत मुझे यमराज के पास ले गये। यमराज ने पूछा—राजा, तुम पहले अपने पुण्य का फल भोगोगे या पाप का? मैंने पूछा—

मेरा पुण्य कितना है और पाप कितना ? यमराज ने कहा—तुम्हारा पुण्य बेशुमार है और उसके बदले में तुम अनन्त काल तक स्वर्गसुख भोगोगे। पाप बहुत थोड़ा ही है। तब मैंने कहा—मैं पहले पाप का ही फल भोगूँगा। बस, मुझे उसी दम यह गिरगिट की योनि मिली। मैंने उस जन्म में खूब पुण्य-दान किये थे, इसी से इस अधम योनि में भी पूर्व जन्म की याद बनी रही। यह ब्राह्मणों की सेवा और दान का ही प्रभाव है कि आज मैं आपके दर्शन पाकर कृतार्थ हुआ। इस प्रकार अपना पहले जन्म का हाल कहकर कृष्णचन्द्र के चरणों में प्रणाम करके राजा नृग एक सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्गलोक को चले गये।

कुछ दिन के बाद बलदेवजी कृष्ण से कहकर नन्द के व्रज को गये। वहाँ जाकर उन्होंने नन्द, यशोदा और गोपियों के दुःख को दूर किया। उनके जाने से सबको बड़ी शान्ति मिली। बलदेव जी जिन दिनों व्रज को चले गये थे, उन्हीं दिनों में करूप देश के राजा पौंड्रक ने अपना एक दूत कृष्ण के पास भेजा। पौंड्रक को यह सनक सवार थी कि मैं ही नारायण का अवतार वासुदेव हूँ। उसने काठ के दो हाथ लगाकर अपने को चार भुजावाला विष्णु बना रक्खा था और अपनी सवारी के लिए एक काठ का गरुड़ भी बनवा लिया था। उसके दूत ने आकर भरी सभा में कृष्णचन्द्र से कहा—हमारे महाराज ने आपसे कहा है कि वासुदेव नाम से प्रसिद्ध नारायण का अवतार मैं ही हूँ। मेरी महिमा अपरम्पार है। तुम अपने को वासुदेव कहलाना छोड़ दो। हे यादव, तुमने मूर्खतावश गरुड़ की ध्वजा का रथ, चार भुजा आदि जो नारायण के चिह्न धारणकर रक्खे हैं, उन्हें छोड़कर मेरी शरण में आकर क्षमा माँगो—अथवा मुझसे युद्ध करो।

दूत के मुख से पौंड्रक का सँदेसा सुनकर सब यादव जोर से हँसने लगे। भगवान् कृष्ण ने भी हँसकर कहा—देखो दूत, अपने राजा से कह देना कि जिन लोगों की सहायता और घमण्ड पर तू इस प्रकार इतरा रहा है और ऐसी अनर्गल बातें बक रहा है, उनको भी मैं देख लूँगा। रह गये सुदर्शन, गरुड़ की ध्वजा आदि अपने चिह्न; सो उनको मैं वहीं आकर रण में छोड़ूँगा।

दूत ने द्वारका से लौटकर पौंड्रक को जैसा का तैसा कृष्ण का उत्तर सुना दिया। पौंड्रक काशी के राजा का मित्र था। श्रीकृष्णचन्द्र रथ पर बैठकर करूप देश को गये। पौंड्रक अपनी बहुत-सी सेना लेकर कृष्ण से लड़ने के लिए नगर के बाहर निकला। उसकी सहायता करने के लिए काशिराज भी अपनी सेना लेकर पहुँचा। भगवान् कृष्णचन्द्र ने देखा, पौंड्रक बिलकुल उनका ही जैसा वेष बनाये हुए है। वैसे ही शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और वनमाला पहने

है। वैसे ही उसके रथ पर गरुड़ के चिह्न से युक्त ध्वजा फहरा रही है। नट के समान नक़ल करनेवाले पौंड्रक को देखकर श्रीकृष्ण बहुत हँसे। थोड़ी देर तक युद्ध करने के बाद पौंड्रक
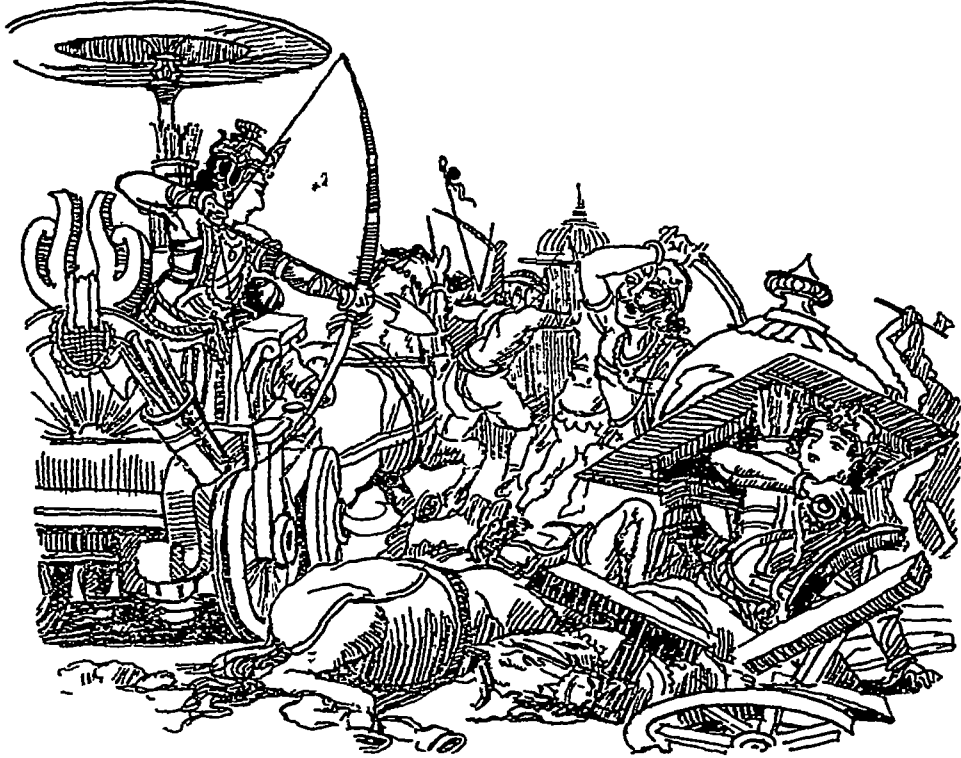
भगवान् के हाथ से मारा गया। उसके मित्र काशी के राजा को भी भगवान् ने मार गिराया। इस प्रकार विजय पाकर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरी को लौट गये।

भगवान् ने ऐसा बाण मारा था कि उसने काशिराज का सिर काटकर काशी में गिरा दिया। काशिराज की मौत का समाचार पाकर उसकी रानियाँ और लड़के विलाप करने लगे। काशिराज का बेटा सुदक्षिण था। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने पिता की हत्या करनेवाले कृष्ण से बाप का बदला जरूर लूँगा। यह प्रण करके समाधि लगाकर वह भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगा। उसके घोर तप से भगवान् भोलानाथ प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रकट होकर उससे वरदान माँगने को कहा। सुदक्षिण ने कहा—जिसने मेरे पिता को मारा है, उसके वध का उपाय बतलाइए। शङ्कर ने कहा—तुम वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर उनकी सहायता से मारण का अनुष्ठान करो। उस यज्ञ के हवनकुण्ड से एक भयानक मूर्ति पैदा होगी

और वह अवश्य तुम्हारे पिता के मारनेवाले का वध करेगी। पर इसमें इतनी बात जरूर है कि ब्राह्मणों के भक्त पर तुम्हारा मारण नहीं चलेगा।

इतना कहकर भगवान् शंकर अन्तर्द्धान हो गये। उधर सुदक्षिण मारण के लिए अग्नि में हवन करने लगा। अनुष्ठान समाप्त होने पर यज्ञ-कुण्ड से एक भयानक पुरुष निकला। उसके केश ताँबे के रंग के थे। आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। निकली हुई दाढ़ें और लपलपाती हुई जीभ उसके मुखमण्डल को और भी भयानक बना रही थी। वह जीभ से अपनी ओठें चाटता जाता था। उसके पैर ताड़ के पेड़ के बराबर लम्बे थे। उसका तेज इतना विकट था कि कोई आँख भर उसे देख नहीं सकता था। वह त्रिशूल तानकर सीधा द्वारका की ओर चला गया। उस समय कृष्णचन्द्र सभा में बैठे चौसर खेल रहे थे। भय से व्याकुल पुरवासी वहाँ जाकर त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। वे बोले—भगवान् साक्षात् अग्निदेव हम सबको भस्म करने के लिए चले आ रहे हैं। उनसे हमारी रक्षा कीजिए।

भगवान् अपने योगबल से सब हाल जान गये। उन्होंने कहा—तुम लोग डरो नहीं। मैं अभी तुम्हारी रक्षा करता हूँ। इतना कहकर भगवान् ने सुदर्शन चक्र को उस भयानक पुरुष का विनाश करने के लिए भेज दिया। शंकर के कथनानुसार वह मारण का अनुष्ठान ब्राह्मणों के भक्त श्रीकृष्ण का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सका। सुदर्शन चक्र के तेज से पीड़ित होकर वह मारण की कृत्या उलटे पैरों भागी। उसने काशी में आकर सुदक्षिण और उसके पुरोहितों को ही सफाचट कर दिया। कारण, मारण का अनुष्ठान खाली नहीं जा सकता। जिस पर किया जाता है, उसे अगर किसी कारण से नहीं मार सकता तो करनेवाले ही को मार डालता है। भगवान् का चक्र उस कृत्या का पीछा करता हुआ काशी तक गया। उसने काशीपुरी का बहुत-सा हिस्सा और राजमहल अपने तेज से भस्म कर दिया। उसके बाद सुदर्शन चक्र फिर कृष्णचन्द्र के पास लौट आया। अब आज इतना ही। कल फिर और आगे की कथा सुनना।

बनारसीलाल ने मनोहर से दूसरे दिन फिर इस प्रकार आगे की कथा कहना शुरू किया—

त्रेतायुग में जब रामचन्द्र ने अवतार लिया था, तब द्विविद नाम का एक बन्दर सुग्रीव का बड़ा भारी मित्र और मंत्री था। द्विविद बड़ा बली था। वह अपने भाई मैंद के साथ रामचन्द्र की तरफ से रावण से लड़ा था। यह राम और रावण की लड़ाई का हाल रामायण में विस्तार के साथ लिखा है। द्विविद बन्दर कृष्ण के समय में भी जिन्दा था। भौमासुर से इसकी बड़ी मित्रता थी। कृष्ण ने जब भौमासुर को मार डाला तो मित्र का बदला लेने के लिए वह बन्दर

द्वारकापुरी में आकर बड़ा उपद्रव करने लगा। द्विविद के शरीर में दस हजार हाथियों का बल था। वह कभी मकानों में आग लगा देता, कभी बड़ी-बड़ी पत्थर की चट्टानें पहाड़ पर से लाकर बस्ती में गिराता और कभी समुद्र का जल किनारे की ओर उलचकर मकानों को बहाता था। लोगों को पकड़कर पहाड़ की खोह में डाल देता और भारी पत्थरों से उसका मुँह बन्द कर देता था।

एक दिन बलदेवजी द्वारकापुरी के पास रैवतक नाम के पहाड़ पर अपनी स्त्री और उसकी सखियों के साथ बठे नाचने-गाने का आनन्द ले रहे थे। बन्दर की मौत जो आई तो वह वहाँ जाकर उत्पात करने लगा। बलदेवजी को क्रोध आ गया। उन्होंने उसे ललकारा। द्विविद ने पहले तो बड़ी उछलकूद की, मगर अन्त को बलदेव के हाथ से मार डाला गया। उसके मारे जाने पर द्वारकावासियों ने बड़ी खुशी मनाई; क्योंकि वह उन्हें बहुत परेशान किये हुए था। अब कृष्ण के पुत्र साम्ब के ब्याह का हाल सुनो।

धृतराष्ट्र के लड़के दुर्योधन के एक लड़की थी। उसका नाम था लक्ष्मणा। उसका स्वयंवर रचा गया। जाम्बवती के पुत्र साम्ब बडे सुन्दर और वीर थे। वह अकेले ही कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर (दिल्ली) पहुँचे। उन्होंने जबरदस्ती लक्ष्मणा को उठाकर अपने रथ पर बिठा लिया और द्वारका को चल दिये। कौरवों ने इसको अपना अपमान समझा। वे बिगड़कर कहने लगे—यह लड़का बड़ा ढीठ है। लड़की की इच्छा न रहने पर भी, हमारी कुछ भी पर्वा न करके, उसे लिये जा रहा है। इसे पकड़कर कैद कर लो। यादव लोग हमारा क्या कर लेंगे ? अगर वे हम पर चढ़कर आवेंगे तो हम भी उनका घमण्ड चूर कर देंगे।

सब कौरवों ने साम्ब का पीछा किया। साम्ब भी रथ रोककर उनके सामने डट गये। घोर युद्ध होने लगा। एक तरफ कर्ण, भीष्मपितामह, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु, दुर्योधन और द्रोणाचार्य, ये छः महारथी थे और दूसरी ओर वह अकेला बालक। कहाँ तक लड़ता। अन्त को सबने मिलकर साम्ब का धनुष काट डाला, रथ और सारथी को नष्ट कर दिया। विजयी कौरव साम्ब को पकड़कर ले आये। नारदजी के मुख से यह खबर जब यादवों ने सुनी तो वे आपे से बाहर हो गये। सब कौरवों से लड़ने के लिए जाने की तैयारी करने लगे। पर दुर्योधन बलदेव का शिष्य था, इसलिए बलदेव ने सबको रोककर कहा—कौरव भी हमारे स्वजन हैं। उनसे लड़ बैठना बुद्धिमानी न होगी। साम्ब को पकड़कर उन्होंने बेशक गल्ती की है। मैं जाता हूँ और साम्ब को लिये आता हूँ। इतना कहकर बलदेवजी कुछ बड़े बूढ़े प्रधान यादवों और

ब्राह्मणों को साथ लेकर हस्तिनापुर को गये। हस्तिनापुर पहुँचकर बलभद्रजी नगर के बाहर

यमुना के किनारे ठहर गये और उद्धवजी को अपने आने की सूचना देने के लिए कौरवों की सभा में भेज दिया।

बलदेव के आने का समाचार पाकर कौरवों को बड़ी प्रसन्नता हुई; क्योंकि वे बलभद्र को अपना मित्र और शुभचिन्तक समझते थे। दुर्योधन आदि सब कौरव बहुत से उपहार (भेंट) और पूजा की सामग्री लेकर बलदेवजी के पास आये। कुशलप्रश्न और स्वागत-सत्कार के बाद जब सब लोग सुखपूर्वक बैठ गये तब बलभद्रजी ने मित्र भाव से समझाते हुए उनसे कहा—महाराज उग्रसेन ने कहा है कि तुम लोगों ने मिलकर अधर्म और अन्याय से अकेले बालक को पकड़कर क़ैद कर लिया है, यह जानकर भी हम इस अन्याय को इसीलिए सहे लेते हैं कि कौरवों और यादवों में मेल बना रहे और व्यर्थ ही खूनखराबी न हो। इसीलिए तुम उस बालक को छोड़ दो और लक्ष्मणा को उसके साथ कर दो। मुझे आशा है, तुम लोग तुरन्त ही महाराज उग्रसेन की आज्ञा का पालन करोगे।

कौरवों को भी अपने बल और पराक्रम का बड़ा घमण्ड था। वे अपने बराबर और किसी

को नहीं समझते थे। यादवों का यह बड़प्पन का दावा उन्हें कब बर्दाश्त हो सकता था। कौरवों में से कुछ कह उठे—कैसे अचरज की बात है! यादवों की लड़की (कुन्ती और सुभद्रा पाण्डु और अर्जुन को व्याही थीं) हमारे यहाँ व्याही हैं, इसीलिए अब वे बराबरी का ही नहीं, हमसे बड़े होने का—हमको आज्ञा देने का साहस करने लगे। हमारी ही कृपा से, हमारे ही अपनाने से आज यादवों को यह प्रतिष्ठा मिली है, इसे ये कृतघ्न (एहसानफरामोश) इतनी जल्दी भूल गये!

यों कहकर सब कौरव चल दिये। घमण्ड से चूर हो रहे कौरवों के वर्ताव को देखकर बलदेव को भी क्रोध चढ आया। वह कहने लगे—यह बात बहुत ही ठीक है कि मद से अन्धे हो रहे दुष्ट लोग शान्ति की इच्छा नहीं करते। जैसे पशु डण्डे की मार से ही सीधी राह पर आते हैं, वैसे ही दण्ड के द्वारा ही वे शान्त किये जा सकते हैं। मैं तो इनकी भलाई के लिए क्रोधित कृष्ण को और युद्ध के लिए तैयार यादवों को समझा-बुझाकर मेल के लिए यहाँ आया था; मगर इन घमण्डी कौरवों ने ऐसे कटु वचन कहे। अच्छा, अभी मैं इनको ठीक किये देता हूँ।

इतना कहकर बलदेव ने अपने हल से हस्तिनापुर की बस्ती को यमुना में डुबा देने के लिए उधर ही खींचा। नाव की तरह वह नगरी यमुना की ओर खिंचने लगी। तब सब कौरव घबरा-कर और डरकर प्राण बचाने के लिए साम्ब और लक्ष्मणा को आगे करके बलभद्र के पास दौड़े आये। सबने आकर बलदेव की बड़ी खुशामद की। तब बलभद्र ने उनको क्षमा कर दिया। दुर्योधन ने बहुत-सा दहेज देकर लक्ष्मणा के साथ साम्ब का व्याह कर दिया। लड़के और बहू को साथ लेकर बलदेवजी द्वारकापुरी को लौट आये।

एक समय नारद ने अपने मन में सोचा कि कृष्ण के सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ हैं। मनुष्य तो एक स्त्री को सन्तुष्ट नहीं रख सकता, फिर कृष्ण इतनी स्त्रियों को कैसे सन्तुष्ट रखते होंगे? जरा चलकर देखना चाहिए। यह सोचकर वह कृष्ण के सभी महलों में एक-एक करके गये। उन्हें सभी जगह कृष्णचन्द्र भिन्न-भिन्न रूपों में देख पड़े। कृष्ण के इस योगमाया-बल को देखकर नारदजी का संशय जाता रहा। वह कृष्णचन्द्र की स्तुति करके चले गये।

एक दिन कृष्ण भगवान् सभा में बैठे थे। इसी समय एक परदेसी ब्राह्मण वहाँ पर आया। भगवान् ने उसकी आवभगत और सत्कार किया। फिर उसके आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैं दूत हूँ। मगध के राजा जरासन्ध ने जब दिग्विजय किया था, उस समय

जो राजा उसके आगे नहीं झुके, जिन्होंने उसका सामना किया, उनको पकड़कर वह दुष्ट अपने साथ घर ले आया था। उसने उन बीस हजार राजों को अपने गिरिव्रज के मजबूत क़िले में क़ैद कर रक्खा है। उन्हीं राजों ने मुझे आपके पास भेजा है। उनकी प्रार्थना यह है कि आप जल्दी जरासन्ध को मारकर उन्हें बन्धन से छुड़ाइए। भगवान् ने ब्राह्मण से कहा—मैं अवश्य उनकी सहायता करूँगा। वे शरणागत हैं, इसलिए उनको छुडाना मेरा कर्तव्य है।

इसी बीच में नारदजी आकाश की राह से कृष्णचन्द्र की सेवा में उपस्थित हुए। नारद ने कृष्ण से कहा—मैं हस्तिनापुर से युधिष्ठिर का सन्देश लेकर आया हूँ। वह पृथ्वीमण्डल के सभी राजों को जीतकर राजसूय नाम का महायज्ञ करनेवाले हैं। उसमें शामिल होने के लिए आपको बुलाया है। आपके बिना गये उनका यज्ञ पूरा न होगा।

नारद के ये बचन सुनकर भगवान् ने उद्धव से कहा—देखिए, ये दोनो काम बहुत ज़रूरी हैं। शरणागत राजों की रक्षा करना भी मेरा पहला कर्तव्य है और युधिष्ठिर के यज्ञ में गये बिना भी काम नहीं चल सकता। तुम बुद्धिमान् और बड़े चतुर हो। बतलाओ, पहले मुझे किधर जाना चाहिए?

उद्धव ने कहा—मेरी समझ में आप पहले हस्तिनापुर पधारिए। युधिष्ठिर पहले दिग्विजय में सब राजों को जीत लेंगे, तभी उनका यज्ञ पूरा होगा। उसी दिग्विजय में जरासन्ध भी मारा जायगा। देखिए, जरासंध के दस हजार हाथियों का बल है। वह गदा लेकर लड़ता है। गदायुद्ध में महाबली भीमसेन ही उसका सामना कर सकते हैं। उन्हीं के हाथ से वह मारा जायगा। जरासन्ध जब पैदा हुआ था, तब बीच से उसके शरीर के दो टुकड़े थे। उसे मुर्दा देखकर माता ने घूरे पर फिकवा दिया था। उधर से जरा राक्षसी निकली। उसने वे दोनों टुकड़े जोड़कर उसे जिला दिया। इसी से उसका नाम जरासन्ध पड़ा। जरासन्ध को जरा राक्षसी का वरदान है। वह किसी शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। जो उसे अपने क़ाबू में करके बीच से उसके शरीर को फाड़ डालेगा, वही उसको मार सकेगा। मुझे विश्वास है, भीमसेन आपकी सहायता से ऐसा कर सकेंगे।

कृष्णचन्द्र ने उद्धव की बड़ी बड़ाई की और पहले हस्तिनापुर जाने का ही विचार कर उस ब्राह्मण से बोले—विप्रदेव, तुम सब राजों से जाकर कहो, वे डरें नहीं। मैं आकर जल्दी ही जरासन्ध को मारूँगा और उन्हें कष्ट से छुड़ाऊँगा।

इधर भगवान् कृष्णचन्द्र उस ब्राह्मण को विदाकर हस्तिनापुर की ओर चल दिये। उनके

साथ सब रानियाँ, लड़के और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वीर यादव भी गये। युधिष्ठिर ने कृष्ण का खूब स्वागत किया। इसके बाद जब यज्ञ की सब सामग्री इकट्ठी हो गई, तब युधिष्ठिर ने कृष्ण की सलाह से अपने भाइयों को इस तरह चारो दिशाओं में दिग्विजय करने के लिए भेजा। सञ्जय देश के राजों के साथ सहदेव दक्षिण दिशा जीतने गये। मत्स्य देश के राजों के साथ नकुल पश्चिम दिशा जीतने गये। केकय देश के राजों के साथ अर्जुन उत्तर दिशा जीतने गये। मद्र देश के राजों के साथ भीमसेन पूर्व दिशा जीतने गये। राजा युधिष्ठिर के चारो भाई अपने पराक्रम से चारो ओर के सब नरेशों को जीत आये। केवल जरासन्ध नहीं जीता जा सका। यह सुनकर युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई।

युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा—मेरा मनोरथ सफल होता नहीं देख पड़ता; क्योंकि जरासन्ध को जीतना असम्भव जान पड़ता है। अब मैं क्या करूँ? यज्ञ अगर न हो सका तो मेरी और आपकी भी बड़ी हँसी होगी।

यह सुनकर कृष्ण ने कहा—आप घबराइए नहीं। इसका उपाय मैं अभी करता हूँ। यों कहकर कृष्णचन्द्र ने केवल अर्जुन और भीमसेन को अपने साथ लिया और ये ही तीनों जने मगध देश को चल दिये। ये तीनो वीर ब्राह्मण का वेष बनाकर राजा जरासन्ध के घर पर पहुँचे। जरासन्ध ब्राह्मणों का बड़ा भक्त था और कभी किसी ब्राह्मण को खाली हाथ नहीं लौटाता था। जरासन्ध ने इन तीनो वीरों को बड़े आदर से बिठाया और स्वागत-सत्कार करके इनके आने का कारण पूछा। अतिथि जानकर इनसे भोजन करने के लिए कहा; क्योंकि ये दोपहर से कुछ पहले अतिथि के आने के समय में ही पहुँचे थे।

मनो०—पिताजी, अतिथि किसे कहते हैं?

बना०—बेटा, अतिथि और अभ्यागत, दो होते हैं। जो जान-पहचान का आदमी अपने पास आजाय, उसे अभ्यागत या मेहमान कहते हैं और जो अपरिचित नया आदमी किसी इच्छा से आ जाता है, वह अतिथि कहलाता है।

मनो०—समझ गया। अच्छा, फिर क्या हुआ?

बना०—जरासन्ध ने जब भोजन करने के लिए आग्रह किया, तब भगवान् कृष्णचन्द्र ने कहा—महाप्रतापी मगधराज, हम आशा लगाकर कुछ माँगने के लिए आपके पास बहुत दूर से आये हैं। हम आप के अतिथि हैं। हमें आशा है, आप हमारी इच्छा के अनुसार हम जो माँगेंगे, वह अवश्य देंगे। पहले आप देने का वादा करें तो हम बतलावें। अगर आप यह कहें

कि विना जाने मैं देने का वादा कैसे कर सकता हूँ तो हमारा कहना यह है कि दानी, उदार लोग माँगने से याचक को अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपने प्राण तक दे देते हैं। रह गया भोजन, सो हम अपने हाथ की बनी रसोई ही खाते हैं।

जरासन्ध भी बड़ा चतुर था। उसने इनकी आवाज, डीलडौल और कलाइयों में पड़े हुए धनुष की डोरी के घट्टों को देखकर भाँप लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, वेष बदले हुए क्षत्रिय हैं। उसे यह भी जान पड़ा कि इन तीनों को मैंने कहीं देखा है। फिर भी उसने अपने मन में कहा, मैं इनको विमुख नहीं करूँगा; क्योंकि ये अतिथि होकर आये हैं। अधिक से अधिक मेरा राज्य या प्राण ही तो माँग लेंगे। राजा वलि यह जानते थे कि विष्णु वामन का रूप रखकर मेरा राज्य माँगने आये हैं। उनके गुरु शुक्राचार्य ने उनको रोका भी। लेकिन वलि ने जान-बूझकर
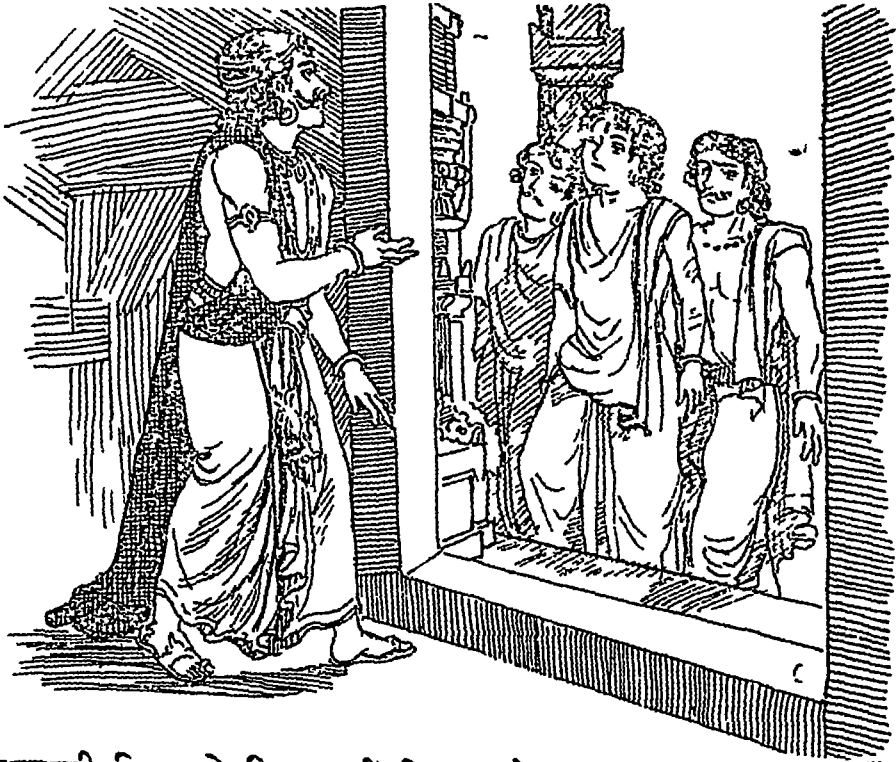
अपने शत्रु वामनरूपी विष्णु को विमुख नहीं किया। मैं भी इनको विमुख नहीं करूँगा, जो कुछ माँगेंगे, वही दूँगा।

यह सोचकर जरासन्ध ने कहा—हे विप्रवर, तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो। मैं तुमको वही दूँगा।

तब कृष्णचन्द्र ने कहा—शाबास मगधनरेश! सचमुच तुम बड़े उदार और दानी हो।

हमने जैसी तुम्हारी तारीफ सुनी थी, वैसा ही तुमको पाया। अच्छा तो सुनो। हम ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। हम तुमसे युद्ध की भिक्षा माँगने आये हैं। हम तीनों में से जिसके साथ चाहो, युद्ध करो। देखो, यह कुन्ती के पुत्र भीमसेन और अर्जुन हैं और मैं इनके मामा का लड़का और तुम्हारा पुराना शत्रु कृष्ण हूँ।

यह सुनकर जरासन्ध हँसा और फिर यों कहने लगा—बड़ी भारी सेना लेकर जब न जीत पाये तो इस तरह छल करने आये! अच्छी बात है। द्वन्द्व युद्ध करके भी अपना जी भर लो। मगर कृष्ण, तुम तो कायर और भगोड़े हो; मेरे डर से मथुरापुरी छोड़कर तुमने इतनी दूर द्वारकापुरी बसाई है। यह अर्जुन भी बल में मुझ से कम और अवस्था में मुझसे छोटा है। हाँ, भीमसेन ऐसे हैं, जिनसे मैं लड़ सकता हूँ।

यों कहकर जरासन्ध ने एक भारी गदा भीमसेन को दी और अपनी गदा लेकर अखाड़े में उतर पड़ा। दोनो वीर पैंतरे बदल-बदलकर लड़ने और एक दूसरे पर मौका देख-देखकर चोटें करने लगे। दोनो ही वीर बल में और गदा-युद्ध की जानकारी में बराबर थे। मगर दम में जरासन्ध भीमसेन से बढ़ा हुआ था। सत्ताईस दिन तक दोनों में गदा-युद्ध हुआ। दिन को लड़ते और रात को विश्राम करते थे। सत्ताईसवें दिन रात को जब भीमसेन कृष्ण के पास लेटे तो उन्होंने कहा—कृष्णचन्द्र, मेरी तो हिम्मत टूट गई! मैं युद्ध में जरासन्ध को जीत नहीं सकूँगा। कृष्ण ने भीमसेन के शरीर पर हाथ फेरकर उनकी सारी थकन दूर कर दी और फिर अपनी शक्ति और तेज भी उनके शरीर में भर दिया।

भीमसेन से कृष्ण ने कहा—घबराओ नहीं, कल ही फैसला हो जायगा। तुम जरासन्ध को जीत लोगे।

दूसरे दिन फिर प्रचण्ड युद्ध होने लगा। एक बार भीमसेन ने गदा का वार बड़े वेग से किया। जरासन्ध ने उस वार को अपनी गदा पर रोका। बड़े जोर की आवाज हुई और दोनों गदाएँ टूट गईं। अब दोनों वीर घूँसेबाजी करने लगे। कुछ देर बाद दोनों लिपटकर कुश्ती लड़ने लगे। इस कला में भी जरासन्ध भीमसेन से कम न था। कृष्णचन्द्र ने देखा, भीमसेन का दम थोड़ी देर में फूल जायगा। तब उन्होंने एक तिनका उठाकर भीमसेन को दिखाकर उसे बीच से चीर दिया। यह एक इशारा था। भीमसेन समझ गये। अब की उन्होंने पूरा जोर लगाकर हमला किया और जरासन्ध को नीचे पकड़ लाये। इसके बाद जरासन्ध का एक पैर अपने पैर से दबाकर दूसरा पैर हाथ से पकड़कर उसके शरीर को बीच से फाड़ डाला।

जरासन्ध की मृत्यु हुई देखकर सब प्रजा हाहाकार करने लगी। कृष्ण और अर्जुन ने भीमसेन की पीठ ठोंकी और उन्हें गले से लगा लिया। इसके बाद जरासन्ध का पुत्र सहदेव भगवान् की शरण में आया। कृष्ण ने उसी समय उसे अभयदान करके मगध की राजगद्दी पर बिठा दिया। फिर भगवान् गिरिव्रज के क़िले में शरणागत राजों को छुड़ाने गये। वहाँ २० हजार ८०० राजा बड़ी दुर्दशा में पड़े हुए थे। उनके बाल बढ़े हुए थे, शरीर पर ढेरों मैल जम गया था, फटे-पुराने कपड़े पहने थे। कृष्ण ने उन सबको क़ैद से छुडाया। वे सब भगवान् की महिमा गाते हुए अपने-अपने देश को गये। कृष्णचन्द्र भी अर्जुन और भीमसेन के साथ लौटकर हस्तिनापुर पहुँचे। जरासन्ध के मरने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। इसके लिए वह कृष्णचन्द्र के बड़े कृतज्ञ हुए।

इसके बाद शुभ मुहूर्त्त में युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। यज्ञ बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। यज्ञ में सब देवता, सब देशों के राजा और सभी ऋषि-मुनि आये। यज्ञ जब समाप्त हो गया, तब प्रश्न उपस्थित हुआ कि यहाँ पर संसार के सभी श्रेष्ठ पुरुष मौजूद हैं। इनमें पहले पूजा पाने का अधिकारी कौन है? यज्ञ के अन्त में सबसे श्रेष्ठ पुरुष के पहले तिलक किया जाता है, माला पहनाई जाती है, भेंट दी जाती है। इसे अग्रपूजा कहते हैं। इसके बाद और सब उपस्थित लोगों का तिलक-माला-भेंट आदि से सत्कार किया जाता है।

जब बड़ी देर हो गई और यह समस्या हल न हुई, तब जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने कहा—आप लोग समझदार और चतुर होकर भी अब तक क्या सोच-विचार रहे हैं? भगवान् कृष्णचन्द्र के आगे और कौन अग्रपूजा पाने का अधिकारी हो सकता है? विद्या में, बुद्धि में, बल में, श्रेष्ठ गुणों में, तेज में आज इनके समान पृथ्वीतल में ही नहीं, तीनो लोकों में और कौन है? इसलिए मेरी राय में इन्हीं की सबसे पहले पूजा करनी चाहिए।

सहदेव के इस कथन का सभी ने समर्थन किया। जितने बड़े लोग वहाँ मौजूद थे, सभी सहदेव की तारीफ़ करने लगे। युधिष्ठिर ने जब देखा कि सभा में उपस्थित लगभग सभी लोगों की राय यही है तो उन्होंने बडी प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ कृष्णचन्द्र के तिलक लगाया, माला पहनाई और अनमोल वस्त्र, आभूषण आदि अर्पण किये। इस प्रकार कृष्णचन्द्र का सम्मान होते देखकर उनका परमशत्रु शिशुपाल क्रोध से लाल हो गया। शिशुपाल पहले से ही कृष्ण का वैरी था, उस पर रुक्मिणी को जब से कृष्णचन्द्र हर ले गये थे, तब से तो वह घोर शत्रुता

रखने लगा था। इस समय शिशुपाल आपे से बाहर हो गया और भरी सभा में खड़े होकर इस तरह कृष्ण को गालियाँ देने और अनाप-शनाप बकने लगा।

शिशुपाल ने कहा—कैसे अचरज की बात है! एक नासमझ बालक के कहने में आकर

ये सब बड़े-बूढ़े भी चुपचाप बैठे हैं और यह अनर्थ हो रहा है। यह कुल-कलङ्क कृष्ण कैसे पूजनीय हो सकता है? इतने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, देवता और राजा यहाँ बैठे हैं, उनके आगे इसकी पूजा करना सारी सभा का अपमान करना है।

शिशुपाल ने इस तरह सैकड़ों ऐसी बातें कहीं, कृष्ण को गालियाँ दीं और उनकी निन्दा की, जिनको ज़बान पर लाना भी महापाप है। सभा में बैठे हुए सज्जनों ने कानों में उँगली दे ली और कुछ लोग उठकर चल भी दिये। कृष्णकी निन्दा सुनकर अनेक राजा और युधिष्ठिर के चारो भाई शस्त्र लेकर उसे मारने के लिए दौड़ पड़े। शिशुपाल भी ढाल-तलवार लेकर उनसे लड़ने को तैयार हो गया। मगर भगवान् ने सबको इशारे से रोक दिया। शिशुपाल जब सौ गालियाँ दे चुका, तब कृष्णचन्द्र ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकली और सबके देखते वह कृष्ण में आकर लीन हो गई।

इस तरह शिशुपाल ने उत्तम गति पाई। असल में शिशुपाल और दन्तवक्र विष्णु भगवान् के पार्षद थे। इनका नाम जय और विजय था। एक समय वैकुण्ठ में भगवान् के दर्शन करने के लिए ब्रह्मा के बेटे सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार गये थे। ये चारो परमहंस हैं, नंगे रहते हैं और देखने में पाँच वर्ष के बालक जान पडते हैं। जय-विजय ने उन्हें बालक जानकर ड्योढी पर ही रोक दिया। मुनियों ने क्रोध करके उन्हें शाप दे दिया। उसी शाप से इनके तीन जन्म हुए। पहले ये हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम के दैत्य हुए। तब भगवान् ने नृसिंह और वाराह अवतार लेकर इनको मारा। दूसरे जन्म में ये रावण और कुम्भकर्ण हुए और भगवान् ने रामचन्द्र का अवतार लेकर इनको मारा। यह इनका तीसरा जन्म था। अब की मरकर ये शाप से छुटकारा पा गये। जय-विजय ने भगवान् से यही प्रार्थना की थी कि हम आपसे वैरभाव ही रक्खें; क्योंकि वैरभाव में वैरी का हर घड़ी ध्यान रहता है, इसलिए हम सदा आपका ध्यान रक्खेंगे।

मनो०—पिताजी, भगवान् को जब शिशुपाल को मारना ही था, तो उन्होंने उसकी सौ गालियाँ क्यों सुन लीं? पहले ही क्यों नहीं मार डाला?

बना०—शिशुपाल कृष्ण की बुआ का लड़का था। जब वह पैदा हुआ तो उसके तीन आँखें और चार हाथ थे। यह देखकर माता घबराई। तब आकाशवाणी हुई कि जिसकी गोद में जाने से इस बालक के दो हाथ और एक आँख गायब हो जायगी, उसी के हाथ से यह मारा जायगा। माता सभी की गोद में बच्चे को देने लगी। जब कृष्ण ने उसे गोद में लिया तब उसके दो हाथ और एक आँख गायब हो गई। तब बुआ ने कहा—यह तुम्हारा फुफेरा भाई है; तुम इसे न मारना। कृष्ण ने कहा—इसकी सौ गालियाँ तक मैं सुन लूँगा। उसके बाद जरूर इसे मार डालूँगा। इसीसे कृष्णचन्द्र ने सौ गालियाँ चुपचाप सुन लीं और उसके बाद शिशुपाल को मार डाला।

इस तरह राजसूय यज्ञ करके राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के एकच्छत्र सम्राट् हो गये। कृष्ण की सहायता और कृपा से राजा युधिष्ठिर का ऐश्वर्य बढ़ते देखकर दुष्ट दुर्योधन पाण्डवों से और भी जलने लगा। युधिष्ठिर की प्रार्थना से श्रीकृष्ण भगवान् कुछ दिन और हस्तिनापुर में ठहर गये। उन्होंने साम्ब, प्रद्युम्न आदि यादवों को द्वारका भेज दिया।

कृष्ण से वैर रखनेवाला शाल्व नाम का एक राजा था। वह शिशुपाल और जरासन्ध आदि का मित्र था। रुक्मिणी के ब्याह में वह भी शिशुपाल की बरात में गया था। वहाँ यादवों से

शिशुपाल-वध

हार जाने पर उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं यादवों का विनाश किये विना न मानूँगा। यह प्रतिज्ञा करके वह भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने लगा। शंकर ने उसकी तपस्या से प्रसन्न हो प्रकट होकर कहा—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो। शाल्व ने शंकर से कहा—अगर आप प्रसन्न हैं तो मुझे एक ऐसा विमान दीजिए, जो जल, थल और आकाश, सब जगह जा सकता हो और जिसे कोई भी नष्ट न कर सके। भगवान् ने मयासुर को आज्ञा दी। उसने शाल्व के लिए एक लोहे का ऐसा ही विमान बना दिया। उस विमान का नाम सौभ था। जब शाल्व चाहता, तब वह विमान छिप जाता था। उस विमान को पाकर शाल्व ने समझ लिया कि अब मुझको कोई न जीत सकेगा।

इधर शाल्व को जब यह मालूम हुआ कि कृष्णचन्द्र द्वारका में नहीं हैं, हस्तिनापुर गये हैं, तब वह बदला लेने की इच्छा से द्वारकापुरी में जा पहुँचा। शाल्व के साथ सेना भी बहुत थी। उसने आकर द्वारका को चारो ओर से घेर लिया। उसकी सेना द्वारका के बाग, महल, चहारदीवारी आदि को नष्ट-भ्रष्ट करने लगी। शाल्व अपनी माया के जोर से द्वारकापुरी पर विमान के ऊपर से अस्त्र-शस्त्र, बड़े-बड़े पत्थर, वज्र और बड़े-बड़े भयंकर साँप बरसाने लगा। उसकी माया से प्रचण्ड आँधी चलने लगी और धूल से चारो ओर अँधेरा छा गया। द्वारका में रहनेवाली प्रजा घबरा उठी।

यह उत्पात देखकर कृष्ण के पुत्र महारथी प्रद्युम्न कवच पहनकर रथ पर सवार हुए और शाल्व से लड़ने के लिए नगरी के बाहर निकले। उनके साथ साम्ब, सात्यकी, अक्रूर आदि यादव और बहुत सी सेना भी थी। अमृत के लिए पहले जैसे देवतों और दैत्यों में युद्ध हुआ था, वैसे ही दोनो दलों में घमासान लड़ाई होने लगी। उस युद्ध को देखकर कायरों के रोंगटे खड़े हो गये। जैसे सूर्य अपने तेज से कोहरे को काट देते हैं, वैसे ही प्रद्युम्न ने अपने दिव्य अस्त्रों से शाल्व की सब मायाओं को मिटा दिया। शाल्व अपने विमान सहित आकाश में छिप गया और छिपकर प्रद्युम्न पर वार करने लगा। शाल्व के मंत्री द्युमान् से अब प्रद्युम्न का युद्ध होने लगा। द्युमान् ने लड़ते-लड़ते एक गदा का वार किया, जिससे प्रद्युम्न को मूर्च्छा आ गई। तब प्रद्युम्न का सारथी रथ हाँककर प्रद्युम्न को रणभूमि से हटा ले गया। थोड़ी देर में जब प्रद्युम्न को होश आया तो अपने को रणभूमि में न पाकर प्रद्युम्न ने सारथी को बहुत डाँटा। कहा—अरे सारथी, तू मुझे रण से हटा लाया, यह तूने अच्छा नहीं किया। शत्रु मुझे भागा हुआ समझकर हँसेंगे। यादवों में से कभी किसी ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई। मैं अपने पूज्य पिता को कैसे मुँह दिखाऊँगा?

इस पर सारथी ने कहा—हे वीर, सारथी का धर्म है कि वह ऐसे अवसर पर योद्धा की रक्षा करे। इसीलिए मैंने ऐसा किया। तब प्रद्युम्न फिर रथ हँकवाकर युद्ध भूमि में पहुँच गये। जाते ही उन्होंने शाल्व के मंत्री को मार डाला। उस समय क्रोध के मारे उनका मुँह लाल हो रहा था। यह लड़ाई लगातार सात दिन और सात रात होती रही। उधर श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने योग-बल से जान लिया कि शाल्व ने द्वारका पर चढ़ाई की है। इसलिए वह तुरन्त युधिष्ठिर से विदा होकर तेजी के साथ द्वारका पहुँचे। भगवान् के गरुड़ध्वज रथ को देखकर और पांचजन्य शङ्ख का शब्द सुनकर वीर यादवों के जैसे जान आ गई। वे जोर से सिंहनाद करने लगे। कृष्णचन्द्र को सामने देखकर शाल्व उनके सामने आकर कहने लगा—अरे यादव, तू मेरे मित्र शिशुपाल की स्त्री को धोखा देकर हर लाया और मेरे कई मित्रों को भी मार चुका है। मगर अब मेरे सामने से जिंदा नहीं लौट सकता। इतना कहकर उसने भगवान् की छाती में कई पैने बाण मारे। कृष्णचन्द्र ने कहा—अरे मूढ़, वीर लोग वृथा की बकबक नहीं करते, वे कुछ करके दिखलाते हैं। अगर तुझ में कुछ बल और साहस है तो मैं तेरे सामने खड़ा हूँ। यों कहकर कृष्ण ने गदा का प्रहार किया। गदा की चोट से शाल्व काँप उठा, उसके मुँह से खून बहने लगा।

शाल्व ने तब माया प्रकट की। वह आकाश में जाकर गायब हो गया। थोड़ी देर के बाद एक पुरुष कृष्ण के पास आकर कहने लगा—स्वामी, देवी देवकी ने मुझे आपके पास भेजा है। आपके पिता वसुदेव को दुष्ट शाल्व पकड़-कर ले गया है।

असल में यह सब शाल्व की माया थी। भगवान् कुछ चिन्ता में पड़ गये। इतने ही में शाल्व वसुदेव को पकड़े हुए सामने देख पड़ा। वह कृष्ण

से कहने लगा—देख, मैं तेरे पिता की हत्या करता हूँ; शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर। भगवान् ने सोचा, यह हो नहीं सकता। बलभद्रजी द्वारका की रक्षा कर रहे हैं। उनको जीते बिना कोई पिता को पकड़ नहीं सकता। और उनको भला यह शाल्व क्या हरा सकता है। असल में यह इस दुष्ट की माया है।

यह विचारकर भगवान् ने सुदर्शन चक्र चलाया, जिसने शाल्व का सिर काट डाला और उसके विमान को भी नष्ट कर दिया। शाल्व के मारे जाने पर सब यादव बहुत प्रसन्न हुए और कृष्णचन्द्र की जय-जयकार करने लगे। शाल्व के मित्र दन्तवक्र ने जब अपने मित्र के मरने का समाचार सुना तो वह भी क्रोध करके द्वारका में पहुँचा। कृष्णचन्द्र ने उसे भी क्षणभर में ठिकाने लगा दिया। बस, आज यहीं पर विश्राम है। कल आगे की कथा सुनना।

बलदेवजी को जब यह मालूम हुआ कि कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होनेवाला है, तब वह

तीर्थ यात्रा के बहाने टल गये। वह नहीं चाहते थे कि यह युद्ध हो। कारण, उनके लिए पाण्डव और कौरव, दोनो बराबर थे। दुर्योधन उनका प्रिय शिष्य था और पाण्डव उनकी बुआ

के लड़के थे। वह किसी का पक्ष लेकर लड़ नहीं सकते थे। बलदेव ने पहले प्रभास तीर्थ में जाकर स्नान किया और अनेक दान दिये। वहाँ से वह सरस्वती नदी में स्नान करने गये। उनके साथ अनेक श्रेष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण थे। फिर वह क्रम से पृथूदक, बिंदुसरोवर, त्रित-कूप, सुदर्शन-नद, विशाला नदी, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ आदि भारत के श्रेष्ठ तीर्थों में होते हुए नीमखार-मिसरिख में पहुँचे। वहाँ शौनक आदि अट्ठासी हजार ऋषि महायज्ञ कर रहे थे और सूत के मुख से पुराणों की कथा सुन रहे थे। बलभद्र को देखकर सब ऋषि-मुनि अपने आसनों से उठ खड़े हुए; पर व्यासगद्दी पर बैठे हुए रोमहर्षण सूत नहीं उठे। इतना ही नहीं, उन्होंने न प्रणाम किया और न हाथ जोड़े। ब्राह्मण सब नीचे बैठे थे और सूतजी ऊँचे आसन पर। यह देखकर बलदेवजी को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने सूत को मार डाला। यह एक होनी की बात है। बलभद्र ने शस्त्र का त्याग कर दिया था और तीर्थयात्रा करने के लिए निकले थे। ऐसी दशा में क्रोध न करना ही उन्हें उचित था। इसके सिवा सूत ने बलदेव का अपमान करने के लिए यह आचरण नहीं किया था। वह व्यास के आसन पर बैठे थे, इसीलिए सूत होकर भी ब्राह्मणों से ऊँचे पर उनका आसन उचित था और बलदेवजी को देखकर उनका बैठे रहना और हाथ न जोड़ना भी कुछ अनुचित न था। परन्तु बलदेवजी के हाथ से उनकी मौत बदी थी, इसीलिए एकाएक ऐसी दुर्घटना हो गई। सूत की मृत्यु से ऋषियों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने बलभद्र से कहा—आपने यह क्या कर डाला? सूत को हमने व्यास की गद्दी पर बिठलाया था। इनका वध ब्राह्मण की हत्या के समान महापाप है। इसमें सन्देह नहीं कि आप ईश्वर का अंश हैं, इसलिए आपको पाप-पुण्य का कोई बन्धन नही है; फिर भी धर्मशास्त्र की मर्यादा रखने के लिए आपको इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए।

बलभद्रजी ने कहा—इसमें सन्देह नहीं कि मैंने अधिक विचार किये बिना जो कुछ कर डाला है, उसका प्रायश्चित्त भी अवश्य करूँगा। आप मुझे प्रायश्चित्त बतलाइए। इसके सिवा अगर आप लोग चाहें तो मैं सूत को अभी जिला दूँ। यह सुनकर ऋषियों ने कहा—हम यह चाहते हैं कि जिसमें आपका अस्त्र निष्फल न हो, मौत का पराक्रम भी वृथा न हो और हमने यज्ञ के आरम्भ में सूत को जो आशीर्वाद दिया था कि जब तक हमारा यज्ञ समाप्त न हो तब तक तुमको मृत्यु और रोग का भय न हो, वह आशीर्वाद भी झूठा न हो, ऐसा उपाय कीजिए। बलभद्र ने कहा—वेद में कहा है कि जीव आपही पुत्र के रूप से फिर जन्म लेता है। इसलिए रोमहर्षण सूत का पुत्र उग्रश्रवा इस गद्दी पर बैठकर आप लोगों को पुराण और शास्त्र सुनावेगा।

आप लोगों के आशीर्वाद के अनुसार उसको बड़ी आयु, बल और बिना पढ़े ही सब पुराणों और शास्त्रों का ज्ञान होगा। अब बतलाइए, आप लोग और क्या चाहते हैं? मुझे क्या प्रायश्चित्त करना चाहिए, यह भी कहिए।

ऋषियों ने कहा—बलदेवजी, इल्वल दानव का बेटा बल्वल बड़ा पापी है। जब हम यज्ञ करते हैं, तभी वह आकर विघ्न करता है—रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा, मांस आदि बरसाकर भरमण्ड कर देता है। उसे आप मार डालिए। इसके सिवा साल भर काम-क्रोध-लोभ आदि का त्यागकर, कष्ट सहते हुए भारत भर में घूमकर तीर्थों पर दान और स्नान कीजिए। यही आपकी इस बिना जाने की हुई ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त होगा। हम आपसे पहले ही कह चुके हैं कि सूत जाति वैश्य स्त्री में क्षत्रिय पुरुष से उत्पन्न होने पर भी हमने सूत को व्यासगद्दी पर बिठाया था, इसलिए उसका वध ब्रह्महत्या के ही समान हुआ।

बलदेवजी ने कहा—बहुत अच्छा, मैं आप लोगों की दोनो आज्ञाओं का पालन करूँगा।

इसके बाद बलभद्रजी वहीं ठहर गये। जब यज्ञ का पर्व आया और ऋषियों ने यज्ञ की तैयारी की तो सदा की तरह बल्वल दानव ने उपद्रव शुरू कर दिया। प्रचण्ड आँधी चलने लगी और चारो ओर दुर्गन्ध मच गई। यज्ञशाला में रुधिर आदि अपवित्र चीजें आकाश से बरसने लगीं। थोड़ी देर में भयानक सूरत का वही दानव त्रिशूल हाथ में लिये प्रकट हुआ। उसका रङ्ग बहुत ही काला था। उसके बाल खड़े और ताँबे के रङ्ग के थे। भौंहें टेढ़ी और दाढ़ें बाहर निकली हुई थीं। भगवान् बलभद्र ने अपने शस्त्र हल-मूसल को याद किया। दोनो शस्त्र तुरन्त आ गये। बलदेव ने हल से उस दानव को खींच लिया और मूसल की चोट से चूर-चूर कर डाला। यह देखकर सब ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और बलदेव की स्तुति करने लगे।

ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर बलदेवजी वहाँ से और तीर्थों के लिए चल दिये। वहाँ से वह सरयू नदी जहाँ से निकली हैं, उस तीर्थ में गये। फिर तीर्थराज प्रयाग में जाकर स्नान किया। उधर से गोमती, गण्डकी, सोन, विपाशा आदि नदियों में नहाते हुए गयाधाम में पहुँचे। वहाँ पिण्डदान करके गङ्गासागर में गये। वहाँ से महेन्द्र पर्वत पर जाकर परशुराम के दर्शन किये। फिर दक्षिण में सप्तगोदावरी, वेणा, पम्पा, भीमरथी आदि नदियों में होते हुए श्रीशैल पहाड़ पर पहुँचे। वहाँ शिव और उनके पुत्र स्वामिकार्तिक के दर्शन कर द्रविड़ देश में श्रीवेंकट पर्वत पर गये। श्रीवेंकटेश्वर के दर्शन करके काञ्ची, कावेरी, श्रीरंग आदि पवित्र तीर्थों में पहुँचे। फिर

वहाँ से ऋषभ पर्वत और दक्षिण-मथुरा (मदुरा) होकर सेतुबन्धरामेश्वर के दर्शन किये। फिर कृतमाला और ताम्रपर्णी नदी में नहाकर मलयाचल में गये। वहाँ अगस्त्य मुनि से मिलकर कन्याकुमारी स्थान में गये और दुर्गादेवी के दर्शन किये। वहाँ से फाल्गुण तीर्थ और पञ्चाप्सरस नाम के पवित्र सरोवर में स्नान किया। फिर केरल, त्रिगर्त आदि देशों में होते हुए गोकर्ण क्षेत्र और सूर्पारक क्षेत्र में पहुँचकर शंकर और सूर्य के दर्शन किये। वहाँ से तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या आदि नदियों में स्नान करते हुए दण्डकारण्य होकर सहस्रबाहु राजा की राजधानी माहिष्मती नगरी में पहुँचे। वहाँ पवित्र नर्मदा नदी में स्नान किया। वहाँ से मनुतीर्थ जाकर फिर प्रभास-क्षेत्र में पहुँचे। प्रभास में ब्राह्मणों के मुँह से उन्होंने सुना कि कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई में सब राजा मारे गये। केवल दुर्योधन कौरवों में बच रहा था और भीमसेन से वह गदायुद्ध कर रहा था। उसी समय उस युद्ध को रोकने और अपने शिष्य के प्राण बचाने के लिए बलभद्रजी कुरुक्षेत्र में पहुँचे। उनको देखकर पाँचो पाण्डवों ने, कृष्ण और दुर्योधन ने उनको प्रणाम किया।

बलदेव ने पैंतरे बदलकर गदा हाथ में लिये खड़े हुए दुर्योधन और भीमसेन को देखकर शान्ति की इच्छा से कहा—प्रिय दुर्योधन, और भाई भीमसेन, तुम दोनों बल और वीरता में बराबर हो। मेरी समझ में दुर्योधन दाँवपेच में अधिक हैं और भीमसेन दम में अधिक हैं। इसलिए इस युद्ध में जीत-हार का होना कठिन देख पड़ता है। बस, इस व्यर्थ के युद्ध को रोक दो।

मगर होनी तो कुछ और ही थी। भीमसेन और दुर्योधन एक दूसरे के खून के प्यासे थे।

उन्होंने बलभद्र के कहने पर कुछ ध्यान नहीं दिया। अन्त को अधर्म और अन्याय से जाँघ के नीचे चोट करके जब भीमसेन ने दुर्योधन को गिरा दिया, तब बलदेवजी कोप करके भीमसेन को मारने के लिए झपटे। मगर कृष्ण ने दोनों हाथों से रोककर समझा-बुझाकर उन्हें शान्त कर दिया। वहाँ से तीर्थयात्रा पूरी करके बलदेवजी द्वारकापुरी को लौट गये। अब मैं तुमको सुदामा का चरित्र सुनाता हूँ।

सुदामाजी एक गरीब ब्राह्मण के लड़के थे। लड़कपन में वह और कृष्णचन्द्र एकसाथ गुरुकुल में रहकर पढे थे। सुदामाजी बड़े शान्त स्वभाव के, सन्तोषी ब्राह्मण थे। उनके मन में सुख-भोग की चाह नहीं थी। जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता था, वही खाकर पड़ रहते थे। कभी-कभी फॉके की नौबत आ जाती थी। तब भी वह सन्तुष्ट ही दिखाई पड़ते थे। उनकी स्त्री भी वैसी ही पतिव्रता और सन्तोषी थी। अक्सर ऐसा होता था कि जो कुछ दूसरे-चौथे अन्न भिक्षा से मिल जाता था, वह पति को खिलाकर बेचारी भूखी ही रह जाती थी। मगर वह कभी पति से इसके लिए कुछ न कहती थी।

एक दिन उसने डरते-डरते पति के पास जाकर कहा—नाथ, मैंने आपके ही मुख से अनेक बार सुना है कि श्रीकृष्ण भगवान् आपके मित्र हैं। स्वामी, वह तो साक्षात् लक्ष्मी के पति भगवान् हैं। उनके एक ही कृपाकटाक्ष से आप निहाल हो सकते हैं। वह शरणागत भक्तों की सदा सुध लेते हैं। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आप एकबार उनसे मिलकर अपने कष्ट का हाल सुनाइए। वह अवश्य आपकी सहायता करेंगे।

सुदामा ने कहा—प्रिये, तुम मुझसे कृष्णचन्द्र के पास तुच्छ अन्न-वस्त्र माँगने के लिए जाने को कहती हो! मगर मैं इसे ठीक नहीं समझता। ब्राह्मण का धन सन्तोष ही है। जो कुछ मेरे भाग्य में बदा है, वह मुझे मिलना है। भाग्य के भोग को भगवान् भी नहीं टाल सकते।

इस तरह कहकर उस दिन सुदामा ने टाल दिया। लेकिन उनकी स्त्री जब अधिक खाने-पीने का कष्ट होता था, तभी उनसे द्वारका जाने के लिए कहती थी। एक बार जाड़े के दिनों में वस्त्र की कमी के कारण सिमियाती और भूख-प्यास की सताई हुई स्त्री सुदामा के पास आकर रोने लगी। उसने कहा—नाथ, आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देते और व्यर्थ ही यह कष्ट उठा रहे हैं। मुझे अपने कष्ट का उतना खयाल नहीं है, जितना आपके कष्ट का। आपका तो वही हाल है कि पास ही निर्मल जल भरा हुआ है और आप आलस्य और सङ्कोच

के मारे उनके पास तक नहीं जाते और प्यासे मर रहे हैं। आप एक बार अपने मित्र द्वारकाधीश से मिल तो आइए।

अब की सुदामा पर पत्नी के कहने का कुछ असर हुआ। उन्होंने कहा—तुम कहती हो तो मैं जाने के लिए तैयार हूँ। मगर यह कहे देता हूँ कि अपने मुँह से कुछ माँगूँगा नहीं। वह अन्तर्यामी हैं, सबके मन की जानते हैं। अगर मेरी दशा देखकर उन्हें कुछ दया आ गई और उन्होंने कुछ दे दिया तो दूसरी बात है।

स्त्री ने कहा—अच्छी बात है। आप जाइए तो सही।

सुदामा ने कुछ सोचकर फिर कहा—कृष्णचन्द्र महाराज हैं। उनके पास खाली हाथ जाना तो ठीक नहीं। भेंट के लिए कोई चीज जरूर होनी चाहिए।

स्त्री ने कहा—घर में तो कुछ है नहीं। ठहरो, परोसिन से माँगकर कुछ लिये आती हूँ।

इतना कहकर सुदामा की स्त्री पड़ोस से थोड़े चिवड़े माँग लाई और उन्हें एक बहुत पुराने फटे कपड़े के टुकड़े में बाँधकर पति के हाथ में देते हुए कहा—और तो कुछ नहीं मिला, ये चिवड़े मैं माँग लाई हूँ। इन्हें ही ले जाइए। भगवान् तो भाव के भूखे हैं।

सुदामाजी वही चार मुट्ठी चिवड़ों की पोटली बगल में दबाकर कृष्णचन्द्र के दर्शनों के लिए चल दिये। राह में वह यही सोचते जाते थे कि भगवान् कृष्णचन्द्र से कैसे मिल सकूँगा? पहले तो द्वारका तक पहुँचना ही कठिन है। फिर अगर पहुँच भी गया तो उन तक पहुँचना कठिन होगा। बड़े-बड़े राजों को उनके दर्शन दुर्लभ हैं, मैं तो एक गरीब ब्राह्मण हूँ।

यों सोचते, राह पूछते-पूछते सुदामाजी बड़ी मुश्किल से द्वारकापुरी में पहुँच गये। द्वारका में पहुँचकर उसके ऐश्वर्य और शोभा को देखकर वह भौचक्के से खड़े रह गये। चारों ओर बड़े-बड़े महल और राजसी ठाट-बाट थे। सभी नर-नारी राजा और रानी जैसे जान पड़ते थे। सुदामा ने कृष्णचन्द्र का महल पूछा। एक नगरवासी ने उनको महल बता दिया। सुदामा ने महल के फाटक पर पहुँचकर द्वारपाल से कहा कि मैं कृष्णचन्द्र का मित्र हूँ। मेरा नाम सुदामा है। मैं मित्र से मिलना चाहता हूँ। तुम जाकर खबर कर दो। द्वारपाल को यह सुनकर बड़ा अचरज हुआ कि यह गरीब ब्राह्मण कृष्ण का मित्र है। पहले तो उसने सुदामा को पागल समझा और उनकी बातों पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी, लेकिन जब उसके साथी ने कहा कि यह ब्राह्मण हैं और कृष्णचन्द्र ब्राह्मणों को बहुत मानते हैं; अगर यह ब्राह्मण देवता यों ही लौट गये और कृष्णचन्द्र को किसी तरह मालूम हो गया तो फिर हमारी कुशल नहीं; इसलिए जाकर खबर

कर देना ही ठीक है; तब वह द्वारपाल भीतर भगवान् के पास गया और सुदामा के आने की खबर दी।

उस समय भगवान् रुक्मिणी के महल में आराम से लेटे थे और रुक्मिणीजी पैर दबा रही थीं। सुदामा का नाम सुनते ही कृष्णचन्द्र उठ बैठे और उनकी अगवानी के लिए दरवाज़े की ओर दौड़ पड़े। फाटक पर आकर भगवान् ने सुदामा को गले से लगा लिया, और बड़े प्रेम व आदर के साथ उनको भीतर लिवा ले गये। अपने हाथ से सुदामा के पैर धोये और पोंछे। फिर उत्तम आसन पर अपने पास ही उनको बिठा लिया। उत्तम भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से उनका सत्कार किया। जब सुदामा सुस्थ होकर बैठे, तब भगवान् उनसे इस प्रकार कुशल पूछने लगे। कृष्ण ने कहा—मित्र, तुम धर्म के जानने और माननेवाले सन्तोषी ब्राह्मण हो, यह मैं जानता हूँ। यह भी मुझे मालूम है कि संसार के सुखभोग में तुम्हारी रुचि नहीं है और इसीलिए तुम धन कमाने की चेष्टा नहीं करते। अच्छा, यह तो बतलाओ, तुमने विद्या पढ़ने के बाद गुरुकुल से लौटकर अपने योग्य सुन्दरी, अच्छे

गुणोंवाली, अच्छे कुल की कन्या से व्याह किया है या नहीं? ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जहाँ रहकर, गुरु से जानने योग्य धर्म, नीति आदि सब विषयों को पढ़कर अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश में आते हैं, उस गुरुकुल में हम तुम साथ ही रहे हैं। भला कभी उस समय को भी याद करते हो? मित्र, जिससे यह शरीर पैदा होता है, वह पिता पहला गुरु है और उससे श्रेष्ठ

दूसरा गुरु वह है, जो जनेऊ के बाद गायत्री सहित वेद और शास्त्र पढ़ाता है। तीसरा गुरु अपने अन्तःकरण में स्थित अपना ही आत्मा है, जो विवेक सिखलाता और ठीक राह दिखलाता है। मित्र, वह दिन तो तुमको भूला न होगा, जिस दिन गुरुआइन की आज्ञा से हम दोनो जङ्गल में लकड़ी लेने गये थे। उस समय बरसात न होने पर भी एकाएक बादल घिर आये, अँधेरा छा गया और जोर से पानी गिरने लगा। बीच-बीच में जोर-जोर से बिजली की कड़कड़ाहट हृदय को हिला देती थी। नीचे पानी भर जाने से ऊँचा-नीचा कुछ नहीं जान पड़ता था। अँधेरा इतना था कि अपना हाथ भी न सूझता था। ऐसे ही में सूर्य अस्त हो गये। हम दोनो सिर पर लकड़ी के गट्ठे लादे इधर से उधर भटकते रहे। सूर्य के निकलने में कुछ ही देर थी, इसी समय हमारे गुरुदेव हमको खोजते हुए वन में पहुँचे और हमारी यह दुर्दशा देखकर कहने लगे—पुत्रो, तुमने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया। मनुष्य को अपना शरीर और आत्मा सबसे बढ़कर प्यारा होता है, मगर तुमने मेरे लिए आत्मा और शरीर को भी जोखिम में डाल दिया। इस लिए तुम धन्य हो! अच्छे शिष्य का यही कर्तव्य है। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी विद्या सफल हो। इतना कहकर गुरुदेव हम दोनो को साथ लिये अपने आश्रम को गये। मित्र, वे दिन भी कैसे सुख के थे! मुझे विश्वास है, तुम उन दिनों की याद न भूले होगे।

कृष्णचन्द्र के प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर और उनके द्वारा अपना यों आदर-सत्कार होते देखकर सुदामा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मित्रवर, उन दिनों को मैं भला कैसे भूल सकता हूँ, जिन दिनों आपके साथ रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। सचमुच आपकी मित्रता से मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ। नाथ, गृहस्थ आश्रम में मैं बड़े सुख से हूँ। मेरी स्त्री भी बड़ी पतिव्रता और आज्ञा माननेवाली है। आपकी कृपा से मुझे किसी वस्तु की चाह नहीं है, मैं इसी दशा में पूर्ण सन्तुष्ट हूँ।

रुक्मिणीजी खड़ी सुदामा के ऊपर चँवर डुला रही थीं और कृष्णचन्द्र उनकी सेवा कर रहे थे, यह देखकर कृष्णचन्द्र के महल में रहनेवाले सब लोग और दास-दासी अपने मनमें यों कहने लगे—अहो, लक्ष्मी से हीन और समाज में मान न पानेवाले इस गरीब भिखारी ने पहले जन्म में ऐसा कौन पुण्य किया है, जो लक्ष्मीपति भगवान् अपने हाथ से इसकी सेवा और पूजा कर रहे हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा जिनकी सेवा में खड़े रहते हैं, वही हमारे स्वामी इसकी सेवा कर रहे हैं—यह धन्य है।

जब सुदामाजी भोजन करके कृष्णचन्द्र के पास बैठे, तब उन्होंने हँसकर सुदामा से कहा—

भाई, भाभी ने ज़रूर मेरे लिए कुछ भेंट भेजी होगी। तुम उसे देना शायद भूल गये, इसी से मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ।

भगवान् तो सबके मन की जानते हैं। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। उन्होंने जान लिया था कि सुदामा प्रेम के साथ चिवड़े लाये हैं, लेकिन तुच्छ भेंट देने में शरमाते हैं। इसी से उन्होंने खुद माँगा। लेकिन इतने पर भी संकोच के मारे सुदामा ने वह पोटली नहीं निकाली। तब भगवान् ने कहा—भाई कुछ संकोच न करो। भक्त लोग प्रेम के साथ चार चावल भी अगर मुझे चढ़ाते हैं तो मैं उतने ही से सन्तुष्ट हो जाता हूँ। बिना भक्ति के दिये गये राजभोग से भी मैं प्रसन्न नहीं होता।

फिर भी सुदामा ने वह पोटली नहीं निकाली, और संकोच के मारे सिर नीचा कर लिया। भगवान् ने अपने मनमें सोचा, यह मेरे भक्त तो कोई कामना मनमें रखते नहीं, लेकिन इनकी स्त्री ने धन के लिए ही इनको मेरे पास भेजा है। मैं इनको वह सम्पदा दूँगा, जो देवतों को भी नसीब नहीं है। यह सोचकर हँसते हुए कृष्ण ने "यह क्या है ?" कहकर सुदामा की बगल में दबी हुई वह पोटली खींच ली। उसे खोलकर यह कहते हुए भगवान् ने बड़े प्रेम से एक मुट्ठी चिवड़े अपने मुँह में डाल लिये कि यही तो मुझे परमप्रिय भेंट है भाई! ये चावल मुझको और सारे जगत् को तृप्त कर देंगे। दूसरी मुट्ठी जब भगवान् ने भरी, तब पास ही बैठी हुई देवी रुक्मिणी ने हरि का हाथ पकड़ लिया और कहा—स्वामी, बस इतनी ही कृपा काफी है। अब थोड़ा प्रसाद हम लोगों के लिए भी रहने दीजिए। रुक्मिणी का भाव यह था कि इतने चावलों से ही आपने ब्राह्मण को त्रिलोक की लक्ष्मी दे डाली, अब क्या और चावल फाँककर मुझे भी दे डालोगे ?

रुक्मिणी के मन का भाव समझकर भगवान् ने हाथ रोक लिया। उन चिवड़ों को थोड़ा-थोड़ा सभी ने सादर ग्रहण किया। सुदामाजी उस दिन रात को भगवान् के ही महल में सुख-पूर्वक रहे। वहाँ सुदामाजी की ऐसी खातिर हुई कि वह अपने को स्वर्ग में बैठा हुआ समझने लगे। प्रातःकाल उठकर सुदामा ने कृष्ण से विदा माँगी। भगवान् उनके साथ कुछ दूर गये और प्रेमपूर्ण वचन कहकर उनको विदा किया। प्रकट में कृष्णचन्द्र ने सुदामा को कुछ भी नहीं दिया और न उन्होंने ही कृष्ण से कुछ माँगा। सुदामा मन-ही-मन अपनी धन की लालसा पर पछ-ताने और अपने को भला-बुरा कहने लगे। घर जाते समय राह में सुदामा अपने मनमें सोचने लगे—अहो, मैंने ब्राह्मणभक्त भगवान् की ब्राह्मण-भक्ति भली-भाँति देख ली। वह साक्षात् लक्ष्मी

के पति हैं, पर उन्होंने मुझ गरीब ब्राह्मण को आदर से गले लगाया, मेरे पैर धोये, मेरी सेवा की। इसमें संदेह नहीं कि कृष्णचन्द्र ने मुझे कुछ भी धन न देकर बड़ी कृपा की। उन्होंने यही सोचा होगा कि लक्ष्मी पाकर मनुष्य अंधा हो जाता है; धन पाकर यह ब्राह्मण कहीं मुझको न भूल जाय।

इसी तरह मन में सोचते-विचारते और भगवान् की महिमा का बखान करते हुए सुदामाजी ठीक समय पर अपने गाँव में पहुँच गये। सुदामा ने अपने गाँव में पहुँचकर देखा, जिस जगह पर उनकी टूटी-सी झोपड़ी खड़ी थी, वहाँ पर बड़े-बड़े महल खड़े हैं, द्वारका के समान एक भारी नगरी बस गई है। रत्नों से शोभायमान उन महलों के आसपास बड़े-बड़े विचित्र बाग लगे हैं। उन बागों में वृक्षों की डालियों पर अनेक पक्षी अपनी मधुर वाणी से मन को मोह रहे हैं। झोपड़ी की जगह ऐसी पुरी देखकर सुदामा भौचक्के से खड़े रह गये। इतने में पुरी के अनेक नर-नारी सुदामा को देखकर उनका स्वागत करने को दौड़ पड़े। सुदामा की स्त्री अपनी दासियों के साथ महल के बाहर आई और उनको हाथ पकड़कर भीतर ले गई। सुदामा ने देखा, उनका महल श्रीकृष्ण के महल से कम नहीं है। वहाँ बिल्लौर के फ़र्श, सोने चाँदी के काम की दीवारें और रत्नों के खम्भे लगे हैं। पलँग, आसन, मोतियों की झालरें उसकी शोभा बढ़ा रही हैं।

सुदामा समझ गये, यह सब त्रिलोकीनाथ कृष्णचन्द्र की कृपा का फल है। उन्होंने ही एकबारगी उन्हें इतनी सम्पदा का स्वामी बना दिया है। सुदामा ने मन ही मन भगवान् को धन्यवाद दिया। वह सुखपूर्वक उसी सुदामापुरी में रहकर सब ऐश्वर्यों का भोग करने लगे। लेकिन वह भगवान् को नहीं भूले। जन्म भर उसी तरह निर्लिप्त रहकर भगवान् का भजन करते रहे। सचमुच भगवान् भक्तवत्सल हैं। वह पल भर में भक्तों को निहाल कर देते हैं।

एक समय बड़ा भारी सूर्यग्रहण पड़ा। उस ग्रहण में पूरे सूर्य के बिम्ब को राहु ने ग्रस लिया था। राहु को पुराणों में एक दैत्य माना है; लेकिन असल में वह पृथ्वी की छाया है। सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी अपनी-अपनी कक्षा या राह में बराबर चलते रहते हैं। जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है, तब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण पड़ता है। वह परछाईं जितने बिम्ब को ढक लेती है, उतना बिम्ब पृथ्वी के ऊपर से हमें खण्डित-सा देख पड़ता है। जब परछाईं हट जाती है, तब बिम्ब भी पूरा देख पड़ने लगता है। सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में और चन्द्रग्रहण के समय काशी में नहाने और दान करने का बड़ा माहात्म्य शास्त्रों में लिखा है।

गणित से पृथ्वी और सूर्य तथा चन्द्रमा की चाल का हिसाब लगाकर ज्योतिषी लोग पहले ही पत्रे में लिख देते हैं कि इस अमावस को सूर्यग्रहण या इस पूनो को चन्द्रग्रहण होगा। उस साल भी ज्योतिषियों ने पहले ही सूर्यग्रहण का दिन बतला दिया था। इसलिए सारे भारत से बहुत से नर-नारी उस अवसर पर कुरुक्षेत्र में आकर जमा हो गये। कृष्णचन्द्र भी सब यादवों के साथ द्वारकापुरी से वहाँ गये। इधर सब नन्द आदि गोप और गोपियाँ भी पहुँची। हस्तिनापुर से पाण्डव और कौरव भी गये। मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कम्बोज, केकय, मद्र, आनर्त और केरल आदि देशों के राजा भी आकर वहाँ जमा हुए। कुन्ती ने वसुदेव, देवकी और कृष्ण-बलदेव से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। गोप-गोपी और नन्द-यशोदा कृष्ण से मिलकर निहाल हो गये। सब लोग प्रेम से मिले। द्रौपदी और गोपियों के सामने कृष्णचन्द्र की रानियों ने अपने-अपने व्याह का वृत्तान्त बतलाया। कृष्ण के ऊपर रानियों के अनन्य प्रेम को देखकर कुन्ती, द्रौपदी और गोपियाँ मन ही मन उनकी बड़ाई करने लगीं।

यथासमय सूर्यग्रहण हुआ। सबने यथा शक्ति स्नान-दान करके भगवान् का पूजन किया। इसके बाद दो-तीन महीने तक नन्द आदि गोप, पाण्डव और यादव वहीं रहे। इसी बीच में कृष्णचन्द्र के दर्शन करने के लिए वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, परशुराम, वशिष्ठ, गालव, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, ब्रह्मा के पुत्र सनकादिक, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, वामदेव आदि सब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि वहाँ आकर उपस्थित हुए। कृष्णचन्द्र ने सबकी पूजा की, सत्कार किया। कृष्णचन्द्र के दर्शनों से कृतार्थ होकर जब सब ऋषि अपने आश्रमों को जाने लगे, तब वसुदेवजी ने उनके आगे यह इच्छा प्रकट की कि वह यहाँ पर यज्ञ करना चाहते हैं और सब ऋषि लोग उनका यज्ञ सम्पूर्ण कराकर फिर जायँ।

वसुदेवजी की इच्छा पूर्ण करने के लिए सब ऋषि ठहर गये। बड़ी धूमधाम से वसुदेवजी ने कई छोटे बड़े यज्ञ किये। अन्त में उन्होंने सब ऋषियों की पूजा की और उन्हें दक्षिणा में गोदान, भूमिदान, वस्त्र, गहने और रत्न आदि दिये। इसके बाद नन्द आदि गोप और पाण्डव कृष्णचन्द्र से विदा होकर अपने घरों को गये और कृष्णचन्द्र भी यादवों के साथ द्वारकापुरी को पधारे।

कुरुक्षेत्र में सब ऋषियों ने आकर कृष्णचन्द्र की महिमा का वर्णन किया था और वसुदेव व देवकी के सामने ही कृष्णचन्द्र को भगवान् का अवतार कहा था। तब से वसुदेव और देवकी

को इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि उनके पुत्र कृष्णचन्द्र सचमुच परमेश्वर हैं और सब कुछ कर सकते हैं। एक दिन देवकी ने कृष्ण के पास आकर कहा—कृष्ण, तुम मेरे पुत्ररूप से प्रकट हुए हो, इसलिए मैं तो तुमको पुत्र की ही नजर से देखूँगी। मगर मुझको यह पूर्ण विश्वास है कि तुम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हो और हम लोगों के परम पुण्य से तुमने मेरी कोख से जन्म लिया है। मैंने सुना है, तुमने गुरु-दक्षिणा में अपनी गुरुआइन को उनका मरा हुआ पुत्र परलोक से ला दिया था। हे योगेश्वर, मेरे भी छः पुत्र दुष्ट कंस ने मार डाले थे। मैं चाहती हूँ, अपने योगबल से भाइयों को लाकर मुझे दिखा दो।

भगवान् ने हँसकर कहा—माताजी, मैं तो आपका सेवक हूँ। अभी आपकी इच्छा पूरी करने जाता हूँ।

इतना कहकर कृष्णचन्द्र अपने भाई बलराम को साथ लेकर राजा बलि के रहने की जगह सुतल लोक को गये। यह लोक पृथ्वी के नीचे है। राजा बलि अपने इष्टदेव को देखकर आसन से उठ खड़े हुए। उन्होंने कृष्ण-बलराम की पूजा और स्तुति करके कहा—स्वामी, आज आपके दर्शन पाकर मै धन्य हो गया। भगवन्, मुझे आज्ञा दीजिए; आपकी क्या सेवा करूँ?

भगवान् कृष्णचन्द्र ने कहा—हे दैत्यराज, पहले स्वायंभुव मन्वतन्र में ऊर्णा नाम की धर्मपत्नी के गर्भ से मरीचि ऋषि के छः पुत्र हुए थे। ब्रह्माजी को देखकर एक दिन वे हँस पड़े। ब्रह्मा ने उन्हें शाप दे दिया। वे पहले हिरण्यकशिपु के पुत्र असुर हुए। उसके बाद दूसरे जन्म में देवकी के गर्भ से उनका जन्म हुआ और कंस ने उनको मार डाला। वे इस समय तुम्हारे लोक में हैं। माता देवकी उनको देखना चाहती हैं। इसलिए उन्हीं को लेने मैं आया हूँ। माता के देख लेते ही शाप से छुटकारा पाकर वे देवलोक को चले जायँगे।

राजा बलि ने उन बालकों को लाकर हाजिर कर दिया। कृष्णचन्द्र अपने रथ पर बिठाकर उन्हें द्वारका ले आये। देवकी मरे हुए पुत्रों को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद माता से मिलकर और कृष्ण को प्रणाम करके वे बालक आकाशमार्ग से देवलोक को चले गये। अब हम तुमको कृष्ण की बहन सुभद्रा के ब्याह का हाल सुनाते हैं।

एक समय अर्जुन तीर्थयात्रा करने के लिए निकले। प्रभास तीर्थ में पहुँचने पर अर्जुन ने सुना कि कृष्ण की बहन सुभद्रा परमसुन्दरी और वीर रमणी हैं। बलभद्रजी उनका ब्याह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं, लेकिन कृष्णचन्द्र इस विवाह के विरोधी हैं। अर्जुन ने सोचा, सुभद्रा के साथ मैं ब्याह करूँगा। बस, वह संन्यासी का नक़ली वेष बनाकर द्वारकापुरी में पहुँचे।

सुभद्रा को हर ले जाने का मौक़ा ढूँढते हुए वह चौमासे भर वहीं रहे। द्वारकापुरी का कोई आदमी, यहाँ तक कि बलदेवजी भी उनको नहीं पहचान सके। सबने उनको संन्यासी ही समझा। एक दिन बलदेवजी भोजन कराने के लिए अर्जुन को अपने घर ले गये। वहाँ अर्जुन ने सुभद्रा को देखा और सुभद्रा ने अर्जुन को। दोनो को दोनो से प्रेम हो गया। कृष्ण-चन्द्र से कुछ छिपा नहीं था। वह मन ही मन यही चाहते थे कि सुभद्रा का ब्याह अर्जुन से हो—अर्जुन ही उसके योग्य वर हैं।

अर्जुन अब सुभद्रा को ले भागने का अवसर देखने लगे। एक दिन वह मौक़ा भी हाथ लग गया। एक दिन सुभद्रा देव-दर्शन के लिए रथ पर बैठकर महल के बाहर निकलीं। इस बीच में कृष्ण ने अर्जुन से मिलकर उन्हें सुभद्रा को हर ले जाने की आज्ञा दे दी थी। वसुदेव और देवकी की भी राय मिल गई थी। फिर क्या था, अर्जुन राह से ही सुभद्रा को अपने रथ पर बिठाकर और बाधा देनेवाले रक्षकों को मारकर चल दिये। बलदेव ने जब यह ख़बर सुनी तो बहुत बिगड़े। मगर कृष्ण ने समझा-बुझाकर उनको शान्त कर दिया। तब बलदेवजी भी मान गये। उन्होंने पीछे से बहुत से हाथी, घोड़े, रत्न, अलंकार, दास-दासी आदि दहेज के रूप में अर्जुन के पास भेज दिये।

इसके बाद कृष्णचन्द्र ने मिथिलापुरी में अपने भक्त राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण को दर्शन देकर कृतार्थ किया। मिथिला-निवासियों ने कृष्ण के दर्शन पाकर अपने को कृतार्थ समझा। आज यहीं पर विश्राम किये देता हूँ। कल तुमको भस्मासुर के वध की कथा सुनाऊँगा।

राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से पूछा—महाराज, जो लोग भोग की अभिलाषा न रखने-वाले शंकर को भजते हैं, वे प्रायः धनी और सब भोग-ऐश्वर्य से सम्पन्न देख पड़ते हैं। इसके विपरीत जो लोग लक्ष्मी के पति विष्णु की आराधना करते हैं, वे प्रायः गरीब ही नजर आते हैं। यह विपरीत फल मिलने का क्या कारण है?

शुकदेवजी ने राजा से कहा—महाराज, यही प्रश्न युधिष्ठिर ने कृष्णचन्द्र से किया था। इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि हे युधिष्ठिर, मैं जिस पर कृपा करनेवाला होता हूँ, उसको धीरे-धीरे गरीब कर देता हूँ। गरीब को घरवाले और इष्टमित्र सब छोड़ देते हैं। ऐसी हालत में उसे संसार से वैराग्य हो जाता है और तब वह मेरी ओर झुकता है। अन्त में वह संसार के चक्कर से छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। मेरे भक्तों के निर्धन होने का यही कारण है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों भगवान् के रूप हैं। पर इनमें श्रेष्ठ विष्णु ही हैं। इसी

सिलसिले में दो उपाख्यान मैं तुमको सुनाता हूँ। एक शकुनि दानव का लड़का वृकासुर था। उसे भस्मासुर भी कहते थे। वह तप करने के लिए जा रहा था। राह में उसे नारद मुनि मिल गये। उसने प्रणाम करके नारदजी से पूछा—हे मुनिवर, मैं तप करने जा रहा हूँ। कृपा करके यह बताइए कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में जल्दी प्रसन्न होनेवाला कौन है ? मैं उसी की आराधना करूँगा।

नारद ने कहा—भगवान् भोलानाथ महेश ही सबसे जल्दी प्रसन्न होते हैं। तुम उन्हीं की आराधना करो। वह थोड़े ही अपराध से जैसे क्रोध कर बैठते हैं, वैसे ही थोड़ी सेवा करने से ही प्रसन्न भी हो जाते हैं।

वृकासुर ने केदारतीर्थ में जाकर शिव को प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर का मांस काट-काटकर अग्नि में होम करना शुरू कर दिया। सात दिन के बाद भी जब शंकर ने दर्शन नहीं दिये तब वह तलवार लेकर अपना सिर काटकर आहुति देने को तैयार हुआ। उसी समय शंकर ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—मैं तुम्हारा साहस देखकर बहुत प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो, वरदान माँग लो।

तब उस पापी असुर ने सबको भय देनेवाला यह वर माँगा कि मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वही राख का ढेर हो जाय। अब शंकर क्या करते ? वचन दे चुके थे। उन्हें वर देना ही पड़ा। सच है, साँप दूध पिलानेवाले को ही डस लेता है। उस दुष्ट असुर ने यह सोचा कि शंकर के ही सिर पर हाथ रखकर इनको भस्म कर दूँ और पार्वती को हथिया लूँ। यह सोचकर वह दुष्ट शंकर ही के सिर पर हाथ रखने के लिए दौड़ा। उसे अपनी ओर आते देखकर शंकर बहुत घबराये। उन्होंने बिना समझे-बूझे जो उस दुष्ट को ऐसा वरदान दे दिया था, उसके लिए पछताते हुए वह भागे। आगे-आगे शंकर और पीछे पीछे वह दानव ! जहाँ-जहाँ शंकर गये, वहाँ-वहाँ पीछे-पीछे वह दानव भी पहुँचा। अपना बचाव कहीं न होते देखकर शंकर विष्णुलोक को गये। नारायण ने शिव को धीरज दिया और आप योगमायाबल से एक बौने ब्रह्मचारी बनकर उस के आगे उपस्थित हुए।

विष्णु ने वृकासुर से कहा—अरे भाई, तुम पागलों की तरह कहाँ जा रहे हो ? जरा बैठकर सुस्ता लो।

वृकासुर ने ठहरकर सब हाल कह सुनाया। सुनकर भगवान् ठहाका मारकर हँसे। बोले—सचमुच तुम पागल ही हो। शिव भङ्ग पीकर सदा मतवाले बने रहते हैं। कालकूट विष

पीने से उनका दिमाग खराब हो गया है। तुम भी उनकी बात का विश्वास करते हो? मुझे तो विश्वास नहीं। अच्छी बात है, अभी परीक्षा करके देख लो। अपने ही सिर पर हाथ रखकर देखो, शिव की बात बिलकुल झूठ निकलेगी। बस, मैं और तुम, दोनो अभी चलकर उनको झूठ बोलने का दण्ड देंगे।

भगवान् ने ऐसी मीठी वाणी में, हमदर्दी के साथ, ये बातें कहीं कि उस मूर्ख की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उसने जैसे अपने सिर पर हाथ रक्खा, वैसे ही जलकर राख का ढेर होकर गिर पड़ा। इस प्रकार नारायण ने सङ्कट के समय शङ्कर की जान बचाई। सब देवता नारायण की जयजयकार करने लगे।

दूसरी कथा यों है कि एक समय सरस्वती नदी के किनारे बहुत से ऋषि बैठे यज्ञ कर रहे थे। एक समय ऋषिमण्डली में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन श्रेष्ठ है? तब सब ऋषियों ने इसकी परीक्षा लेने के लिए भृगु ऋषि को भेजा। भृगु ब्रह्मा के पुत्र थे। वह सबसे पहले अपने पिता के ही पास गये। भृगु ने परीक्षा लेने के इरादे से ब्रह्माजी को न तो प्रणाम किया और न उनकी स्तुति ही की। इसे अपना अपमान समझकर ब्रह्माजी को क्रोध चढ आया। लेकिन अपने क्रोध को वह पी गये। कारण, भृगु उनके ही लड़के थे—उनको शाप देना ठीक न था। भृगु ने समझ लिया कि यह परीक्षा में फेल हो गये। भृगु वहाँ से चलकर कैलाश पर्वत पर शङ्कर के पास आये। रुद्र भी ब्रह्मा के कोप से उत्पन्न हुए हैं, इस नाते से शङ्कर भृगु के भाई थे। शङ्कर भृगु को देखकर उन्हें गले लगाने के लिए उठे। पर भृगु ने कहा—बस-बस, रहने दो। मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता। तुम मसान की राख लगाये, नङ्गे और बैल पर सवार घूमते हो! तुमसे कौन नाता रक्खेगा? भृगु के ये वचन सुनकर शङ्कर को कोप चढ आया और वह त्रिशूल उठाकर भृगु को मारने दौड़े। तब पार्वती ने पैर पकड़कर शङ्कर को रोक लिया। भृगु वहाँ से वैकुण्ठ लोक में पहुँचे। भगवान् नारायण दिव्य पलँग पर लक्ष्मी की गोद में सिर रक्खे लेटे हुए थे। भृगु ने जाते ही कुछ कहा न सुना, विष्णु की छाती में एक लात मार दी। ब्रह्मण्यदेव भगवान् उसी समय पलँग से उतर पड़े और प्रणाम करके बोले—मुनिवर, क्षमा कीजिए। मुझे आपके आने की खबर नहीं हुई, इसीसे मुझसे यह अपराध बन पड़ा। विराजिए, मैं आपकी सेवा करके अपने को कृतार्थ कर लूँ। यों कहकर भगवान् अपने हाथों से भृगु के पैर को सहलाते हुए कहने लगे—भगवन्, मेरी कठोर छाती में लगने से अवश्य ही आपके कोमल चरण में चोट लगी होगी। यह आपके चरण का

चिह्न मुझे तीनो लोकों में पूजनीय बनावेगा। इस चिह्न को हृदय में धारण करके मैं धन्य हो गया।

भगवान् के ये प्रेममय वचन सुनकर भृगु ऋषि आश्चर्य से चकित रह गये। वह अपने मन में कहने लगे—धन्य हैं भगवान् नारायण! इनके समान और कौन देवता हो सकता है? ब्रह्मा और शङ्कर तो केवल आचरण व वाणी से ही अपमान करने पर आपे से बाहर हो गये, पर इनका तो मैंने पूर्णरूप से अपमान कर डाला। फिर भी यह क्रोध करने के बदले उलटे मुझ से ही क्षमा माँग रहे हैं। इसके बाद भगवान् से परीक्षा का सब हाल कहकर और विदा माँगकर भृगु ऋषि सब ऋषियों के पास लौट आये। भृगु मुनि के मुख से सब हाल सुनकर ऋषियों को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने एकमत होकर विष्णु को ही सब देवतों में श्रेष्ठ ठहराया और उन्हीं की आराधना करने लगे।

कृष्णचन्द्र ने और भी अनेक बड़े-बड़े काम महाभारत की लड़ाई में किये हैं। उनको संक्षेप में मैं यहाँ गिनाता हूँ। विस्तार के साथ सब कथा महाभारत में व्यासजी ने कही है। कौरवों ने जुए में पाण्डवों का सब राजपाट अधर्म से जीत लिया था। कपट के पाँसे शकुनी (दुर्योधन के मामा) ने बनाये थे। अन्त को युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गये। दुर्योधन का भाई दुःशासन द्रौपदी को महलों से भरी सभा में खींच लाया और अपमानित करने के लिए द्रौपदी की सारी को उनके शरीर पर से खींचने लगा। उस समय द्रौपदी ने सब तरफ से निराश होकर कृष्ण को पुकारा। कृष्ण ने द्वारका में बैठे-बैठे ही अपनी योगमाया से द्रौपदी के वस्त्र को इतना बढ़ा दिया कि दुःशासन खींचता-खींचता थक गया, लेकिन द्रौपदी की लाज ढकी ही रही। इसी तरह महाभारत की लड़ाई में कृष्णचन्द्र ने अर्जुन का रथ हाँका। कृष्णचन्द्र की ही कृपा और सहायता से भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, दुःशासन, भगदत्त, दुर्योधन आदि महारथी मारे गये। दुर्योधन के बहनोई जयद्रथ को सूर्य अस्त होने के पहले ही मारने की अर्जुन ने जो महाकठिन प्रतिज्ञा अपने वीर पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने के शोक और क्रोध में कर ली थी, उसे भी वह कृष्ण की सहायता के विना कभी पूरा नहीं कर सकते थे। कहाँ तक कहें, कृष्णचन्द्र ने ही पाण्डवों को जिताया और राज्य दिलाया।

महाभारत की लड़ाई में विजय पा जाने से अर्जुन को यह अभिमान हो गया कि मैं बड़ा भारी योद्धा हूँ। इस अभिमान को कृष्णचन्द्र ने कैसे दूर किया, सो भी कहते हैं। द्वारकापुरी में एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री के पहलौठी की जो सन्तान पैदा हुई, वह पृथ्वी पर गिरते

ही मर गई। वह ब्राह्मण उस लड़के की लाश को राजद्वार पर ले आया और उसे वहाँ रखकर रोता-कलपता हुआ यों कहने लगा—राजा के कर्म से ही प्रजा को दुःख और कष्ट मिलता है। मेरा यह बालक राजा के दोष से ही मरा है। यों कहकर और उस लाश को वहीं छोड़कर ब्राह्मण अपने घर चला गया। इसी क्रम से दूसरा, तीसरा और चौथा लड़का उसके हुआ और होते ही मर गया। वह ब्राह्मण हर दफे लड़के की लाश लाकर राजद्वार पर रख जाता था और पहले ही की तरह लड़के की मृत्यु के लिए राजा को दोषी ठहराता था।

उस ब्राह्मण के आठ बालक मर चुके, नवें बालक की लाश को लेकर जब वह राजद्वार में पहुँचा और वे ही वचन कहकर रोने-कलपने लगा, तब कृष्णचन्द्र के पास अर्जुन भी बैठे थे। ब्राह्मण के विलाप को सुनकर वह बाहर निकल आये और उससे कहने लगे—विप्रदेव, आप क्यों वृथा विलाप कर रहे हैं? यहाँ कोई ऐसा क्षत्रिय नहीं है, जो मृत्यु से आपके बालकों को बचा सकता। ख़ैर, जाइए, अबकी बार जब आपके बालक उत्पन्न होनेवाला हो, तब मुझसे आकर कहिएगा। मैं उसकी अवश्य रक्षा करूँगा।

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—भगवान् कृष्णचन्द्र, बलदेवजी, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के समान वीर महारथी योद्धा जब मेरे बालकों को नहीं बचा सके, तब तुम किस खेत की मूली हो भैया! मुझे तुम्हारी इस प्रतिज्ञा पर विश्वास नहीं होता।

इस पर अर्जुन ने फिर घमण्ड के साथ कहा—महराज, मैं कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ। मेरा नाम अर्जुन है। मैंने युद्ध में अपने गांडीव धनुष से छूटे हुए बाणों से भगवान् शंकर को भी छका दिया था। आप विश्वास रक्खें, मैं काल को भी जीतकर आपके बालक को ले आऊँगा। अगर प्रतिज्ञा पूरी न कर सका तो जीता ही आग में जल मरूँगा। ब्राह्मण ने अर्जुन की बात पर विश्वास कर लिया। वह घर चला गया। नव-दस महीने के बाद जब फिर ब्राह्मण के घर बालक के पैदा होने का समय आया तो वह घबराया हुआ अर्जुन के पास दौड़ा आया। अर्जुन ब्राह्मण के घर धनुष-बाण लेकर पहुँचे। उन्होंने बाणों को अपने दिव्य अस्त्रों से अभिमंत्रित करके ब्राह्मण की पत्नी जिस घर में थी, उस घर को, ढक दिया। बाणों का पिंजड़ा-सा बना दिया। ठीक पर समय ब्राह्मणी के बालक हुआ। उसके रोने का शब्द तो सुनाई पड़ा, लेकिन अब की उसकी लाश भी गायब थी।

वह ब्राह्मण क्रोध में भरा हुआ कृष्ण की सभा में अर्जुन के पास दौड़ा आया और इस प्रकार अर्जुन को भला-बुरा कहने लगा—अहो, मैं बड़ा मूर्ख हूँ। मैंने एक हीजड़े को वीर-

क्षत्रिय समझकर उसकी बात पर विश्वास कर लिया। अपनी झूठी बड़ाई करनेवाले मिथ्यावादी अर्जुन और उसके गांडीव धनुष को धिक्कार है!

ब्राह्मण के ये वचन सुनकर अर्जुन उसी समय योगबल से यमराज की पुरी में उस बालक को लेने गये। वहाँ ब्राह्मण के पुत्र को न पाकर वह क्रम से इन्द्र, अग्नि, निऋति, चन्द्र, वायु, वरुण आदि लोकपालों की पुरी में, अतल आदि सातो पातालों में और स्वर्ग के ऊपर के सात लोकों में गये; पर उनको कहीं ब्राह्मण का बालक नहीं मिला। तब वह लौटकर निराश होकर, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चिता लगाकर आग में जलने को तैयार हो गये।

तब श्रीकृष्णचन्द्र ने आकर अर्जुन का हाथ पकड़ लिया और कहा—मित्र, तुम क्यों आग में जलने जाते हो? जो काम तुम्हारी शक्ति के बाहर है, उसे तुम कैसे कर सकते हो? चलो मैं तुमको वहाँ ले चलता हूँ, जहाँ ब्राह्मण के सब पुत्र हैं। सर्वशक्तिमान् कृष्णचन्द्र यों कहकर अर्जुन को अपने दिव्य रथ पर बिठाकर पश्चिम दिशा की ओर चले। पृथ्वी-मण्डल में जम्बूद्वीप आदि सात द्वीप हैं। हर एक द्वीप के बाद एक समुद्र है और फिर उसके बाद द्वीप है। इस तरह सात समुद्र और सात द्वीप या टापू हैं। छः द्वीपों के नवखण्ड या टुकड़े। सातवें द्वीप के दो ही खण्ड हैं। हम लोग जम्बूद्वीप में रहते हैं। इसके भारत खण्ड आदि नव खण्ड हैं। भगवान् का रथ इस सारे पृथ्वीमण्डल को नाँघ गया। उसके बाद लोकालोक पर्वत मिला। इस पहाड के उस पार अँधेरा ही अँधेरा है; क्योंकि वहाँ सूर्य या चन्द्रमा की किरणें नहीं पहुँचतीं। भगवान् के रथ के शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चारो घोड़े उस अन्धकार में आगे न बढ़ सके; क्योंकि राह ही न सूझती थी। तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र को आगे कर दिया। वह प्रकाश करता हुआ चला। उस अन्धकार के पार पहुँचने पर अर्जुन को ऐसा प्रकाश देख पड़ा, जिसकी ओर उनकी आँख न ठहर सकी। वह श्रेष्ठ ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मरूप नारायण का तेज था। भगवान् का रथ अब क्षीरसागर पहुँचा। समुद्र के भीतर एक सुन्दर भवन देख पड़ा। उस दिव्य भवन में, अत्यन्त चमकीली मणियाँ जिनमें जड़ी हुई हैं, ऐसे हज़ारों सोने के खम्भे सुशोभित थे। उस भवन के भीतर सफेद पहाड़ के समान अद्भुत शेषनाग विराजमान थे। उनके हजार मस्तकों (फनों) में मणियाँ चमक रही थीं। उनके भयानक नेत्र, कण्ठ और जीभों का रङ्ग नीला था। उन्हीं शेषनाग की शय्या पर सर्वव्यापक, पुरुषोत्तम, नारायण भगवान् लेटे हुए थे। उनके पानी भरे बादल के समान श्याम शरीर पर बिजली के समान पीताम्बर शोभायमान था। उनका मुखमण्डल प्रसन्न, नेत्र कमलदल के समान विशाल, लाल

अर्जुन का चिता मे जलने को तयार होना

और दर्शनीय थे। आठ भुजाएँ थीं। सुनन्द, नन्द आदि पार्षद्, सब सिद्धियाँ और लक्ष्मीजी उनकी सेवा में उपस्थित थीं। अर्जुन ने और श्रीकृष्ण ने भी उस अपने ही रूप को सिर झुकाकर प्रणाम किया। नारायण ने मन्द मुसकान के साथ दोनो का स्वागत करते हुए कहा— हे नर और नारायण, तुम दोनो मेरा ही अंश हो। तुमको देखने की इच्छा से मैंने ही ब्राह्मण के बालकों को यहाँ बुला लिया था। सनातन धर्म की रक्षा के लिए तुम दोनो ही मेरे अंश से पृथ्वी पर प्रकट हुए हो। पृथ्वी का भार उतारकर तुम मेरे पास चले आओगे। लोगों को शिक्षा देने के लिए तुम धर्म की रक्षा और पालन करो।

"जो आज्ञा" कहकर और ब्राह्मण के बालकों को लेकर कृष्ण और अर्जुन द्वारका को लौट आये। ब्राह्मण उन बालकों को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और कृष्णचन्द्र और अर्जुन की जयजयकार करने लगा। विष्णु भगवान् के प्रभाव को देखकर अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने समझ लिया कि पुरुषों में जो कुछ पौरुष है सो सब कृष्णचन्द्र की कृपामात्र है। इसी तरह के अनेक अद्भुत चरित्र भगवान् ने किये और द्वारकावासियों को सनाथ किया।

कृष्णचन्द्र की हर एक स्त्री के दस-दस पुत्र हुए। इस हिसाब से सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के एक लाख साठ हजार अस्सी पुत्र हुए। कृष्ण के सभी पुत्र पराक्रमी थे; लेकिन प्रद्युम्न, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, अनिरुद्ध (इस नाम का कृष्ण का एक पुत्र भी था), वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबर्हि, वरूथ, कवि और न्यग्रोध, ये १८ महायशस्वी महारथी थे। इनमें भी रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न सब बातों में कृष्णचन्द्र के समान और श्रेष्ठ थे। प्रद्युम्न के अनिरुद्ध और अनिरुद्ध के वज्र नाम का पुत्र हुआ। यादव जब आपस में लड़ मरे (यह कथा आगे कही जायगी), तब वज्र ही अकेले बच रहे थे। इस यदुकुल में कोई धनहीन, थोड़ी उमर का, पराक्रम में कम, थोड़ी सन्तानवाला या ब्राह्मणों का विरोधी नहीं हुआ। यादवों की ठीक संख्या कौन बता सकता है? यादवों के लड़कों को शिक्षा देनेवाले गुरु ही केवल तीन करोड़ एक सौ अट्ठासी विद्वान् पण्डित थे। देवासुर संग्राम में मरे हुए सब राक्षस, दैत्य और दानव पृथ्वी पर राजघरानों में पैदा हुए थे और धर्म के विरोधी होकर लोगों पर अत्याचार करते हुए पृथ्वी के लिए बोझ हो रहे थे। कृष्णचन्द्र ने महाभारत की लड़ाई में उन सबका संहार कराकर पृथ्वी का बोझ हलका कर दिया।

एक समय विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि महातपस्वी महात्मा ऋषि कृष्णचन्द्र के दर्शन करने आये। भगवान् से

मिलकर वे द्वारका के पास ही पिण्डारक नाम के महापवित्र तीर्थ में ठहर गये और वहीं रहकर तपस्या करने लगे। होनी के वश बहुत से यादवों के बालक एक दिन वहीं खेलने गये। वे बालक बड़े ढीठ और उत्पाती थे। उन्हें एक दिल्लगी सूझी। उन्होंने साम्ब को औरतों के कपड़े पहनाये और उनके पेट में कपड़े बाँधकर उसे ऊँचा कर दिया। फिर साम्ब के साथ ऋषियों के पास पहुँचे। वे बनावटी नम्रता दिखाते हुए ऋषियों के पैर छूकर कहने लगे—देखिए, यह सुन्दरी गर्भवती है। यह लज्जा के मारे आप लोगों से कुछ पूछ नहीं सकती, पर यह जानना चाहती है कि इसके लड़का होगा या लड़की।

बालकों को इस प्रकार मसखरी करते देखकर दुर्वासा को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कहा—अरे मूर्ख बालको, तुम हम तपस्वियों से दिल्लगी करने आये हो! यह लड़का-लड़की नहीं, एक लोहे का मूसल पैदा करेगी, जिससे तुम्हारे सारे कुल का विनाश हो जायगा। लड़के सिटपिटा गये। उन्हें यह आशा न थी कि इस दिल्लगी का ऐसा बुरा फल होगा। उन्होंने घबराकर साम्ब के पेट के कपड़े खोले तो एक लोहे का मूसल सचमुच निकल पड़ा। तब वे लड़के वह मूसल लेकर द्वारका को दौड़े गये। भय और चिन्ता से मुरझाये हुए मुख लटकाये उन बालकों ने यादवों से भरी सभा में ले जाकर वह मूसल रख दिया और राजा उग्रसेन से सब हाल कहा। उस न टलनेवाले ब्राह्मणों के शाप को सुनकर और उस मूसल को देखकर सब द्वारकावासी बहुत चिन्तित हुए। राजा उग्रसेन ने कृष्णचन्द्र की सलाह से उस मूसल को रितवा डाला और उसका वह महीन चूरा समुद्र के जल में फिकवा दिया। तनिक सा टुकड़ा नहीं रित सका। उसको वैसे ही फेक दिया गया। उस टुकड़े को एक मछली निगल गई और वह चूरा समुद्र की लहरों से लौट लौटकर किनारे की ज़मीन पर फैल गया। उसी लोहे के चूरे से समुद्र के किनारे बहुत से सेंठे पैदा हो गये। उस मछली को मछुओं ने पकड़ा। पेट फाड़ने से वही लोहे का टुकड़ा निकल आया। एक शिकारी ने उससे बाण की दो गाँसी बना लीं। तीर में आगे जो धारदार लोहा लगाया जाता है, उसे गाँसी कहते हैं। भगवान् कृष्णचन्द्र यह सब भविष्य जानते थे। वह ब्राह्मणों के शाप को अन्यथा भी कर सकते थे। परन्तु यह सब तो उन्ही की इच्छा से हुआ था। वह मदान्ध, उच्छृङ्खल यादवों को भी पृथ्वी के लिए भार समझते थे। भगवान् ने सोचा, मेरे परमधाम चले जाने पर इन घमण्डी यादवों को कौन सँभाल सकेगा। इसलिए बचे हुए इस पृथ्वी के बोझ को भी मिटा देना चाहिए। यह सब उन्हीं कालरूप कृष्ण की इच्छा और प्रेरणा का फल था।

इसके बाद एक दिन ब्रह्माजी ने सब देवतों सहित एकान्त में कृष्णचन्द्र के पास आकर कहा—सर्वव्यापक भगवान्, हमारी प्रार्थना से पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने यह अवतार लिया था। अब आप देवतों के सब काम पूरे कर चुके। सनातन धर्म की स्थापना भी हो चुकी। आपका सुयश भी संसार भर में फैल गया। यदुवंश में प्रकट हुए आपको एक सौ पचीस वर्ष हो चुके। यदुवंश भी ब्राह्मणों के शाप से अब नष्टप्राय हो चुका है। इस कारण अगर आप उचित समझिए तो फिर अपने वैकुण्ठ लोक को कृपा करके पधारिए।

भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी, आपने ठीक कहा। मैं सब काम पूरे चुका। यादवकुल का अन्त हो जाने दीजिए, मैं शीघ्र ही वैकुण लोक को आऊँगा। अगर मैं यादवों का संहार न कराऊँगा तो जैसे सागर उमड़ पड़े तो सा सार को डुबा दे, वैसे ही मेरे यहाँ न रहने पर यह यादववंश मर्यादा को तोड़कर सर्वनाश कर डालेगा।

यह कहकर कृष्णचन्द्र ने ब्रह्मा आदि देवगण को बिदा कर दिया।

उद्धव कृष्ण के मित्र और परमभक्त थे। वह ताड़ गये कि भगवान् अब इस लोक को छोड़नेवाले हैं। कृष्णचन्द्र ने द्वारकापुरी में अनिष्ट की सूचना देनेवाले अनेक भयानक उत्पात होते देखकर सब यादवों से कहा—देखो, शाम को आकाश पश्चिम दिशा में लाल हो जाता है। जैसे आग लगी हो। रात को तारे टूटते हैं। बार-बार भूचाल आता है। कुत्ते रोते हैं। ये सब अशुभ की सूचना देनेवाले घोर उत्पात हैं। ब्राह्मण का शाप भी हमारे कुल को हो चुका है। इसलिए मेरी समझ में तो यही आता है कि हम लोग इस अरिष्ट की शान्ति के लिए प्रभास तीर्थ में चलकर स्नान, दान और देवतों का पूजन करें। जैसे अच्छे खेत में बीज बोने से अच्छा फल होता है, वैसे ही सुपात्र ब्राह्मणों को श्रद्धा के साथ दान करने से अच्छा फल प्राप्त होता है। जैसे जहाज़ पर बैठकर लोग सागर के पार चले जाते हैं, वैसे ही पुण्य करने से हम लोग भी सङ्कट और कष्टों के पार पहुँच जायँगे।

कृष्णचन्द की सलाह से सब यादव वीर प्रभाभ क्षेत्र की यात्रा के लिए तैयारी करने लगे। इसी बीच में उद्धव ने एकान्त में कृष्ण के पास जाकर चरणों में सिर रख दिया और बोले—हे देव, आपने ब्राह्मणों के शाप को व्यर्थ नहीं किया, इसीसे मैं जानता हूँ, आप यादवों का विनाश करके परमधाम को पधार जायँगे। मैं आपके बिना क्षण भर भी इस पृथ्वी पर नहीं रह सकता। इसलिए मुझे भी अपने साथ ही लेते चलिए।

भगवान् ने कहा—मित्र, तुम्हारा अनुमान ठीक है। यह यादव-वंश आपस में लड़कर नष्ट

हो जायगा । उसके बाद मैं भी परनधाम को चला जाऊँगा । आज के सातवें दिन सागर इस पुरी को डुबा देगा । जब मैं इस लोक को छोड़ दूँगा, तब पृथ्वी पर कलियुग का राज्य हो जायगा । तुम्हारी आयु अभी बाकी है, इसलिए अभी इस पृथ्वी पर तुमको रहना पड़ेगा । मैं तुमको ज्ञान का उपदेश करता हूँ । उससे तुम सुख-दुःख और शोक या आनन्द से परे हो जाओगे । तुम्हें मैं सर्वत्र व्याप्त देख पड़ूँगा । उद्धव, इन सब प्राणियों का आत्मा मैं ही हूँ । मुझसे ही यह सारी सृष्टि पैदा हुई है और प्रलयकाल में मुझ में ही लीन हो जायगी । संसार में जो कुछ अच्छा और श्रेष्ठ है, वह मेरा ही रूप या अंश है ।

भगवान् ने उद्धव को संसार, आत्मा, परमात्मा और अपनी माया का सारा भेद बता दिया । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारो वर्णों और ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यासी इन चारो आश्रमों के सब धर्म बतलाये । इसके बाद उनसे कहा—उद्धव, अब तुमको मायामोह नहीं सतावेगा । तुम मेरी आज्ञा से बदरिकाश्रम में जाओ, जहाँ नर-नारायण ऋषि तपस्या करते हैं । वहीं मेरा ध्यान और भजन करो । अन्तकाल आने पर तुम मेरे पास चले आओगे ।

उद्धव ने कृष्णचन्द्र की प्रदक्षिणा की और उनकी आज्ञा के अनुसार प्रणाम करके उत्तराखण्ड को चले गये । इधर सब बालक, जवान, बूढ़े यादव अपनी स्त्रियों को भी साथ लेकर प्रभासक्षेत्र में, समुद्र के किनारे पहुँचे । वहाँ सब यादवों ने पहले स्नान-तर्पण किया, फिर ब्राह्मणों को गोदान आदि किया, भोजन कराया । इसके बाद होनी ने उनकी बुद्धि भ्रष्ट करदी । सबने मैरेय नाम की मदिरा खूब पी । जब खूब नशा चढ़ आया, तब ब्राह्मणों के शाप और कृष्ण की माया के वश होकर वे आपस में ही गाली-गलौज करने लगे । एक-दूसरे को बुरा-भला कहने लगा । फिर क्या था, मारपीट शुरू हो गई । धनुष-बाण, तलवार, भाले, गदा आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर आपस में ही वे एक-दूसरे को मारने लगे । भाई भाई से, चाचा भतीजे से, सम्बन्धी सम्बन्धी से भिड़ गया । प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी आदि सगे एक-दूसरे के प्राण लेने को तैयार हो गये । यादवों के अनेक घराने थे । दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुक्कुर, कुन्ति आदि उनकी अल्लें या उपाधियाँ थीं । वे सब स्नेह और नाता भूलकर लड़ मरे । जब बाण और अन्य सब शस्त्र चुक गये, तब उन्होंने वही लोहे के चूरे से पैदा हुए सेंठे या नरकुल समुद्र के किनारे से उखाड़ लिये और उन्हीं से एक-दूसरे को मारने लगे । कृष्ण और बलदेव ने जो मना किया तो वे लोग इन्हीं पर वार

करने चले। तब तो कृष्ण और बलभद्र भी वही सेंठे उखाड़कर सबको मारने लगे। देखते ही देखते सब यादवों का विनाश हो गया। जैसे जंगल में बाँसों का झुरमुट अपनी ही रगड़ से पैदा हुई आग में जलकर राख हो जाता है, वही दशा यदुकुल की हुई। तब कृष्णचन्द्र ने समझा कि अब पूर्णरूप से पृथ्वी का भार उतर गया।

इसके बाद बलदेवजी समुद्र के किनारे पद्मासन से पालथी मारकर बैठ गये। उन्होंने समाधि लगाकर मनुष्यलोक को छोड़ दिया। बलभद्र के शरीर-त्याग करने पर भगवान् देवकी-नंदन भी चुपचाप एक पीपल के पेड़ के नीचे जाकर पृथ्वी पर बैठ गये। उस समय भगवान् ने चतुर्भुज रूप धारण कर लिया। वह पीपल के पेड़ के सहारे दाहने पैर पर बायाँ पैर रखकर उँठके हुए बैठे थे। उधर जरा नाम का बहेलिया, जिसने मूसल के बचे हुए लोहे के टुकड़े की गाँसी अपने बाण में लगा ली थी, उधर से निकला। उसे दूर से भगवान् के चरणों को देखकर मृग का भ्रम हुआ। उसने वही बाण भगवान् के पैरों में मार दिया। इस तरह विप्रशाप को भगवान् ने भी स्वीकार करके उसका मान रक्खा। बहेलिये ने जब पास आकर भगवान् को देखा तो वह काँपता हुआ उनके चरणों पर गिर पड़ा। बोला—भगवान्, मैंने बिना जाने यह अपराध कर डाला है। मुझे क्षमा कीजिए। भगवान् ने कहा—तू डर नहीं। यह काम तूने मेरी इच्छा से ही किया है। मेरी आज्ञा से तू स्वर्गलोक को जा। उसी समय एक विमान स्वर्ग लोक से आया और उस पर बैठकर वह बहेलिया स्वर्ग को चला गया।

कृष्ण भगवान् को खोजता हुआ, आँखों में आँसू भरे दारुक सारथी तुलसी की सुगन्ध पाकर उस जगह पहुँच गया। भगवान् का रथ और सब शस्त्र उसी समय आकाशमार्ग से वैकुण्ठ लोक को चले गये। तब सारथी से वासुदेव ने कहा—दारुक, तुम द्वारका को जाओ। वहाँ जाकर सब हाल कहना। जो कुछ बूढ़े लोग बच रहे हैं, उनसे कह देना कि अब वे द्वारका में न ठहरें; क्योंकि उसे समुद्र डुबा देगा। बचे हुए यादव अपनी स्त्रियों को और मेरे माता-पिता को साथ लेकर अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले जायँ।

सारथी भगवान् की आज्ञा मानकर उन्हें प्रणामकर उदास मन से द्वारका को चला गया। अब भगवान् को परमधाम जाने के लिए तैयार देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता भगवान् के परम-धाम-गमन को देखने के लिए विमानों पर बैठकर आकाश में आ पहुँचे और वहीं से भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् अपने नेत्रों को मूँदकर समाधिस्थ हो गये और किसी ने देख न पाया कि भगवान् कब इसी शरीर से अन्तर्द्धान (गायब) हो गये। आकाश से देवता फूल

बरसाने और नगाड़े बजाने लगे। भगवान् के साथ ही पृथ्वी पर से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति और श्री भी चली गई। जैसे आकाश में बिजली चमककर गायब हो जाती है, वैसे ही भगवान् की गति भी किसी ने न देख पाई। सब देवता भगवान् की जय-जयकार करते हुए अपने लोकों को गये।

दारुक सारथी ने द्वारकापुरी में आकर रोते हुए वसुदेव और उग्रसेन से सब हाल कह सुनाया। यादवों के विनाश और कृष्ण-बलभद्र के परमधामगमन का हाल सुनकर द्वारका में कोहराम मच गया। जहाँ यादवों की लाशें पड़ी थीं, वहाँ सब रोते-धोते पहुँचे। देवकी, रोहिणी, वसुदेव और उग्रसेन ने कृष्ण-बलराम के शोक में उसी समय अपने प्राण त्याग दिये। यादवों की स्त्रियाँ चिताएँ बनाकर अपने-अपने पतियों के साथ सती हो गईं। कृष्णचन्द्र की रुक्मिणी आदि आठो पटरानियाँ कृष्ण का ध्यान करती हुई चिता में बैठकर सती हो गईं। अर्जुन उन दिनों द्वारका में ही थे। कृष्ण के वियोग से वह अधमरे से हो गये। फिर भी धीरज धरकर उन्होंने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार मरे हुए यादवों का क्रिया-कर्म कराया और कृष्ण की बची हुई रानियों और कुछ यादवकुल की स्त्रियों के साथ कृष्ण के परपोते वज्र को लेकर इन्द्रप्रस्थ को चले। राह में ग्वालों ने उनको लूट लिया। कृष्ण के साथ ही अर्जुन का सारा पराक्रम भी चला गया। वह ग्वालों को न रोक सके। अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ में जाकर वज्र को राजगद्दी पर बिठा दिया। इसके बाद सब पाण्डव हिमालय पर चले गये और वहीं उन्होंने शरीर त्याग दिया। द्रौपदी भी उनके साथ चली गई। राजा परीक्षित् को हस्तिनापुर की गद्दी मिली। वह धर्म से पृथ्वी का पालन करने लगे।

उन्हें भी ब्राह्मण के शाप से तक्षक नाग ने काट लिया। वह भगवान् की कथा शुकदेवजी के मुख से सुनकर तर गये। परीक्षित् के मरने पर उनके बड़े पुत्र जनमेजय राजा हुए। उन्होंने तक्षक से बदला लेने के लिए नागयज्ञ किया। पुरोहित ने मंत्र पढ़कर आग में आहुति डाली। सब ओर से नाग आ-आकर आपही आप आग में भस्म होने लगे। यह देखकर तक्षक नाग बहुत डरा। वह अपने प्राण बचाने के लिए देवतों के राजा इन्द्र की शरण में गया और उनके सिंहासन के पाये से लिपट रहा। इन्द्र ने उसको अभय देकर कहा—तुम डरो नहीं; मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

इधर यज्ञकुण्ड में जब तक्षक नाग जलने नहीं आया, तब जनमेजय राजा ने अपने आचार्य से कहा—मुनिवर, वह दुष्ट तक्षक, जिसने मेरे पिताजी को अकारण काटकर मार डाला है, अभी तक भस्म नहीं हुआ। इसका क्या कारण है?

आचार्य ने कहा—राजन्, वह नाग इन्द्रलोक में जा छिपा है और देवराज इन्द्र उसकी रक्षा कर रहे हैं।

जनमेजय ने कहा—तो क्या आपके मंत्र और ब्रह्मतेज में इतनी शक्ति नहीं है कि इन्द्र सहित तक्षक को स्वाहा कर दें?

आचार्य ने कहा—है क्यों नहीं। अभी लीजिए।

आचार्य ने जैसे हाथ में आहुति लेकर मंत्र पढ़ना शुरू किया, वैसे ही इन्द्र का सिंहासन मय तक्षक के नीचे गिरने लगा। तब ब्रह्माजी ने प्रकट होकर जनमेजय से कहा—राजन्, अमृत पीने के कारण इन्द्र और तक्षक, दोनों अमर हैं। इधर मंत्र और ब्रह्मतेज भी व्यर्थ नहीं हो सकता। अब आप शान्त होकर यज्ञ बन्द कर दें। तक्षक ने ब्राह्मण के शाप को सत्य करने के लिए तुम्हारे पिता को डसा था। इसमें उसका कोई अपराध नहीं। और तुम्हारे पिता की मृत्यु का समय भी आ गया था। ब्राह्मण का शाप तो एक बहाना था।

ब्रह्मा के कहने से जनमेजय ने तक्षक को जलाने का विचार छोड़ दिया। इसके लिए राजा को धन्यवाद देकर इन्द्र और तक्षक चले गये।

बनारसी ने मनोहर से कहा—कृष्णचन्द्र का चरित्र यहीं पर समाप्त होता है। कल भागवत के द्वादश स्कन्ध का सारांश सुनाऊँगा। दूसरे दिन ठीक समय पर मनोहर आकर बैठ गया। बनारसी ने यों कहना शुरू किया—कलियुग तो कृष्णचन्द्र के परमधाम जाने के पहले ही लग गया था, लेकिन भगवान् के रहते पृथ्वी पर उसका असर नहीं हो पाता था। कृष्णचन्द्र के परमधाम सिधारते ही कलियुग ने पृथ्वी-तल पर पूरा अधिकार जमा लिया। शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से उसके बाद की हालत यों बतलाई थी कि आगे चलकर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, बल और उमर दिन-दिन कम होती चली जायगी। कलियुग में जिसके पास धन होगा, वही कुलीन, गुणी और बड़ा समझा जायगा। लोग उसकी झूठी बड़ाई और खुशामद करेंगे। ब्याह-शादी में लड़की-लड़के की पसन्द और रुचि पर ही ध्यान दिया जायगा; कुल का या जाति का विचार नहीं किया जायगा। चीजों के खरीदने और बेचने में, व्यवहार में ठगी ही रह जायगी। जनेऊ ही ब्राह्मण होने की निशानी रह जायगा। ब्राह्मण अपने कर्म नहीं करेंगे। ब्रह्मचारी और संन्यासी अपने कर्म नहीं करेंगे। केवल दिखाने के लिए दण्ड-कमण्डलु, कोपीन और मृगछाला वे धारण करेंगे। कचहरी में रुपयों के मोल न्याय बिकेगा। जो सभा-समाज में ढिठाई के साथ बोल सकेगा, वही पण्डित कहलावेगा। गरीब को लोग बदमाश समझेंगे और

पाखंडी लोग खूब पुजावेंगे। बाल रखना ही सुन्दरता का साधन समझा जायगा। अपना पेट भर लेना ही बड़ा भारी पुरुषार्थ कहलावेगा। जो ढिठाई से धाँधली करेगा, उसी की बात सच समझी जायगी। लोग अगर कुछ दान-पुण्य भी करेंगे तो यश और बड़ाई की आशा से। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि में जो जबरदस्त होगा, वही राजा बन बैठेगा। राजा लोग लोभी, कठोर, क्रूर और लुटेरों की तरह अपनी प्रजा का धन और बहू-बेटियाँ छीन लेंगे। बार-बार अनावृष्टि होगी या बहुत पानी बरसने से बढ़िया आ जायगी और खेती को चौपट कर देगी। बार-बार भूचाल आवेंगे, अकाल पड़ेंगे। रोग, शोक,चिन्ता, डाह और युद्ध आदि से बेशुमार प्रजा का संहार होगा। कलियुग में लोग अधिक से अधिक बीस या तीस वर्ष जियेंगे। लोगों के शरीर क्षीण हो जायँगे, उनमें बल का नाम न रह जायगा। जब धर्म के नाम से पाखण्ड का अधिक प्रचार होगा, सब वर्ण शूद्र के समान हो जायँगे, गायें बकरियों के समान छोटी और दूध से हीन हो जायँगी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी गृहस्थों की तरह स्त्री रखने लगेंगे, साले और ससुर सगे समझे जायँगे, मा-बाप-भाई वगैरह की कोई खबर न लेगा, दवाओं के गुण जाते रहेंगे, सारांश यह कि पृथ्वी पर दया, धर्म, पुण्य और सत्य का नाम न रह जायगा, तब कलियुग के अन्त में धर्म की रक्षा करने के लिए संभल गाँव में रहनेवाले विष्णुयशा ब्राह्मण के घर में भगवान् कल्कि जन्म लेंगे। वह सब दुष्ट राजों को मारकर कलियुग का अन्त कर सनातन धर्म की स्थापना करेंगे। जब चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति एक साथ कर्कराशि के पुष्य नक्षत्र में आ जायँगे, तभी सत्ययुग लग जायगा।

व्यासजी ने अठारह पुराण बनाये हैं। उनमें सबसे श्रेष्ठ यह भागवत पुराण है, जिसमें १८००० श्लोक हैं। इसके अलावा सत्रह पुराण और हैं। उनके नाम ये हैं—ब्रह्मपुराण (१००००), पद्मपुराण (५५०००), विष्णुपुराण (२३०००), शिवपुराण, (२४०००), नारदपुराण (२५०००), मार्कण्डेयपुराण (९०००), अग्निपुराण (१५४००), भविष्यपुराण (१४५००), ब्रह्मवैवर्तपुराण (१८०००), लिंगपुराण (११०००), वाराहपुराण (२४०००), स्कन्दपुराण (८११०१), वामनपुराण (१००००), कूर्मपुराण (१७०००), मत्स्यपुराण (१४०००), गरुड़पुराण (१९०००) और ब्रह्माण्डपुराण (१२०००)। किसी किसी के मत में शिवपुराण की जगह वायुपुराण महापुराण है।

बेटा, मुझे आशा है, बड़े होने पर तुम सभी पुराणों को पढ़ोगे और पुराणों में जो कथाएँ हैं, उनके पढ़ने से तुम अपने चरित्र को अच्छा बना सकोगे। इससे तुमको बड़ा लाभ होगा।

प्र

ता

पी

प

र

शु

रा

म

लेखक
रूपनारायण पाण्डेय

प्रतापी परशुराम का विस्तृत जीवन-चरित्र प्रत्येक हिन्दू बालक को अवश्य पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में परशुरामजी के जीवन की सभी विशेष तात्रों पर प्रकाश डाला गया है। बालक इसे पढ़कर जान सकेंगे कि तप और ब्रह्मचर्य्य में कितनी शक्ति होती है। वास्तव में विद्वान् लेखक ने पुस्तक को उपन्यास से भी रोचक बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी है। इसके सिवा इसमें शिक्षाप्रद अनेक चित्र भी हैं। मूल्य केवल ॥) आना

हृदय-वध
(पुस्तक के अनेक रोमाञ्चकारी चित्रों में से एक)

प्रकाशक—हिन्दुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ